सामाजिक क्रांति

और

भूदान

जे बी. कृपालानी



१९५४

अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, वर्धा का प्रकाशन

प्रकाशक
अ भा सर्व-सेवा-सघ वर्धा के लिए
मार्तण्ड उपाध्याय, मत्री
सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

पहली बार १९५४
मूल्य
चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिग वर्क्स,
दिल्ली

अल्प परिचय

दादा कृपालानी भारत की एक तगडी शख्सियत है। उनके विचार तगडे होते है और कृति भी सनसनी पैदा करनेवाली होती है। लोगो ने सिर्फ उग्र आन्दोलनकारी कृपालानी को ही देखा है। उन्होने उनका वह रूप नही देखा, जिसने शान्त और गभीर तपस्या मे खादी का विकास किया और उसे सफल बनाया। लोगो को उनकी लोक-सग्रह-कुशलता का पता नही है। उत्तर प्रदेश मे जब भूदानयज्ञ आन्दोलन के सिलसिले मे विनोबा ने यात्रा की तब मालूम हुआ कि कृपालानीजी के सपर्क और जीवन मे देश के कितने धुरधर कार्यकर्ताओ और निपुण कर्णधारो को प्रेरणा मिली।

१९२६ या २७ मे उन्हे पहले-पहल देखने का सुयोग मिला। हम लोगो ने एक 'हेमन्त व्याख्यान माला' का आयोजन नागपुर तिलक विद्यालय की ओर से किया था। देश के प्रसिद्ध विद्वान् और लोकाग्रणियो के व्याख्यान हुए। 'खादी और 'राष्ट्रीय शिक्षण' पर बुद्धिवाद की भूमिका पर से युक्तिसगत भाषण करने के लिए वक्ता मिलना बहुत ही कठिन था। राष्ट्रीय शिक्षा पर भाषण करने के लिए पूना के अब सुप्रसिद्ध लेकिन उस समय के बिल्कुल अप्रसिद्ध आचार्य भागवत आये। उनका भाषण सुन कर श्रोता दग रह गये। खादी पर व्याख्यान देने के लिए कृपालानीजी आये। वे भी अत्यन्त अल्प प्रसिद्ध थे। जब वे हमारे विद्यालय मे आये और हम लोगो को उन्होने अपना परिचय दिया तो सबको कुछ अदेशा हुआ कि खादी जैसे विषय पर न जाने कैसा भाषण होगा। लेकिन जब भाषण हुआ तो सब अवाक रह गये। बडे-बडे बुद्धिवादियो की तबियत खुश हो गई। उसके वर्षो बाद उनका एक छोटा-सा भाषण १९३५ मे बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय मे सुना। उसमे जोश था और विवेचन भी। जलते हुए अगारो की तरह एक-से-एक बढ कर जो दहकते हुए शब्द बिजली की रफ्तार से बाहर निकले थे वे खून को खौला देते थे। कहना न होगा कि ये दोनो भाषण अग्रेजी में हुए थे।

कृपालानीजी की शैली की यह विशेषता है कि उनके शब्दो मे नोक होती है, लेकिन डक नही होता। वे वार करते है, लेकिन घाव नही करते। उनकी विदारक मीमासा और तर्क-कर्कश विश्लेषण से आप तिलमिला उठते है, लेकिन घायल नही होते। कभी-कभी उनके लेख पढ कर और विशेषकर भाषण सुनने के बाद वाल्टेयर की याद आती है। उनके प्रतिपादन में आवेश और तीव्रता के साथ-साथ बुद्धि को सतोष देने वाली तर्क-पटुता होती है। कृपालानीजी एक अध्ययनशील और तत्त्वान्वेषी पडित है। वे जो कुछ कहते है उनके पीछे गहरा अध्ययन और वैज्ञानिक प्रज्ञा होती है।

उनकी 'लेटेस्ट फेट' नामक पुस्तिका जिसने पढ़ी होगी वह उनकी शैली की अन्यतम विशेषताओ मे मुग्ध हुए बिना नही रह सकता।

स्पष्टता का गुण इतना होता है कि लोगो को वे मुहफट आदमी मालूम होते है। लेकिन स्पष्टता मे उनकी भावना की उग्रता होती है, अविनय की वृत्ति नही।

'चुनौती' और 'आन्दोलन' कृपालानीजी की प्रकृति के गुण-विशेष है। पुरुषार्थ और प्रतिकार के अवसर पाकर उनकी प्रतिभा खिल उठती है।

मीमासा और विवेचन मे वे पते की बात बहुत साफ तौर से रख देते है। अहिसावादियो और शातिवादियो को उन्होने बार-बार जतलाया कि अप्रतिकार मे सज्जनता नही है और अन्याय सह लेने मे क्षमाशीलता नही है। जो सत्याग्रही है वह प्रतिकार-परायण अवश्य होगा। सत्याग्रही पराक्रमशील योद्धा होता है। दबे हुए और बेजान लोगो को वे लगातार समझाते है कि कायरता से हिसक प्रतिकार कही अधिक श्रेयस्कर है। सब से बडा पाप अन्याय के सामने सिर झुकाना है, सब से बडा गुनाह कायरता है। उनके इस विश्लेषण का जागतिक शान्तिवादी परिषद और गाधी-परिसवाद-सम्मेलन (Gandhian Seminar) मे एकत्रित मनीषियो पर बहुत प्रभाव पडा।

कृपालानीजी गाधी-दर्शन के प्रतिभाशाली और प्रगल्भ प्रवक्ता है, वैज्ञानिक सर्वोदय के वे नित्य जागरूक और दक्ष पुरस्कर्ता है। गाधी-तत्वज्ञान और सर्वोदय-विज्ञान कही लीक मे पडकर सकीर्ण न हो जाय या जड कर्म-काड मे परिसीमित न हो जाय, इसके विषय मे वे निरन्तर सावधानता से प्रयत्न करते रहते है।

ऐसे व्यक्ति के क्राति मीमासात्मक लेखो का यह छोटा-सा सग्रह है।

नेशनल हाल, पटना
१-६-१९५४

—दादा धर्माधिकारी

विषय-सूची

सामाजिक क्रांति और भूदान

: १ :

भूदान-यज्ञ की पार्श्व-भूमि

मार्क्सवादी समाजवाद के सिद्धांत के अनुसार "मानवीय दुःख-निवारण के सारे उपायों का नतीजा प्रतिरोध और क्रांति का दिन टालने में होता है। समता पर अधिष्ठित शोषणहीन समाज की स्थापना केवल क्रांतिकारी वर्ग-संघर्ष से ही हो सकती है। इसलिए मनुष्य के दुःख-निवारण के सारे उपाय प्रतिगामी हैं।'

क्रांति का मूल क्या ?

इससे यह अर्थ ध्वनित है कि क्रांतियां नितांत दरिद्रता और कंगालियत में से ही पैदा होती हैं। यह ऐतिहासिक सत्य नहीं है। लोगों ने निरन्तर दुःख और दरिद्रता को बगैर बगावत किये सदियों तक सहन किया है। केवल दुःख की मात्रा से क्रांति नहीं होती। लोगों की उसके विषय में जो धारणा होती है उस धारणा में से क्रांति होती है। जबतक उनका यह विश्वास होता है कि यह दुःख उनके भाग्य में लिखा है, इसलिए वह अनिवार्य है और किसी मानवीय पुरुषार्थ से वह दूर नहीं हो सकता, तबतक वे उसे चुपचाप सह लेते हैं। परन्तु यदि लोगों को यह विश्वास हो जाय कि दुःख चाहे वह बड़ा हो या छोटा, उनकी किस्मत में नहीं लिखा है या अनिवार्य नहीं है, बल्कि मनुष्यकृत और निराकरणीय है, तो वे परिस्थिति में परिवर्तन करने का प्रयत्न करते हैं।

पश्चिम में मजदूरों को आज जितना आराम मिलता है, उतना पहले खुशहाल वर्गों को भी नहीं मिलता था। फिर भी सब तरफ मजदूरों का

रूख बगावत का है। कारण यह है कि एक शताब्दी मे अधिक काल तक उनको यह सिखाया गया है कि उनकी गरीबी, यद्यपि वह पहले से कम हो गई है, फिर भी वह अनुपयुक्त है। वह न तो उनके भाग्य मे बदी है और न अनिवार्य ही है। वह अन्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था का परिणाम है और उस समाज-व्यवस्था मे उनके अपने प्रयत्नो से परिवर्तन हो सकता है।

आधुनिक परिभाषा मे, जिसमे आजका शिक्षित वर्ग समझ सकता है, भूदान-यज्ञ समझाने से पहले लोगो के मन मे जो भ्रम है, उनका निवारण करना चाहिए। श्री विनोबा दान के रूप मे जमीन मागते है। इसलिए ऐसा मान लिया जाता है कि वे जमीन की भीख चाहते है। और जो लोग जमीन देते है, वे उदारता का काम करते है। अत वे कुछ विशेष पुण्य के और लोकादर के पात्र है। पर विनोबा जमीन न देने-वालो से देनेवालो को जब श्रेष्ठ समझते है तो उसी अर्थ में, जिस अर्थ मे कि हम एक ईमानदार कार्यकर्ता को लापरवाह कार्यकर्ता से श्रेष्ठ समझते है। ऐसी दुनिया मे, जहा कि बहुत-से लोग अपनी जिम्मेदारी पूरी करने मे भी आनाकानी करते है, वहा ईमानदार कार्यकर्ता दाम लेकर अपना काम पूरा करता है।

सार्वजनिक सपत्ति

श्री विनोबा का बुनियादी सिद्धात यह है कि हवा और पानी की तरह जमीन भी भगवान् की है। यह सिद्धात वे हिम्मत के साथ अपने श्रोताओ के सामने और दाताओ के सामने रखते है। इसलिए वे कहते है कि जमीन किसी की निजी सपत्ति नही होनी चाहिए।

समाजशास्त्रीय परिभाषा

समाज-शास्त्र की परिभाषा मे इसका अनुवाद यह होगा कि भूमि का सामाजिक मूल्य है और इसलिए वह व्यक्तियो की निजी सपत्ति नही होनी चाहिए, बल्कि उस पर समाज की मालकियत होनी चाहिए, और उसका उपयोग समाज के हित के लिए होना चाहिए, जिसमें जोतने वाले का हित भी शामिल है।

आरम्भ मे जमीन समुदाय या गाव की ही होती थी। सामाजिक आवश्यकताओ मे परिवर्तन होने पर समय-समय पर उसका पुनर्वितरण किया जाता था। इसलिए जमीन का आज का मालिक जब जमीन का दान करता है तो वह ऐसी चीज समाज को लौटा देता है, जिस पर उसका स्वाभाविक अधिकार नही है।

आज उसको जो मालकियत मिली है, वह राजनैतिक और वैधानिक सस्थाओ की दिलाई हुई है। ये सस्थाए दुनिया भर मे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रभुत्व और शोषण के परिणाम-स्वरूप स्थापित हुई है। सफल हिसा और युद्ध ने अक्सर इनकी स्थापना मे मदद पहुचाई है। जन-तन्त्र मे भी निजी सम्पत्ति की व्यवस्था हमेशा न्यायसगत और नैतिक दृष्टि से उपयुक्त नही होती। उसका आधार गतकालीन कानूनी, राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक कल्पनाए, भ्रात धारणाए, दूषित ग्रह और धार्मिक भ्रम इत्यादि होते है।

बटवारे का अर्थ

विनोवाजी जमीन पर सारे पुराने अधिकारो को मानने से इन्कार करते है। इसमें वे उतने ही क्रातिकारी है, जितना कि कोई भी मार्क्स-वादी हो सकता है। अन्तर इतना ही है कि विनोवा नैतिक मत-परिवर्तन से और अहिंसात्मक उपायो से समाज को जमीन वापस दिलाना चाहते है। मार्क्सवादी परिभाषा के अनुसार विनोवा यह मानते है कि उत्पादन का मुख्य साधन होने के कारण जमीन समाज की है और इसलिए उस पर समाज की ही मालकियत होनी चाहिए। यह वात इस पर से स्पष्ट हो जाती है कि भूदान में जो जमीन मिलती है, उसका प्रत्यक्ष बटवारा गाव करता है। खुद गाववाले वतलाते है कि कौन-सा परिवार सवसे अधिक जरूरतमद और सत्पात्र है।

फिर यह सवाल होता है कि औद्योगिक उत्पादन के औजारो के वारे में क्या नीति होगी? विनोवा अपने भाषणो में कई तरह के धन को समाज की सम्पत्ति वतलाते है। फिर भी फिलहाल उन्होने अपना ध्यान भूमि

की मालकियत तक ही मर्यादित किया है। प्राय वे धनवानो से अपनी दूसरी सम्पत्ति का कम-से-कम छठा हिस्सा सार्वजनिक कामो के लिए खर्च करने को कहते है, चाहे फिर वह सम्पत्ति किसी तरह प्राप्त क्यो न की गई हो। किन्तु आज उनका पूरा जोर भूमि पर ही है। गाधीजी और अन्य नीति-प्रवर्त्तको की तरह वे भी पर्याप्त व्यवहार-निष्ठ है। इसलिए कहते है, "मेरे लिए अभी एक पग बस है।"

: २ :

भूदान-यज्ञ : क्रान्ति या उत्क्रान्ति

नया जीवन-दर्शन

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन से अनेक फायदे है, इसमे शक नही। लेकिन क्या इतने मे वह क्रातिकारी हो जाता है? इस प्रश्न का उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब हम यह जानते हो कि क्राति मे कौन-कौनसी बातें आती है। समाज के पुराने मूल्यो की भावना और बुद्धि की दृष्टि से पुनर्मूल्यन क्राति का मूलभूत लक्षण है। इतिहास की सभी बडी क्रातिया, चाहे वे आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक या कलात्मक, किसी भी प्रकार की रही हो मूल्य-परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही हुई थी। सही क्या है, गलत क्या है, पाप क्या है, पुण्य क्या है, कौनसी चीज महत्व की है, कौनसी तुच्छ है, कौनसी इष्ट है, कौनसी अनिष्ट है, कौनसी सुन्दर है, कौनसी कुरूप है, इत्यादि प्रश्नो के विषय मे लोगों की कल्पनाए बदल गई है। नये जीवन-दर्शन का और नये मूल्यो का विनियोग प्रत्यक्ष राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक संस्थाओ तथा कला-पद्धतियो मे करने मे पहले नया जीवन-दर्शन तो होना चाहिए।

बुद्ध-ईसा-मुहम्मद

अति प्राचीन काल मे आज तक सभ्यता की प्रगति का हरेक कदम किसी-न-किसी प्रकार के क्रातिकारी आन्दोलन के द्वारा ही उठाया गया

है। उदाहरण के लिए धर्म का इतिहास ले ले। हिसा मे डूबी हुई दुनिया को बुद्ध ने अहिसा का सिद्धात सिखाया। उन दिनो के सामाजिक सदर्भ मे सत्य और न्याय की स्थापना के लिए हिसा करने की न केवल अनुमति ही थी, बल्कि वही सदाचार था। इस मूलभूत मूल्य को बुद्ध ने पलट दिया। बुद्ध ने यह घोषित किया कि सभी प्रकार की हिसा पाप है, चाहे वह किसी भी उद्देश्य से क्यो न की गई हो। इसके कुछ सदियो के बाद पश्चिम की ओर हज़रत ईसा ने घोषित किया कि अहिसा और शारीरिक अप्रतिकार ही जीवन का सर्व-श्रेष्ठ मूल्य है। उसने कहा, "बुराई का प्रतिकार मत करो। जो तुम्हारे साथ बुराई करे, उसके साथ तुम भलाई करो। मूसा की नीति के अनुसार• आख के लिए आख और दात के लिए दात का न्याय मत अपनाओ। किन्तु अपने दुश्मनो को सात बार ही नही, बल्कि सात गुने सत्तर बार क्षमा करो।" यह ईसा का नया नीति-धर्म था। हज़रत मुहम्मद से पहले मूर्ति-पूजा उत्कृष्ट उपासना समझी जाती थी। मुहम्मद ने उसे एक, और एकमेव ईश्वर के खिलाफ पाप करार दिया। मूर्त्तियो को भ्रष्ट करना और उनका विध्वस करना, उस अल्लाह को मजूर था, जो कि सर्वशक्तिमान है, क्रोधी है और ईर्ष्यालु है।

क्राति की सकुचित दृष्टियां

हमने धार्मिक क्रातिकारी-आन्दोलन की बात कही है। लेकिन मार्क्स के बाद 'क्राति' शब्द का अर्थ बहुत सकीर्ण और सीमित हो गया। अब वह सिर्फ हिसात्मक, आर्थिक और राजनैतिक विप्लवो के लिए ही लागू किया जाता है। जिसमे यह लक्षण न हो, वह क्राति नही समझी जाती। फिर भी इस सकीर्ण और सीमित अर्थ में भी क्राति का सार क्या है, यह हम समझने की कोशिश करें। मार्क्सवादी मानते है कि अठारहवी सदी के अत मे फ्रास मे जो विप्लव हुआ, वह उनकी दृष्टि से भी क्राति थी। रूस मे १९१८ की जो बोल्शेविक क्राति हुई, वह अधिक बडी क्राति थी, यह मानी हुई बात है। अठारहवी सदी के फ्रास मे रूसो, वाल्टेयर और विश्वकोष के निर्माताओ ने स्वतत्रता, समता और बधुता की कल्पनाओ का सब

तरफ प्रचार तथा प्रतिपादन किया। इन नये विचारो मे आवश्यक वातावरण पैदा हुआ, जिससे समाज मे इन मूल्यो की स्थापना के लिए क्राति करना सभव हुआ। इससे पहले सुप्रतिष्ठित सत्ता के विरुद्ध बगावत करना अपराध और अधर्म समझा जाता था। परन्तु इन तत्ववेत्ताओ ने जो क्रातिकारी विचार लोगो को सिखाये, उसके कारण बगावत न केवल उचित ही मानी गई, अपितु न्याययुक्त और नीतियुक्त भी। विद्रोह कर्त्तव्य हो गया। बगैर प्रतिकार मे सहन करना कायरता का और नागरिक कर्त्तव्य मे प्रमाद का लक्षण समझा गया। वह राजा, जो कि दैवी सत्ता का प्रतीक था, अब शैतान का प्रतिनिधि माना जाने लगा। जो पुरोहित ईसामसीह के प्रतिनिधि थे, वे अब शैतान के प्रतिहस्तक समझे जाने लगे। उच्चवर्गीय लोगो का उनकी कुलीनता, सपत्ति और सत्ता के लिए आदर होने के बदले, वे अब अकुलीन, निरकुश, लुटेरे, शोषक तथा लोकद्रोही माने जाने लगे। प्राचीन निष्ठाए और श्रद्धाए चूर-चूर हो गई। उनका स्थान पुराने स्नेह-सम्बन्धो ने और निष्ठाओ ने लिया। हजारो वर्षो की पुरानी, आध्यात्मिक तथा भौतिक सत्ता के खिलाफ विद्रोह इसी विचार-परिवर्तन और मूल्यपरिवर्तन की बदौलत हो सका। नये मूल्यो ने मनुष्यो के मन मे से पुराना आदर, डर और भ्रम दूर कर दिया।

कैंट को प्रकाश-दर्शन

इसी मूल्य-परिवर्तन के कारण महान जर्मन मीमासक तत्त्वज्ञ कैंट ने बस्टिल-कारागृह के विध्वस का समाचार सुन कर एक पुरान पैगबर के शब्दो मे पुलकित हो कर कहा था, "प्रभो, अब तू अपने इस दास को शान्तिपूर्वक ससार से विदा होने दे। तेरे मोक्ष को अब मेरी आखो ने देख लिया।" इस सदाचार और विचार-प्रेरित विद्रोह मे उस बूढे दार्शनिक ने कौनसा प्रकाश देखा? वह प्रकाश स्वतन्त्रता, न्याय और मानवीय बधुत्व के नये विचारो का प्रकाश था। प्रारम्भ मे यह नया प्रकाश जितना उज्ज्वल मालूम पड़ा, उतना शायद अन्त मे भले ही न रहा हो, परन्तु कुछ समय के लिए लोगो की विवेक-बुद्धि, भावनाए और निष्ठाए उसके साथ गई।

मार्क्सवाद द्वारा मूल्य-परिवर्तन

उनके पश्चात् उतनी ही अत्युक्तिपूर्ण भाषा मे बुद्धिमान् तथा मीमांसक लोगो ने रूस की क्रांति का भी गौरवपूर्वक स्वागत किया। इस का भी मूल कारण यही था कि जीवन के आर्थिक क्षेत्र मे नये मूल्य दाखिल हुए। अर्थ-व्यवस्था ही जीवन का प्रधान अंग माना जाता था, इसलिए आर्थिक परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन ही मान लिया गया। उदाहरण के लिए मार्क्स और ऐंगेल्स ने यह सिद्ध कर दिया कि संपत्ति समाज-निर्मित है और निजी संपत्ति अपहरण तथा शोषण का परिणाम है। उन्होने यह बुद्धिवाद से ही नही सिद्ध किया बल्कि उसका भावावेश से भी प्रतिपादन किया। यह बात अधिक महत्व रखती है। जो संपत्तिमान् व्यक्ति पहले एक भला आदमी एक स्वतन्त्र क्रियाशील व्यक्ति साहसी, मितव्ययी तथा लोगो का उपकारकर्त्ता माना जाता था, वह अब मार्क्सवादी नीति के अनुसार शोषक खून चूसनेवाला, परोपजीवी और समाजद्रोही माना जाने लगा। इसलिए उसका और उसके वर्ग का विध्वंस करना आवश्यक हो गया और आवश्यकता पडने पर उनको तलवार के घाट उतारना या आग मे जला देना भी उपयुक्त माना गया। बेचारा पूंजीवादी वास्तव में ऐसी सामाजिक परिस्थितियो मे से पैदा हुआ था, जिनपर उसका कोई काबू नही था। फिर भी उसके लिए कोई सद्भाव बतलाना गुनाह माना गया। मार्क्सवाद ने मानवीय मूल्यो को जड-मूल से बदल दिया।

गांधीकृत क्रांति

हाल ही मे हमने गांधी-प्रणीत मूल्य-परिवर्तन की क्रांति देखी। उस क्रांति का उद्देश्य राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और समत्व युक्त समाज रचना की नीव डालना था। आज तक मानवीय इतिहास में सत्कार्य के लिए और खास कर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए हिंसा करना न्याय युक्त तथा नीतिविहित माना गया है। वह नागरिक का कर्तव्य माना गया है, यहा तक कि आतंकवादी हिंसा भी स्वतन्त्रता के लिए अगर प्रशस्त नही, तो क्षम्य मानी गई है।

तरफ प्रचार तथा प्रतिपादन किया। इन नये विचारो से आवश्यक वातावरण पैदा हुआ, जिससे समाज मे इन मूल्यो की स्थापना के लिए क्राति करना सभव हुआ। इससे पहले सुप्रतिष्ठित सत्ता के विरुद्ध बगावत करना अपराध और अधर्म समझा जाता था। परन्तु इन तत्ववेत्ताओ ने जो क्रातिकारी विचार लोगो को सिखाये, उसके कारण बगावत न केवल उचित ही मानी गई, अपितु न्याययुक्त और नीतियुक्त भी। विद्रोह कर्त्तव्य हो गया। बगैर प्रतिकार से सहन करना कायरता का और नागरिक कर्त्तव्य मे प्रमाद का लक्षण समझा गया। वह राजा, जो कि दैवी सत्ता का प्रतीक था, अब शैतान का प्रतिनिधि माना जाने लगा। जो पुरोहित ईसामसीह के प्रतिनिधि थे, वे अब शैतान के प्रतिहस्तक समझे जाने लगे। उच्चवशीय लोगो का उनकी कुलीनता, सपत्ति और सत्ता के लिए आदर होने के बदले, वे अब अकुलीन, निरकुश, लुटेरे, शोषक तथा लोकद्रोही माने जाने लगे। प्राचीन निष्ठाए और श्रद्धाए चूर-चूर हो गई। उनका स्थान पुराने स्नेह-सम्बन्धो ने और निष्ठाओ ने लिया। हजारो वर्षो की पुरानी, आध्यात्मिक तथा भौतिक सत्ता के खिलाफ विद्रोह इसी विचार-परिवर्तन और मूल्यपरिवर्तन की बदौलत हो सका। नये मूल्यो ने मनुष्यो के मन मे से पुराना आदर, डर और भ्रम दूर कर दिया।

कैंट को प्रकाश-दर्शन

इसी मूल्य-परिवर्तन के कारण महान जर्मन मीमासक तत्त्वज्ञ कैंट ने बस्टिल-कारागृह के विध्वस का समाचार सुन कर एक पुरान पैगबर के शब्दो मे पुलकित हो कर कहा था, "प्रभो, अब तू अपने इस दास को शातिपूर्वक ससार मे विदा होने दे। तेरे मोक्ष को अब मेरी आखो ने देख लिया।" इस मदाध और विकार-प्रेरित विद्रोह मे उस बूढे दार्शनिक ने कौनसा प्रकाश देखा ? वह प्रकाश स्वतन्त्रता, न्याय और मानवीय बधुत्व के नये विचारो का प्रकाश था। प्रारभ मे यह नया प्रकाश जितना उज्ज्वल मालूम पडा, उतना शायद अन्त मे भले ही न रहा हो, परन्तु कुछ समय के लिए लोगो की विवेक-बुद्धि, भावनाए और निष्ठाए उसके साथ गई।

मार्क्सवाद द्वारा मूल्य-परिवर्तन

उसके पश्चात् उतनी ही अत्युक्तिपूर्ण भाषा मे बुद्धिमान् तथा मीमानक लोगो ने रूस की क्राति का भी गौरवपूर्वक स्वागत किया। इस का भी मूल कारण यही था कि जीवन के आर्थिक क्षेत्र मे नये मूल्य दाखिल हुए। अर्थ-व्यवस्था ही जीवन का प्रधान अग माना जाता था, इसलिए आर्थिक परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन ही मान लिया गया। उदाहरण के लिए मार्क्स और ऐगेल्स ने यह सिद्ध कर दिया कि सपत्ति समाज-निर्मित है और निजी सपत्ति अपहरण तथा शोषण का परिणाम है। उन्होने यह बुद्धिवाद से ही नही सिद्ध किया, बल्कि उसका भावावेश से भी प्रतिपादन किया। यह बात अधिक महत्व रखती है। जो सपत्तिमान् व्यक्ति पहले एक भला आदमी, एक स्वतन्त्र क्रियाशील व्यक्ति, साहसी, मितव्ययी तथा लोगो का उपकारकर्त्ता माना जाता था, वह अब मार्क्सवादी नीति के अनुसार शोषक खून चूननेवाला, परोपजीवी और समाजद्रोही माना जाने लगा। इसलिए उसका और उसके वर्ग का विध्वस करना आवश्यक हो गया और आवश्यकता पडने पर उसको तलवार के घाट उतारना या आग से जला देना भी उपयुक्त माना गया। बेचारा पूजीवादी वास्तव मे ऐसी सामाजिक परिस्थितियो मे से पैदा हुआ था, जिनपर उसका कोई काबू नही था। फिर भी उसके लिए कोई सद्भाव बतलाना गुनाह माना गया। मार्क्सवाद ने मानवीय मूल्यो को जड-मूल से बदल दिया।

गाधीकृत क्राति

हाल ही मे हमने गाधी-प्रणीत मूल्य-परिवर्तन की क्राति देखी। उस क्राति का उद्देश्य राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना और समत्व युक्त समाज रचना की नीव डालना था। आज तक मानवीय इतिहास मे सत्कार्य के लिए और खास कर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए हिसा करना न्याय युक्त तथा नीतिविहित माना गया है। वह नागरिक का कर्त्तव्य माना गया है, यहा तक कि आतकवादी हिसा भी स्वतन्त्रता के लिए अगर प्रशस्त नही, तो क्षम्य मानी गई है।

गाधीजी ने इन मूल्यो को उलट दिया। न्याय की स्थापना के लिए युद्ध या हिंसा करना उत्कृष्ट नीति नही है। अत्याचारी सत्ता के विरोध का सबसे उत्कृष्ट और नीतियुक्त मार्ग अहिंसात्मक प्रतिकार है। भले काम के लिए हिंसा या युद्ध केवल निपट कायरता से ही श्रेयस्कर है। गाधीजी की यह निष्ठा है कि राजनीति मे भी साध्य की अपेक्षा साधन गौण नही माने जाने चाहिए।

दूसरी भी कई बातो मे गाधीजी ने चिरप्रतिष्ठित मूल्यो का परिवर्तन कर दिया। गाधीजी के राष्ट्रीय विभूति बनने के पहले जेल मे जाना शान के खिलाफ समझा जाता था। बाद मे यह गौरव का विषय बन गया। कुटुम्ब-निष्ठा सबसे बडा सद्गुण समझा जाता था, उसकी जगह राष्ट्र-निष्ठा सबसे बडा सद्गुण समझा जाने लगा। जाति-निष्ठा का सार्वजनिक मामलो मे कोई स्थान नही रह गया। अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म विरोधी करार दी गई, अराष्ट्रीय और अमानुष मानी गई। सपत्ति सार्वजनिक धरोहर समझी गई। उसका निर्माण समाज द्वारा होता है, इसलिये उपयोग भी सामाजिक प्रयोजनो के लिए होना चाहिए। सब प्रकार का आर्थिक-शोषण पापमय माना गया। गरीब देहाती की पोशाक मोटी खादी देश-भक्ति का और प्रतिष्ठा का लक्षण माना गया। इतना ही नही, वही पोशाक फैशनेबल मानी गई। ग्रामीण और घरेलू उद्योग-धधो को उत्तेजन देना पुरानी व्यवस्था के पुनर्जीवन का द्योतक नही, बल्कि क्राति का द्योतक हो गया। स्त्रियो को परदे मे रखना, उनको सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय कार्यो मे भाग लेने से रोकना अपराध और क्रूरता का व्यवहार हो गया। सभी तरह का भोग-विलास सामाजिक पाप समझा गया। एक नही हजार तरह से गाधीजी ने केवल परपरागत मूल्यो का ही नही, बल्कि भारतीय जनता के नैतिक दर्शन का ही परिवर्तन किया। हमारी स्वतन्त्रता का आन्दोलन इन नये मूल्यो पर आधार रखता था। इसलिए गाधीजी की कल्पना का स्वराज्य इन्ही मूल्यो पर रचा जा सकता है।

विनोबा का प्रयत्न

क्या विनोबा अपने भूदान-आन्दोलन से प्रचलित मूल्यो मे परिवर्तन कर रहे है ? जिन्होने उनके काम को देखा है और जिन वृत्ति से वह काम होता है, उस वृत्ति को समझा है, उनके मन मे विनोबा के आन्दोलन की क्रातिकारिता के विषय मे कोई सदेह नही रह सकता। हर जगह वे इस विचार का प्रतिपादन करते है कि जमीन की मालकियत पाप है और जमीन हवा तथा पानी की तरह सबको मुफ्त मे मिलनी चाहिए। परन्तु जिस प्रकार पानी का नियत्रण सामाजिक प्रयोजनो के लिए किया जाता है, उसी तरह भूमि का उपयोग भी समाज के लिए होना चाहिए। साथ-साथ वे यह भी आग्रहपूर्वक कहते है कि सभी सपत्ति समाज की थाती समझी जानी चाहिए और उसका उपयोग सामाजिक कार्यो के लिए ही होना चाहिए। इसके अलावा वे उन गाधी-प्रणीत मूल्यो का सजीवन कर रहे है जिनके आधुनिक सत्ता, लालसा और द्रव्य-लोभ के उन्माद मे खो जाने का डर था। उन्होने यह भी दिखला दिया है कि व्यक्तिगत उदाहरण से, शुद्ध-चारित्र्य से और प्रयत्न से कितना बडा समाज-हित हो सकता है, चाहे सत्ता कितनी ही उदासीन क्यो न हो ? वे जिस तरीके से भूमि-समस्या हल करने की कोशिश कर रहे है, उससे यह साबित होता है कि दूसरी समस्याएं भी उसी पद्धति से शातिपूर्वक नैतिक मत-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन के द्वारा हल की जा सकती है। वे जमीदारी के विरोध में ऐसा प्रबल लोकमत बना रहे है कि उनके कारण किसी भी प्रगतिशील सरकार के लिए राजनैतिक और कानूनी कदम उठाना आसान हो जायगा। मुझे विश्वास है कि पुलिस के द्वारा दमनकारी उपायो से काम लेने के बदले—जिससे न तो ईमानदारी होती है, न सयम—अगर शराबखोरी का इलाज नैतिक मत-प्रचार और मत-परिवर्तन से किया जाय, तो अधिक चिरस्थायी और दूरगामी परिणाम निकलेगे। श्री विनोबा देहाती हलको मे एक ऐसी सेना खडी कर रहे है जिसका प्रचलित समाज-रचना के प्रति असतोष एक प्रचड क्राति करके रहेगा।

तेलगाना जैसे एक छोटे-से और नपे-तुले दायरे मे कम्यूनिस्टो ने ज़मीदारो से जमीन छीन ली और किसानो को उस पर कब्जा करने दिया। इसके लिए कितने क्लेश और रक्तपात की कीमत देनी पडी ? कम्यूनिस्ट हलको मे इसे महान् क्राति के नाम से गौरवान्वित किया गया। विनोवा ने भूमिहीन मजदूरो को, जो कि देहाती समाज में सबसे अधिक दरिद्र है, किसी भी वाह्य हिसक-कृति से द्वेष तथा मन-मुटाव पैदा किये बिना इससे कही अधिक भूमि दिला दी है।

हम अपने सामने जो देख रहे है, वह एक नैतिक और भौतिक क्राति है। जो लोग विनोवा के आन्दोलन का मजाक करते थे—और इनमें मत्री तथा सयोजन-समिति के सदस्य भी थे—अब उसकी परिणामकारकता के कायल हो गये है। हमारे प्रधान-मत्री, अलग-अलग राज्यो के मत्री और काग्रेस ने अब इस आन्दोलन को शुभाशीर्वाद दिये है।

मूक क्राति

देहाती भारत मे एक मूक-क्राति हो रही है। भविष्य के लिए उसमे जो सभावनाए छिपी हुई है, उनको देखने के लिए कई बहुत बडी शक्ति की जरूरत नही है। लेकिन पूछा जाता है कि क्या इससे जमीन का मसला हल हो जायगा ? जिन समस्याओ के कारण क्राति होती है, उन समस्याओ को एक ही छलाग मे कोई क्राति हल नही करती। नये मूल्यो के चरितार्थ होने में जो मानसिक और भौतिक वाधाए होती है, उनका निराकरण क्राति सबसे पहले करती है। विघ्नो को दूर करने के बाद फिर उपयुक्त वैधानिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक सस्थाओ मे उन मूल्यो की प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है।

विनोवा के भूदान आन्दोलन का समीक्षण इन बातो के प्रकाश में करना चाहिए।

: ३ :

भूदान-आन्दोलन और सामाजिक क्रान्ति

जहा तक प्रत्यक्ष रूप से भूसपत्ति और अप्रत्यक्ष रूप से धारण सपत्ति के पति हमारे खयालो और मान्यताओ को बदलने मे भूदान-आन्दोलन सहायता कर रहा है, यह आन्दोलन निस्सदेह क्रातिकारी है। उत्तर-प्रदेश और बिहार मे जमीन के बाजार पर इसका असर पड चुका है, जमीन की कीमत गिर गई है और जहा-कही थोडी खरीद-बिक्री होती है।

किन्तु किसी आन्दोलन को क्रातिकारी होने के लिए सिर्फ उतना ही जरूरी नही है कि उसके किसी सामाजिक व्यवस्था के प्रति स्थिति, खयालो और मान्यताओ मे परिवर्तन हो, और न यही कि परिवर्तित विचारो और मान्यताओ और दृष्टिकोण को कुछ लोग या एक छोटी जमात अमल में लावे।

नये विचारो को चाहिए कि मानवता की किसी जमात मे सर्वसाधारण के मनोभावो का प्रतिनिधित्व करे और एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश करे, जो वास्तव मे पुरानी व्यवस्था से भिन्न हो। इतिहास के प्रारम्भ से ही बहुत सुधारको और पैगम्बरो ने धन की निंदा की है और सामाजिक तथा आर्थिक समानता की वकालत की है। गौतमबुद्ध ने ऐसा किया था। समाज का निर्माण पूर्ण आर्थिक समता के आधार पर होता था और सभी चीजो पर सभी का अधिकार था। सभ्यता के एक विशेष प्रगति-सोपान पर साम्यवादी समाज स्थापित था। आधुनिकतम्यवादी आवश्यकता "हरेक से उसकी क्षमता के अनुसार काम और हरेक को उसकी आवश्यकतानुसार उपयोग की सामग्री मिले" की पूर्ति उस समाज ने आज के कम्यूनिस्ट रूस की अपेक्षा अधिक पूर्णता से की थी। किन्तु वह समानता समाज की सभी जमातो में लागू नही थी, बल्कि खासतौर से बौद्ध भिक्षुओ और सन्यासियो तक ही सीमित थी।

ईसामसीह ने कहा था, "अमीर के लिए स्वर्ग में प्रवेश करने की

अपेक्षा सुई के छेद से ऊट का निकलना आमान है ।" ईसाई मत के प्रारम्भ मे साम्यरूपी समाज निर्मित होते थे, जहा सपत्ति सार्वजनिक स्वामित्व मे रखी जाती थी, और ईसामसीह ने मनुष्य की सामाजिक समानता का प्रचार किया । वह स्वय बढई के बेटे थे, उनके साथी मछुए थे और वह पापियो, कर वसूलनेवालो और वेश्याओ के साथ भी रहा करते थे, फिर भी जो परिवर्तित मान्यताए ईसा ने चलाई, उन्हे एक छोटी जमात के लोगो ने अमल मे लाया । मानवजाति के किसी भाग मे भी सर्वसाधारण की चीज वह नही बन सकी । स्पष्टत, उसके लिए समय नही आया था, यानी, नई आर्थिक मान्यताओ ने समय के तकाजो का प्रतिनिधित्व नही किया । इसलिए विश्वव्यापी होने मे वे असफल रही ।

समय का तकाजा

बुद्ध के समय से ही अस्पृश्यता को भारत मे बुरा माना जाता रहा है । बुद्ध तो और आगे गये थे और उन्हे जाति-प्रथा मे भी विश्वास नही था । कबीर और नानक जैसे मध्यकालीन सतो ने अस्पृश्यता और जाति-प्रथा की निन्दा की । एक छोटे दायरे मे इन सुधारो ने अच्छी सफलता पाई किन्तु सर्वसाधारण द्वारा अमल मे वे नही लाये जा सके, पर अस्पृश्यता के खिलाफ गाधीजी के आन्दोलन को सराहनीय सफलता मिली, क्योकि वर्तमान काल मे भारत और सारे ससार की सामाजिक, आर्थिक समानता के समय के तकाजे की पूर्त्ति की । नये आन्दोलन तभी सफल होते है, जब वे समय के तकाजे का प्रतिनिधित्व करते है । मै समझता हू कि विनोबा भावे का भूदान-आन्दोलन भारत मे भूमि के पुनर्वितरण के समय के तकाजे की नुमाइन्दगी करता है । यही कारण है कि भूदान आन्दोलन को आशातीत सफलता मिली है ।

जमीदारी प्रथा

स्वतन्त्रता के पहले भी जमीदारी-प्रथा के खात्मे की माग थी । जमीदार, जो पहले मालगुजारी वसूल करनेवाले होते थे, अब जमीन के मालिक बन गये थे, जिसे वे रैयतो से जोतवाने लगे । जमीन की हकीकत की

अनिश्चितता से किसानो को वडी कठिनाइया झेलनी पडी। इसके अलावा समय-समय पर किसानो को गैरकानूनी रकमे देनी पडती थी। किसानो को जमीदार की जमीन पर भी काम करना पडता था। इसके लिए उन्हे नाम-मात्र की मजदूरी मिलती थी। किसान को जमीदार का घरेलू काम-काज भी करना पडता था। उसकी वैलगाडी और वैलो को जमीदार, विना कुछ दिये या नाम-मात्र की मजदूरी देकर इस्तेमाल करता था।

जन्म, शादी और पर्वो के अवसर पर किसानो को सामग्री या रुपये से जमीदार की मदद करनी पडती थी। जव जमीदार घोडा या हाथी खरीदता था, अपना घर वनवाता था, उस समय भी किसानो को उसकी मदद करनी पडती थी। जव किसान को वीज और कृपि-उपकरणो को खरीदने या फसल की मरनी के साल मे जान वचाने के लिए अन्न की आवश्यकता होती थी, अथवा जन्म, शादी और परिवार मे किसी के मौत के समय खर्च के लिए रुपयो की आवश्यकता होती थी तो जमीदार सूद की वहुत ऊची दर से उन्हे रुपया देता था। कर्ज और सूद फसल की कटनी के समय वापस करना होता था, जव कि कृषि-उत्पादको की कीमते निम्नतम होती थी। इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक किमान जमीदार के कर्ज मे डूवा रहता था। उनका सपूर्ण जीवन गरीवी के खूनी चगुल म जकडा हुआ वीतता था।

इस वीसवी सदी मे हिन्दुस्तान मे किसानो से इन्ही गैरकानूनी वसूलियो और जमीन से उनको वेदखलियो के खिलाफ चलाया जाता था। उन समय जमीदारी उन्मूलन का कोई सवाल नही था। वीसियो के आन्दोलन से कुछ कानून वनाये गए, जिनसे किसानो को कुछ राहत मिली। किसानो को अपनी जोत हस्तातरित करने का हक मिला। जमीदार की गैर-कानूनी वसूलियो से किसानो को थोडी राहत मिली। फिर भी कानून और नये प्राप्त अधिकारो के वावजूद किसानो को धनी और शक्तिशाली जमीदारो के खिलाफ जवर्दस्त लडाइया लडनी पडी। पुलिस और मजिस्ट्रेट भी जमीदारो की मदद करते रहे। कानूनी या गैरकानूनी वेदखलिया

आमतौर से की जाती रही । नाजायज वसूली किसी-न-किसी रूप मे बरकरार ही रही । शीघ्र ही महसूस किया गया कि जबतक जमीदारी-प्रथा को नेस्तनाबूद नही कर दिया जाता, जमीदारो के दमन और आतक से किसानो को मुक्ति नही मिल सकती । सभी राजनैतिक पार्टियो, काग्रेस, सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट ने अपने कार्यक्रम और घोषणा-पत्रो मे जमीदारी-उन्मूलन को प्रधानता दी । काग्रेस भी भूमिसुधार का वादा कर चुकी थी, इसलिए सत्ता सपन्न होते ही उसने जमीदारी-उन्मूलन के प्रश्न को अपने हाथ मे लिया । किन्तु मन्थरगति मे काम करना काग्रेस-सरकार की एक खूबी है । जमीदारी-उन्मूलन-कानून के बनाने मे अनावश्यक रूप से इतना अधिक समय लगाया गया कि जो उससे अच्छा परिणाम निकलता, नही निकला ।

कुछ जगहो मे, जैसे बगाल मे, काग्रेसी शासन के छ वर्षो के बाद भी इस दिशा मे कुछ नही किया गया । जहा पर छ वर्षो के बाद भी, जैसे उत्तर-प्रदेश में, जमीदारी-प्रथा खत्म की गई, वहा पर जमीदारो ने विलम्ब का इस्तेमाल मुनाफा कमाने मे किया और किसानो तथा सपूर्ण राष्ट्र को क्षति पहुचाई, लगातार बेदखलिया होती रही और उनका क्रम आज भी कुछ जारी है । अपना अधिकार जमाने के लिए बहुत-सी जमीन नामके लिए जमीदारो ने जोत ली है । जमीदार ने अधिकार से वचित हो जाने के डर मे किसानो को जोतने के लिए जमीन नही दी, इससे पैदावार गिर गई । सर्वत्र जमीदारो ने पेड काट डाले । इससे जगल बर्बाद हो गए है । अभी भी यह क्रम जारी है ।

भूमि के पुनर्वितरण की माग

जमीदारी-प्रथा की समाप्ति के बाद आज सारे देश मे यह महसूस किया जा रहा है कि सिर्फ जमीदारी के खतम हो जाने से देश की कृषि-समस्या का हल नही हो जायगा । जमीन का फिर से बटवारा हो और वह भी भूमिहीन मजदूरो के पक्ष मे । जमीन के बटवारे का प्रश्न सबसे पहले सोशलिस्टो ने उठाया था । उन्होने नारा दिया "धन और धरती बट के

रहेगी।" किसान-मोर्चों और सम्मेलनो द्वारा इस नारे को लोक-प्रिय बनाया। सारे देश मे, हर गाव मे उन्होने इस नारे को पहुचा दिया।

भूदान-आन्दोलन ने इस नारे को अपना लिया। ऐसा जबर्दस्त वातावरण जमीन के बटवारे के पक्ष मे तैयार हुआ कि पचवर्षीय योजना के अन्तिम और दोहराए हुए स्वरूप की रिपोर्ट मे योजना बनानेवालों को जमीन के मामूली तौर पर फिर से बटवारे की बात जोडनी पडी। कम्यूनिस्टो ने कट्टरता का रास्ता अपनाया। तैलगाना मे किसानो से उन्होंने कहा कि जमीदारो की जमीन छीन लो। जितना हिंसात्मक ढग से यह किया गया उतने ही हिंसात्मक ढग से सरकार ने उसे दबा भी दिया।

जमीन का बटवारा निहायत जरूरी

गावो के देश भारत में बढती हुई बेरोजगारी के कारण जमीन का बटवारा समय की एक जोरदार माग बन गया है। पचास वर्ष पूर्व गावो में कुछ ही लोग बिना जमीन के थे। कुछ-न-कुछ जमीन उनके पास भी थी। उस समय से किसानो से जमीन छीनने का काम तेजी से आगे बढा है। बडे जमीदारो ने इस काम को शुरू किया था। किन्तु जिस काम को बडे जमीदार करने मे असमर्थ रहे, उस काम को शहरो में रहनेवाले व्यवसायियो ने अपने नवोपार्जित धन से किया। इसका नतीजा यह हुआ है कि आज गावो मे भूमिहीन मजदूरो की सख्या उन लोगो की अपेक्षा अधिक है, जिनके पास जमीन है, और भूमिहीन लोग साल के बहुत से महीनो में बेकार रहते है।

इस प्रकार जमीदार और शहरी अमीरो द्वारा जमीन हडप ली गई है और गावो मे रोजगारी के रास्ते सिकुडते जा रहे है। पश्चिम से मशीनो द्वारा उत्पादित वस्तुओ के कारण हमारे छोटे-छोटे उद्योगो का ह्रास होता गया है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जब हमारे देश मे अपनी सरकार कायम हो गई, ह्रास का काम तेजी से चलता रहा। हमारे देश के करघा-उद्योग को देशी और विदेशी कारखाने के बने उत्पादनो की प्रतियोगिता

का सामना पड रहा है। आज तो स्थिति ऐसी है कि हमारे पिछडे और बर्बाद अर्थतत्र के पुनर्निर्माण के लिए, यदि सत्तारूढ दल अपने विचारो मे मौलिक परिवर्तन नही करता तो करघा-उद्योग का पुनरुद्धार नही हो सकता।

पचवर्षीय योजना मे पूजीवादी उत्पादन पर ज्यादा जोर है। इसलिए जिस सुधार के पास कोई राजनैतिक सत्ता नही हो या सरकारी मशीनरी पर नियत्रण न हो, उसे जमीन की ओर मुडना पडेगा। यह श्री-विनोबा का श्रेय है कि उन्होने एक तरीका निकाला है, जिसके जरिये बिना सरकारी या कानूनी कार्यवाही के भूमिहीनो को भूमि मिल सकती है। जिनको देखने के लिए आखे है, वे स्पष्टत देख सकते है कि देश को किस रास्ते से लिये जा रहे है वह। यही भूदान-आन्दोलन की पृष्ठभूमि है। यह भूमि के पुनर्वितरण की दिशा मे चलनेवाला आन्दोलन है। यह देश की आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्त्ति करता है और आर्थिक-समता की दिशा मे एक कदम है। इसका रास्ता अहिसा का है। इस प्रकार विनोबाजी गाधीजी के उद्देश्य की पूर्त्ति कर रहे है। इस प्रकार भूदान- आन्दोलन युग की भावना के साथ है और युग की पुकार है 'समता'।

शासन और सम्पत्ति का अधिकार

पिछली तीन सदियो से पश्चिम राष्ट्रीय-सुदृढता, राजनीतिक-स्वतन्त्रता और जनतत्र के साथ व्यस्त रहा। छोटे-छोटे राज्य, कभी-कभी शातिपूर्ण तरीके से, कभी युद्ध के जरिये राष्ट्रीय राज्यो मे सूत्रबद्ध हो गये। जहा कही विदेशी दबाव था, उसे स्वतन्त्रता-आन्दोलन द्वारा खत्म किया गया। सम्राटो, राजाओ, राजकुमारो के उत्तराधिकारी शासन को जनतान्त्रिक शासन द्वारा हटाया गया। पूरब के औपनिवेशक देशो मे १९-वी सदी के उत्तरार्ध मे राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता और जनतत्र का आन्दोलन शुरू हुआ। ऐसे राज्यो मे से कुछ मे यह काम वर्तमान सदी मे पूरा हुआ। कुछ राज्यो मे अभी यह क्रम जारी है। पिछली सदी के मध्य मे सारे ससार मे एक नई माग जोर पकडती जा रही है। यह माग सामाजिक और आर्थिक समानता की है।

सामाजिक आर्थिक-समानता की माग फ्रास की क्राति से शुरू हुई। क्रान्तिकारी लोग सभी सामाजिक और आर्थिक-असमानता को खत्म करना चाहते थे। कम्यूनिस्टो से पहले ही उन लोगो ने वर्गविहीन समाज का स्वप्न देखा था। फिर भी फ्रास की क्राति ने राजनैतिक जनतन्त्र का काम पूरा किया। सामाजिक और आर्थिक-समानता की स्थापना करने मे वह असफल रही। सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट आन्दोलनो द्वारा १९-वी सदी मे आर्थिक और सामाजिक-समता का प्रश्न उठाया गया। आज दुनिया के सभी देशो के दलित और उत्पीडित सदियो पुराने अत्याचार और असमानता के खिलाफ विद्रोह कर रहे है। जिन असमानता को कई सदियो तक स्वाभाविक आवश्यकता की और विधि के विधान के रूप मे माना जाता रहा, आज उन्हे मनुष्यकृत 'लालच' बहुत के खिलाफ कुछ की कमजोर और असगठित के खिलाफ बलवान और सगठित की लूट-खसोट, शोषण और हिंसा का परिणाम माना जाता है।

शासन और दैवी अधिकार

जनतन्त्र के प्रारम्भ के पूर्व वशानुगत शासन को पृथ्वी पर खुदा का नुमाइदा माना जाता था। उसे शासन करने का दैवी अधिकार था। चाहे उसका शासन या चरित्र जैसा भी हो, प्रजा उसके साथ प्रेम और राजनीति के बधन से बधी होती थी। राजनैतिक जनतन्त्र ने इन सभी दैवी अधिकारो को मनुष्यकृत और क्रूर कह कर उनकी भर्त्सना की और राजनैतिक समानता की स्थापना की। किन्तु सामाजिक और आर्थिक समानता के अभाव में राजनैतिक समानता निरर्थक साबित हुई है। इसलिए आज कल सामाजिक, और आर्थिक विषमताओ को खत्म करने का प्रयास किया जा रहा है। सामाजिक आर्थिक-असमानताओ को आज मनुष्यकृत माना जाता है। न तो वे स्वाभाविक है और न विधि के विधान ही। वे मनुष्य पर अन्याय और कठिनाई ढाती है। इसलिए, यदि ससार की सभ्यता की प्रगति करनी है तो ऐसी असमानताओ का अन्त करना होगा।

: ४ :

भूदान-यज्ञ क्यों सफल होगा ?

जातीयता

सामाजिक दृष्टि से जाति-प्रथा को, चाहे वह पश्चिम की तरह बदलने वाली हो या भारत की तरह जड़, खत्म करना जरूरी है। आज जनता यह मानने को तैयार नहीं कि जन्म से कुछ को स्थायीतौर पर कुछ सुविधाएं मिलें और बहुतों को असुविधाए। किसी खास परिवार या जाति में जन्म लेने के कारण ही कोई अच्छा होता है, ऐसा भी आज कोई मानने को तैयार नहीं।

समाज-शास्त्र, जीव-विज्ञान या जाति-विज्ञान में कोई ऐसी बात नहीं, जिससे मनुष्य और उसके समाज के बारे में उपर्युक्त मत की पुष्टि हो सके। हिन्दुस्तान के अस्पृश्य आज नहीं सोचते कि यदि कोई सवर्ण हिन्दु उनके हाथ से खाद्य-पदार्थ या पानी स्वीकार कर ले तो वे पाप करेंगे। वे आज सवर्ण हिन्दुओं के साथ अपनी समता की घोषणा कर रहे हैं। नीची जातिवाले ऊंची जातिवाले खास कर ब्राह्मणों के अहकारपूर्ण सामाजिक दबदबे को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं। दक्षिण में एक ऐसी जबर्दस्त हवा बह रही है कि राजनैतिक और प्रशासन एवं शिक्षा के क्षेत्रों में ब्राह्मण होना एक अभिशाप और गैर-ब्राह्मण होना एक वरदान हो गया है।

आज ऊंची और नीची जातियों में विश्वास को तलवार और बम द्वारा पोसा जाता है। बगैर वंश, जाति, वर्ग, योनि के ख्याल के सामाजिक दृष्टि से सभी मनुष्य बराबर हैं और उन्हें बराबर मानना चाहिये। इस बराबरी की स्थापना के लिए सर्वत्र आन्दोलन चल रहे हैं। अफ्रीका या अमेरिका में नीग्रो, जहा भी हों, स्वतन्त्रता और समानता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यूरोपीय या अमेरिकी गोरों की प्रभुता को मानने या उसे बर्दाश्त करने को एशियाई तैयार नहीं।

आर्थिक-क्षेत्र में मजदूरों को वाजिब मजदूरी मिलनी चाहिए, जिसका

निर्धारण वे अपने सामूहिक-सौदा द्वारा करेगे। मजदूर आज यह माग करते है कि उनके काम के घटे सीमित हो। समय-समय पर उन्हे सवैतनिक छुट्टी मिलनी चाहिए। बीमारी, वृद्धावस्था, जच्चा के सकटमय दिनो के लिए खाने कपडे की व्यवस्था रहे। महिला कर्मचारियो के लिए प्रसव के पूर्व और बाद सवैतनिक छुट्टी होना चाहिए।

बदलता हुआ समय

मजदूर मुनाफे मे हिस्सा मागते है और उद्योग का प्रबध सहयोग-आन्दोलन के जरिये करना चाहते है। हर जगह बडे उद्योगो के राष्ट्रीयकरण और समाजीकरण की माग है, जो जोते, जमीन उसीकी हो या समाज की हो या उसका राष्ट्रीयकरण हो, यह ऐसी माग आज की जा रही है। स्त्रिया निम्नस्तर मे रहने को तैयार नही। रामायण के युग मे एक आदर्श-वादी राजा अपनी स्त्री को निकाल देने की धमकी देता था, यदि वह अग्नि-परीक्षा मे खरी नही उतरती। महाभारत मे धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर पाचो पाडवो की सयुक्त पत्नी को जुए मे हार गया। मनु ने बताया है कि स्त्री को अपने पिता या पति के अभिभावकत्व मे या इन दोनो की अनुपस्थिति मे अपने भाई या बेटे के अभिभावकत्व मे रहना चाहिए, और हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है, जहा स्त्रियो को देवी समझा जाता था। बिना देवी के कोई देव नही था, और न स्त्रियो के बिना हिन्दुओ का कोई प्रमुख उत्सव मनाया जा सकता था। फिर भी अपने पति के प्रति प्रेम और वफादारी स्त्री का सर्वोच्च धर्म है और उसकी मुक्ति इसी जरिये हो सकती थी।

स्वामि-भक्ति की परीक्षा

स्त्री को अपने क्रूर और दुश्चरित्र पति के प्रति भी वफादार रहना पडता था। यही उसकी स्वामि-भक्ति थी, परीक्षा का विषय था। और ताज्जुब तो यह है कि ऐसी विषम-स्थिति मे भी वह अपने मालिक को प्रेम करती थी, जिसे उसके मा-बाप उसपर लाद देते थे, किन्तु वह प्रेम आज अपने मन से चुने गए पति के प्रति किये जानेवाले प्रेम से अधिक था। सदियो तक स्त्रियो की निम्न सामाजिक-स्थिति का बना रहना इसलिए सभव रहा

कि उसे उचित मानने को प्रशिक्षित किया जाता था। उस स्थिति को मानना उसका धर्म था। आज वह सब कुछ बदल गया है, या बदलता जा रहा है। वह परदे से बाहर आ गई है। मर्द की तरह वह शिक्षा की माग करती है। मत के जरिये उसने राजनैतिक-समता प्राप्त कर ली है और वह आर्थिक और सामाजिक समता एव स्वतन्त्रता की माग कर रही है। काम और सेवा के सभी मार्ग उसके लिए खुले होने चाहिए।

बच्चे भी अपने हको को पहचानने लगे है। माता-पिता की अब वे सपत्ति नही है। वे प्रेम और स्वतन्त्रता के वातावरण मे ही विकसित हो सकते है। उन्हे खेलने-कूदने का काफी मौका मिलना चाहिए।

सभी विद्रोह की राह पर

दुनिया मे हर जगह शोषित और पीडित—कुली, कारखाने के मजदूर, खेतीहर, सडक बनानेवाले, पत्थर तोडनेवाले सभी हिंसात्मक या अहिंसात्मक, सक्रिय या अकर्मण्य रूप से विद्रोह कर रहे है। वे पुराने सीकचो मे जकडे नही है और अपनी स्थिति के लिए ईश्वर को धन्यवाद नही देते। वे आज यह विश्वास नही करते कि जिस दर्दनाक स्थिति मे वे है, उससे छुटकारा नही पा सकते।

आज वे सगठन, सहयोग, विरोध और योजनाबद्ध सामाजिक आर्थिक-नवनिर्माण मे विश्वास करते है। वे न्यायोचित और समतावादी कानून चाहते है, जिससे असमानता खत्म हो और मानव-जाति को स्वस्थ तथा सुख की गारटी मिल सके। आज सामाजिक, आर्थिक-न्याय की माग विश्वव्यापी है, क्योकि राजनैतिक समता को आज ससार भर मे अच्छा और वाछनीय माना जाने लगा है, और अधिनायकवाद का भी खामियो के बावजूद बहुत हद तक सफलता मिली है।

युग-भावना

यह युग की भावना है। यदि युग की माग की पूर्ति शातिमय तरीके से नही होगी, तो हिंसा और लडाई के जरिये होगी और वे नयी ...ओ को जन्म देगी। जहा तक भू-समस्या का सबध है, अपने शातिपूर्ण

और अहिंसात्मक आन्दोलन के जरिये विनोबा इस समता और निकट समता की स्थापना की कोशिश कर रहे हैं। इस प्रकार हिन्दुस्तान और संसार में युग की पुकार के अनुसार वह काम कर रहे हैं। इसलिए उनका आन्दोलन विद्युत गति से आगे बढ रहा है, और उसे सराहनीय सफलता मिल रही है। हिन्दुस्तान में जहा पर कुछ कट्ठे जमीन के लिए अपने भाइयो के बीच खूनी झगडे हो जाया करते थे वहा आज सैकडो एकड जमीन बिना किसी धक्कम-फजीहत के विनोबाजी को और उनके नाम पर जो लोग जाते हैं, मिल रही है। विनोबा के अलावा जो लोग जमीन माग रहे हैं, उनमे सब-के-सब सुप्रसिद्ध व्यक्ति नही हैं, उनमे से अधिकाश नम्र रचनात्मक कार्यकर्त्ता हैं।

किसी क्रातिकारी आन्दोलन के लिए सिर्फ यही काफी नही है कि वह समय और देश की माग का प्रतिनिधित्व करे। आन्दोलन को जनता की भावनाओ के अनुकूल बनाना चाहिए यदि इसे तात्कालिक सफलता प्राप्त करनी है और जनसाधारण के बीच जाना है। व्यक्ति की तरह ही राष्ट्र का एक स्वभाव होता है। यही स्वभाव उसका स्वधर्म निर्धारित करता है। व्यक्ति या राष्ट्र के इस स्वभाव को दबाना सभव है और उसके स्वाभाविक झुकाव से उसे विमुख करना सभव है। किन्तु व्यक्ति और राष्ट्र दोनो की प्रगति और विकास के लिए सबसे अच्छा और सहल रास्ता यह है कि वह स्वधर्म के अनुसार काम करे।

जनभाषा में

जिस राह से विनोबा अपने आन्दोलन को सगठित कर रहे हैं, वह हमारी जनता की मानसिक बनावट के अनुकूल है। वह जनता से कहते हैं कि सूर्य, हवा और पानी की तरह जमीन भी ईश्वर की है। व्यक्तियो को अपने और अपने परिवार के लिए जितना आवश्यक है, उससे ज्यादा अपने पास नही रखना चाहिए। जरूरत से अधिक जितनी जमीन है, ईश्वर के नाम में दान कर देना चाहिए। यदि वह अपने आन्दोलन को कम्यूनिस्टो के रास्ते पर ले चले तो वह जनता को राय देते हैं कि सामूहिक हिंसा द्वारा

जमीन छीन लो, जैसा तेलगाना मे किया गया, या जबतक तुम्हारे हाथ मे राजनैतिक सत्ता न आ जाय, जिससे कानून बनाकर जमीन का समान रूप से फिर से बटवारा किया जा सकता। किन्तु विनोबाजी ईश्वर के नाम पर जनता से अपील करते है। यह ईश्वर दूसरा कोई नही, वे-जमीन दरिद्रनारायण ही है।

हालाकि भारतीय जनता एक धर्म निरपेक्ष राज्य मे रहती है, वह धर्म की भाषा समझती है। काग्रेस सरकार भारत की आत्मा को धर्मनिरपेक्ष नही बना सकी, और न सविधान की एक धारा से यह काम होगा।

किन्तु ईश्वर के नाम से प्रभावशाली ढग से कौन अपील कर सकता है ? सिर्फ वही, जिसके जीवन और विश्व मे ईश्वर की मौजूदगी कुछ वास्तविक है। यह एक सत्य है, जिसे वह महसूस कर सकता है। यह कोई ऐसी चीज नही है जिसकी कल्पना भी की जाय या जिसे ऊपर से पहन लिया जाय।

किन्तु हम दोनो एक ही चीज चाहते है—विनोबाजी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से और मै सामाजिक दृष्टिकोण से। गाधीजी ने हमेशा कहा कि आध्यात्मिक और नैतिकता की दृष्टि से जो अच्छा है, वही अच्छी राजनीति है और अच्छा अर्थशास्त्र भी है। हमारा दृष्टिकोण यदि नेकनीयती से भरा है, तो वह हमे इस निष्कर्ष पर पहुचने को बाध्य करता है कि जमीन जोतनेवाले की हो। यह सिद्धात नैतिकता, विवेक, राजनीति और अर्थशास्त्र तथा सामाजिक समता की दृष्टि से सच्चा है। जमीदारी और सामतवाद ऐसी समस्याए पैदा करते है कि जीवन के इन सभी क्षेत्रो मे उनका जनता पर प्रभाव पडता है। पर गाधीजी के अनुसार जीवन एक समन्वित पूर्णता है। इसे अलग-अलग विभागो मे नही बाटा जा सकता।

मध्यस्थित स्वार्थों को हटाना आवश्यक

कृषि मे, मध्यस्थित व्यक्तियो की मौजूदगी, जो कोई उपयोगी काम नही करते, नैतिकता की दृष्टि से अनुचित है, जिससे वर्गीय वैमनस्य और घृणा की उत्पत्ति होती है। राजनैतिक दृष्टि से जमींदारी-प्रथा गलत

है क्योकि जैसा कि विनोबाजी भी कहते है, यह खूनी क्राति के लिए स्थितिया पैदा करती है। आर्थिक-दृष्टि से यह शोषण, विषमता और मजदूरी की गुलामी की ओर ले जाती है। सामाजिक दृष्टि से, यह जनता को वर्गो और जातियो मे विभाजित करने के लिए उत्तरदायी है।

उन मध्यस्थित व्यक्तियो की मौजूदगी जो कोई उपयोगी काम नही करते बुद्धिमानी के विरुद्ध है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह पद्धति खराब है। इससे जमीदार और किसान दोनो के बीच अवाछनीय उलझने पैदा होती है। सबसे पहली बार विनोबाजी जमीन के सवाल को हल कर रहे है किन्तु वह इस बात से अपरिचित नही है कि उनकी भाषा से सब धन भगवान् का है, और समाजशास्त्र की भाषा मे, धन एक सामाजिक-उपज है। सपूर्ण समाज के सहयोग के बिना कोई धन हो ही नही सकता। किसी निर्जन द्वीप मे रॉबिन्सन क्रूसो कोई धन पैदा नही कर सकता।

सिर्फ जमीन का दान प्राप्त करने से ही नही, बल्कि दान देनेवालो और दान लेनेवालो तथा सर्वसाधारण के मामलो मे विनोबाजी का तरीका जनता की भावनाओ के अनुकूल है। वे सभी विनोबाजी को समझते और उनकी बात मानते है। सब कुछ यज्ञ की भावना से प्रेरित होकर किया जाता है। तब विनोबाजी भूमिहीनो को प्राप्त-भूमि पर पुनर्वासित करने के लिए कहते है। वह साधारणत नगद दान नही मागते। वह बैल, हल आदि मागते है। वह यह भी चाहते है कि गरीब किसानो के लिए कुए खोदे जाय। जो धनी-दानी व्यक्ति ऐसी चीजो का प्रबन्ध नही कर सकते उनसे रुपये की माग की जाती है। विनोबाजी का कोई साधारण मुद्रानिधि निर्माण करने का उद्देश्य नही।

जनता की दानशीलता का उपयोग

यदि गावो मे आप नकद रुपये की माग करे तो नही मिलेगा। किन्तु, यदि आप गल्ला मागे, तो जितना आप मागते है, उससे अधिक मूल्य का गल्ला मिल जायगा। यदि आप मकान के लिए नकद रुपये मागेंगे तो शायद न मिले, किन्तु यदि आप ईंट, सिमेंट आदि बनानेवालो से ये चीजे मागे तो मिल जायगी। यदि किसी कपडा पैदा करनेवाले से गरीबो के लिए दो सौ रुपया मागे तो हो सकता है, नही मिले, किन्तु उनके लिए थोडा कपडा मागे तो जितना मागेंगे, उससे ज्यादा भी मिल सकता है। रुपये की अपेक्षा चीजे ही मागने का विनोबाजी का विचार मैंने देखा। स्वर्गीय श्रीजमनालाल बजाज की पत्नी श्रीमती जानकीदेवी बजाज को मैंने देखा कि अमीरो को वह कुआ खोदवा देने या कुआ खोदने के लिए दान देने के लिए आमन्त्रित करती रहती है। सामाजिक दान की यह बहुत ही पुरानी पद्धति है। भूतकाल मे, हर दानशील राजा-राजकुमार और अमीर आदमी कुआ खोदवाने और रास्ते के किनारे पेड लगवाने की ओर झुकता था। जो लोग साल के आठ महीनो के लिए सूखी और तप्त-भूमि मे पानी और छाह की व्यवस्था करते थे, सचमुच मे उनकी उपादेयता महान् है। जानकी-देवी का उद्देश्य बहुत सफल हो रहा है। थोडे ही समय मे तीन सौ कुओ के लिए उन्होने रुपये जमा कर लिये है। लोग उन्हे बैल या रुपये भी देते है। हिन्दुस्तान मे गाय और बैल सदा से दान मे दिये जाते रहे है। यह दान कुछ ऐसी चीज है, जिसे लोग जानते और समझते है। जनता की भावनाओ और परम्परा के अनुसार काम करने की इस पद्धति के कारण ही भूदान आन्दोलन की सफलता अवश्यम्भावी है।

: ५ :

क्रान्ति की प्रेरणा-शक्ति और भूदान-आन्दोलन

विनोबा की यात्रा

जो रास्ता हमे गाधीजी ने दिखाया, उसी पर उनके शिष्य विनोबा चल रहे है। गाधीजी की तरह विनोबा भी यह मानते है कि इन्सान केवल शरीर का पुतला नही है, उसमे आत्मा भी है। कोई इन्सान इतना पतित नही होता, जिसके दिल पर सही अपील का असर न पडे। कई जमीदारो ने, जो वडे पत्थर- दिल समझे जाते थे, विनोवा को वडी उदारता के साथ अपनी जमीन का दान दिया है। यही नही, वल्कि विनोवा के साथ वे खुद भी जमीन मागने निकल पडे है। अपनी यात्रा मे विनोवा केवल भूमि के मसले तक ही सीमित नही रहते है। वे आम जायदाद या सपत्ति की वात करते है और कहते है कि यह ट्रस्ट है, जिसे समाज की खातिर एहतियात से वरतना चाहिए। अपनी प्रार्थना-सभाओ मे वह सत् और अहिसा का गाधीजी का दर्शनशास्त्र भी समझाते है। इसके अलावा देश की नई रचना करने के लिए अपनी व्यावहारिक योजनाए भी पेश करते है—जैसे खादी, देहाती धधे, गाव सफाई, खाद वनाना, स्वदेशी, नई तालीम इत्यादि।

विनोवा गाधीजी के सच्चे वारिस

आज हमारे देश मे ऐश-आराम, दिखावट और सत्ता-मोह का वातावरण छाया हुआ है। ऊचे और वडे कहे जानेवाले लोग गाधीजी के विचारो को ठुकरा रहे है और घूसखोरी और चोरवाजारी जोर-शोर से चल रही है। इस हवा के अन्दर विनोवा अपने गुरु का चिराग दुवारा जलाकर सादगी, सेवा और कुर्वानी का विचार फैला रहे है। लोग जानते हो या न जानते हो, गाधीजी के विचारो या आदर्शो के सच्चे वारिस विनोवा ही है। उन्हीके तरीके से विनोवा काम कर रहे है और देश की नई रचना के लिए गाधीजी की योजनाओ को अमल मे उतार रहे है।

गुण और बल के आदोलन की प्रगति

यहा अब हमारी निगाह एक दूसरे पहलू पर पडती है, जो हर क्राति मे दिखाई देता है, चाहे वह क्राति आध्यात्मिक हो या भौतिक। पैगबर, गुरु, सुधारक या नेता लोग अपना सदेश दे-देकर एक आदोलन शुरू कर देते है। फिर अपने औसत और मामूली साथियो के हाथो मे गुण और बल पैदा कर देते है। नये विचारो के असर मे और गुरु के नाम के बल पर वे लोग ऐसे-ऐसे काम कर डालते है, जो मामूली तौर से उनकी अक्ल, सूझ और ताकत के बाहर होते है।

गौतम बुद्ध के चेले न बहुत ऊचे खानदानवाले थे, न बडे विद्वान् या दिलेर थे। लेकिन उन्होने हिमालय की चोटिया पार कर डाली और दूर-दूर के समुद्र लाघ दिये। उनमे से बहुत से तो फिर इस देश मे वापिस लौटे ही नही। मशहूर किस्सा है कि जब ईसा ने अपना नया सदेश सुनाया तो उनके वे चेले, जो मछलिया पकडते थे, आदमी पकडनेवाले बन गए। उन्होने रोगियो को स्वस्थ कर दिया, भूत-प्रेत को निकाल दिया। भूखो को खाना खिलाया और जेब मे पैसा या बदन पर फालतू कपडा लिये बिना सारी दुनिया उन्होने घूम डाली। फिर भी उन्हे खाना-कपडा, और मकान की कोई तकलीफ नही रही। मुहम्मद ने भी जगल के अज्ञात रहनेवालो के दिल मे ऐसी चिनगारी पैदा कर दी कि इस्लाम के नाम पर या "एकमात्र सच्चे धर्म" के नाम पर ये नीमजगली लोग दुनिया को जीतने निकल पडे।

और पैगम्बर के मरने के पचीस साल के अन्दर ही उन्होने रोम से कही ज्यादा बढा-चढा साम्राज्य खडा कर दिया। एक नये विचार और जानदार नेतृत्व के प्रभाव मे आकर अरब के उन पिछडे कबीलेवाले लोगो ने बहुत तेजी के साथ ज्ञान-कला हासिल कर ली। देखते-देखते वे दुनिया के सबसे ज्यादा बढे-चढे मुल्को के मानसिक, कलात्मक और सास्कृतिक-जीवन पर असर डालने लगे। थोडे ही समय के भीतर सभ्यता और सस्कृति के मामले मे वे अपने पडोसियो से कही आगे बढ गए। इस तरह ज्ञान और विज्ञान के दायरे मे एक नई प्रगति हो गई।

इस्लाम ने जिन देशो पर विजय प्राप्त की वहा नये धर्म के प्रचार के साथ-साथ वहा के लोगो को एक नई और बढी-चढी सभ्यता मे भी साझीदार बनाया। यह सब काम असाधारण योग्यता और शक्तिवाले लोगो ने नही किया। इसमे से ज्यादातर काम ऐसे लोगो ने किया, जिनकी अक्ल और सूझबूझ मामूली थी। फ्रास मे इन्कलाबी जमाने मे मामूली फ्रेंच लोगो ने बडे-बडे काम कर डाले, और फ्रास की इस उभरती हुई ताकत का सामना सारा योरोप भी नही कर सका। नेपोलियन की निगरानी मे फ्रेंच-सेना का मामूली सिपाही भी मानो एक वीर-बहादुर बन गया था।

यही चीज हमारी आखो के सामने रूस और चीन मे हुई है, जहा पर बहुत ही पिछडे लोग आगे आ गए है। जो चीज पश्चिम के देश सदियो मे नही कर सके, वही काम रूस ने तीस बरस मे कर डाला। पिछले तीन या चार बरस मे चीन ने जो कमाल हासिल किया है, उसकी हर निष्पक्ष ने तारीफ की।

यह सब काम चुनिदा लोगो ने नही किया। यह जरूर है कि उत्साह चद आदमियो से और उनके विचारो से मिला। लेकिन आम जनता ने इसमें जो हिस्सा लिया, वह बहुत ही बडा है। लेकिन यह आम जनता कौन है? वही लोग, जो सदियो से सताये जा रहे है और हमेशा से दुखी है। रूस और चीन की यह जनता वही है, जिसे न भरपेट भोजन मिलता था, न कोई ज्ञान दिया जाता था, सदा नीची निगाह से देखी जाती थी और जिसका बुरी तरह पतन हो चुका था। उनके बारे में कहा जाता था कि उसके खून मे ही कुछ ऐसी चीज है, जो उसे उठने से मजबूर करती है, वरना यह नामुमकिन था कि सदियो से वह राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक जुल्म और अन्याय, बिना सिर उठाए बर्दाश्त करती रहे। लेकिन इसी चीन ने अपने औद्योगिक और फौजी साधनो द्वारा अमेरिका की सशस्त्र शक्ति का कामयाबी से सामना किया है और उनके छक्के छुडा दिये है।

गाधीजी के नेतृत्व मे क्राति

लेकिन उदाहरणो के लिए हम हिन्दुस्तान के बाहर क्यो जाय? हमारी

बात पूरेतौर पर उस राष्ट्रीय-क्राति से भी साफ-साफ जाहिर हो जाती है, जो गाधीजी के प्रेरणात्मक और जानदार नेतृत्व मे हमारे देश मे हुई। जो काम बहादुर और निडर लोग भी पहले नही कर सकते थे, वह एक क्राति-कारी विचार और सही नेतृत्व की प्रेरणा से हिन्दुस्तान के मामूली मर्द-औरतो ने कर दिखाया। जबतक गाधीजी ने हमारे राष्ट्र को अपनी जानदार अहिसा का पाठ नही पढाया था, तबतक हमारे देश के एक-से-एक बहादुर और बडे लोग अग्रेजी राज के जुल्म और अन्यायो पर कानाफूसी करके रह जाते थे।

गाधीजी के बाद विदेशी सरकार के खिलाफ बगावत का प्रचार करना एक राष्ट्रीय-धर्म ही बन गया। जेल जाना, जो बुरा काम समझा जाता था, वह इज्जत और देश-भक्ति का निशान बन गया। जिन लोगो ने शरीर का दुख-दर्द कभी जाना भी न था, वे जेलो मे शान के साथ चले गए और उन्होने खुशी के साथ बिना किसी शिकायत के, जेल-जीवन की सख्तियो को बर्दाश्त किया। राजसी-घराने की नौजवान औरते, जो भोग-विलास मे पली थी, ऐसी औरते जिनकी गोद मे दूध पीते बच्चे थे और गर्भवती औरते तक आनन्द से जेल गई और खूनी-से-खूनी कैदियो के बीच जिन्दगी बिताई।

इसी तरह १९१७ मे गाधीजी जब चपारन गये, तब वहा चमत्कार ही हो गया। वहा पर गोरे लोग किसानो से नील की खेती जबर्दस्ती कराते थे और बीसियो बरस से उनको सता रहे थे। इन किसानो की पुकार पर जब गाधीजी वहा पहुचे और गोरो के अत्याचार के खिलाफ सत्याग्रह करने का इरादा जाहिर किया तो मानो दुनिया ही बदल गई। ज्योही गाधीजी ने अधिकारियो का सामना किया, किसानो के जी-मे-जी आ गया और फिर उन्हे न नील वाले गोरो का डर रहा, न पुलिस का ही कोर्ट डर रहा, जो हमेशा गोरो का साथ देती थी। चद महीनो के अन्दर ही बिना किसी मारकाट के वहा की काया पलट गई।

इन सबसे पता चलता है कि एक नये विचार की और उस विचार

को साक्षात् करनेवाली विभूति की प्रेरणा से मामूली आदमी भी गभीर-से-गभीर और बुलद-से-बुलद ऊचाई तक उठ सकते है। आज हमे भले ही इस बात पर ताज्जुब हो कि जो लोग आज केवल सत्ता, पदवी और आराम की ही सोच सकते है वे किस तरह थोडे से पैसो पर गुजारा कर लेते थे। जेल-जीवन की मुसीबते और सख्तिया सह लेते थे और लाठी या गोली का सहज सामना कर लेते थे। कारण सिर्फ यह है कि जहा उस विचार की प्रेरणा और उसको साक्षात् करनेवाली विभूति की प्रेरणा आखो से ओझल हुई, वहा कल के वीर जो मामूली मिट्टी के ही बने होते है, अपनी पुरानी हालत पर आ जाते है। यह बात हमारे हाल के इतिहास से साफ-साफ चमकती है।

नेताजी की फौज

कौन नही जानता कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने एक ही रात के अन्दर कैसे बहादुर रहनुमाओ और सिपाहियो की फौज खडी कर दी, जो मौत के मैदान मे हसते-खेलते लडने चली गई। वे सिपाही बहुत मामूली मिट्टी के बने हुए थे, लेकिन उन सिपाहियो के दिल मे देश का प्यार था और ओठो पर मुसकान। मगर आज इन जान पर खेलनेवालो की और अपना सर्वस्व लुटा देनेवालो की हालत पर किसे दुख नही होगा? लेकिन इस तरह का उलट-फेर कोई असाधारण बात नही है। यह जीवन मे हमेशा होता है। खतरे के समय अपने बच्चे की हिफाजत के लिए हर मा, चाहे वह कितनी ही कमजोर और डरपोक हो, ऐसे बहादुरी के काम करती है, जिन पर विश्वास भी नही होगा। लेकिन बहादुरी दिखाने का मौका जब निकल जाता है तब वह फिर अपनी डरपोक और कमजोर हालत पर आ जाती है। इतिहास के अन्दर बीसियो ऐसी मिसाले मिलती है, जब एक योग्य नेता योग्य काम के लिए पुकार करता है तो क्या मर्द, क्या औरते उतरे को झेल जाते है तकलीफे बर्दाश्त करते है, गोलियो का सामना करते है या फासी के तख्ते पर भी चढ जाते है।

प्रेरणा की ऊंचाई के बाद

ऐसे आदमी तो थोडे ही हो सकते है, जिनकी रग-रग मे और प्रकृति मे बहादुरी कूट-कूट कर भरी हो। मामूली आदमी तो बुलंद ऊंचाइयो तक तभी उठता है, जब कोई भारी मौका या विभूति उसके लिए उसमे माग करती है। जहा इस प्रयास और बहादुरी के लिए प्रेरणा खत्म हुई, वहा वह अपने साधारण और औसत इन्सानवाले पुराने या कुदरती दर्जे पर आ जाते है। कभी-कभी तो वह पहले की अपेक्षा बहुत ज्यादा गिरे हुए और नीरस भी मालूम पडते है। एक विचार या एक हस्ती की जोरदार लहर मे आकर जो बहादुरी का काम वे किये रहते है, उसमे और उनकी मामूली जिन्दगी मे जमीन-आस्मान का फर्क रहता है।

भूदान की प्रेरणा

विनोबा के आन्दोलन मे इस तरह की बहादुरी दिखा कर मौत का सामना करने या लाठी खाने या जेल जाने की कोई बात नही है। इसमे तो रोजाना के काम और कोशिश की अथक बहादुरी की जरूरत है। लेकिन यह काम कौन कर रहे है ? वे लोग, जो बहुत मामूली है और जिनका कोई नाम भी नही जानता। विनोबा की पुकार पर वे जाते है और नये विचार की प्रेरणा से कमाल के नतीजे हासिल करते है। मैने नवजवान लडके-लडकियो को गाव-गाव, खेत-खेत घूमते हुए देखा है, जो जमीन मागते है और दिन भर मे १०-२० या ३० एकड जमीन जमा कर लाते है। अगर दिन भर मे वह दस एकड भी लाये, तब भी उसका दाम एक हजार रुपये से कम नही होगा।

ये नवजवान ऐसा काम कैसे कर डालते है ? जरूर ही इनको प्रेरणा मिल रही है एक क्रातिकारी आदोलन से, जिसके पीछे जोरदार नेतृत्व है, जिसमे बुद्धि की गहराई के साथ सूझ-बूझ है और जो मौजूदा जमाने की चुभती हुई माग को पूरा कर रहा है।

उत्तर-प्रदेश मे एक जमीदार कजूसी और जुल्म के लिए बदनाम था। उससे कोई भी जमीन मागने की हिम्मत नही करता था। जब एक बीस

बरस की लडकी ने यह सुना तो उसने उसके पास जाने की ठानी। अपनी मीठी बोली से उसने इस मक्खीचूस जमीदार से तो जमीन ले ही ली, उसको इस बात पर भी राजी कर लिया कि वह उसके साथ जाकर दूसरो से भी जमीन दिलायेगा ।

विनोबा की श्रद्धा लेकर ये मामूली कार्यकर्त्ता जमीदारो के पास जाते है। इनको अपने दिल मे यकीन है कि अगर सही काम के लिए और सही तरीको से किसी के पास जाया जायगा तो वह इसाफ और पडोस-प्रेम की माग के आगे क्यो नही झुकेगा ? इन मामूली कार्यकर्त्ताओ का रोज का जो अनुभव है, उससे इसानी स्वभाव की इस प्रकृति मे यकीन ज्यादा बढता ही जाता है।

हाल ही मे मेरठ मे गाधी आश्रम के कार्यकर्त्ताओ की और भूदान से हमदर्दी रखनेवाले लोगो की एक सभा हुई। जब यह सवाल पूछा गया कि अगले चार साल तक कौन-कौन लोग भूदान मे पूरा समय देने को राजी है तब इतने ज्यादा लोगो ने हाथ उठाया, जिसकी उम्मीद भी नही थी। दो सौ आदमियो की सभा मे कम-से-कम बीस आदमियो ने नाम दिये— ऐसी हालत मे जब कि चारो तरफ निराशा और कडुवाहट फैली हुई है और सार्वजनिक काम या सार्वजनिक लोगो पर श्रद्धा जमती ही नही है। ये नाम जिस सभा मे दिये गए उसमे विनोबा मौजूद भी नही थे। इस सभा का कोई प्रचार भी नही किया गया था एक बहुत मामूली सभा थी।

ग्वालियर का अनुभव

थोडे दिन की बात है अपनी पार्टी के काम से मै ग्वालियर गया हुआ था। मैने देखना चाहा कि क्या सहज मागने से ही जमीन मिल जाती है ? प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ताओ से मै बातचीत कर रहा था। हम लोग एक छोटे से कमरे मे जमा थे, जिसमे मुश्किल से तीस आदमी आ सकते थे। मैने उनसे रचनात्मक काम की चर्चा की और फिर थोडे मे ही, दस मिनट मे समझाया कि भूदान आदोलन क्या है। इसके बाद मै झट से यह कह बैठा कि आपमे से जिनके पास जमीन हो, वे अभी और यही पर कुछ जमीन देकर

भूदान आदोलन क्यो न शुरु कर दे ? मुझे जरा भी उम्मीद नही थी कि जमीन मिलेगी। लेकिन मै यह देखकर दग रह गया कि उस छोटी-सी बैठक मे ५५० बीघे जमीन के दान के वचन मिले और शाम को जब मै ग्वालियर मे चलने लगा तो ८०० का वचन पूरा हो चुका था। इससे मेरा उत्साह बढा और मैने लोगो से कहा कि एक कमेटी बना लीजिए, जो यहा इस काम को सभाल ले।

: ६ :

क्रान्ति और क्रान्तिकारी

क्रान्तिकारी आन्दोलन की खूबी

क्रातिकारी आदोलन की एक खूबी यह भी होती है कि उसका नेतृत्व किस तरह की तेजी या शिद्दत से आगे बढता है। उसका यह विचार जादू की तरह काम करता है कि अगर फौरन या अमुक मुद्दत के अन्दर यह काम या यह सुधार नही हुआ तो फिर कभी नही होने वाला है, और इसका नतीजा अपने राष्ट्र के लिए ही नही, बल्कि सारे मानव-समाज के लिए बहुत ही घातक साबित होगा। इस विचार को सूई का फावडा भले ही बना दिया जाय, लेकिन आदोलन के नेताओ को यह दरअसल महसूस होना चाहिए कि ऐसी बात सच्ची है। कौन नही जानता कि पतन होने पर भी सदियो तक देश किसी तरह जिदा रहते है और न दुनिया अचानक खतम होनेवाली है, और न वह स्वर्ग ही हाथ लगनेवाला है, जिसके लिए हम जी-जान से काम करते है। लेकिन अगर वह सचमुच सफलता चाहता है तो पैगबर हो या सुधारक या क्रातिकारी, उसको रह-रह कर यह महसूस होना चाहिए कि अगर निश्चित काल के अदर मेरा काम पूरा नही होता है तो तबाही मच जायगी। प्राय ऐसा देखने मे आता है कि बताये हुए समय के अदर काम पूरा नही होता। लेकिन क्रातिकारी के ऊपर इसका असर उस पर मर्सिया जैसा भी नही होता। हार मानने के बजाय वह नया कार्यक्रम बनाता और नया जोर लगाता है। लेकिन हार वह कभी नही कबूल

करेगा। उसे महसूस होता है कि मेरी उम्मीदे गलत नही थी, बल्कि मेरे ही अदर कोई दोष था या मेरे साधनो मे कुछ गडबड थी या कुछ अनदेखी चीजे और कारण बीच मे आ गए। कम्यूनिज्म या साम्यवाद, उसके अधिष्ठाता मार्क्स की जिदगी मे कही भी कायम न हो सका। और न उस तरीके से हुआ, जैसा उसने बताया था और न उन देशो मे हुआ, जहा वह चाहता था। बल्कि एक बडे लबे अरसेके बाद एक पिछडे हुए देशमे कम्यूनिज्म आया, जिसकी बाबत किसी को ध्यान भी नही था। लेकिन इतने पर भी शिकार हो लेनिन यह कहने से कभी बाज नही आया कि जर्मनी भी जल्दी ही इसका जायगा। जब यह नही ही हो सका, तब यह वजह बताई गई कि कुछ विशेष कारणो से आरजीतौर पर रुकावट आ गई है। वहा नाजीवाद कायम हो गया। लेकिन बताया यही गया कि यह चद-रोजा है और पूजीवाद का आखिरी चिराग है। यह भी कहा गया कि बस जहा एक जोर और लगा कि विश्व-क्राति हुई। बुखार के जैसी वह तेजी होती है, जिसके अदर कोई क्रातिकारी रहता या काम करता है।

गाधीजी के स्वराज्य-आन्दोलन

सन् १९२१ मे गाधीजी ने एक साल मे स्वराज्य की बात कही। वह बोले कि एक साल के अदर एक करोड रुपया जमा होना चाहिए, एक ही साल के अन्दर खादी और दूसरे रचनात्मक काम चल जाने चाहिए और फिर देखते-देखते अग्रेजी राज उसी तरह गायब हो जायगा, जैसे सूरज निकलने पर ओस गायब हो जाती है। सारा विचार अव्यावहारिक और बेतुका था। लेकिन गाधीजी दिल से इसमे विश्वास करते थे और इसके लिए जुट गए थे। यही नही, उनका यह विश्वास छूत की तरह फैल गया था। उनकी तरह बहुतो ने सोचा कि एक ही साल की तो बात है। इस उम्मीद मे बहुतो ने बहुत कुछ त्याग दिया। स्पष्ट था कि एक साल मे कुछ होनेवाला नही था, लेकिन फिर वह पैगबर या क्रान्तिकारी कैसा, जिसको यह श्रद्धा न हो कि इसान के अन्दर असभव काम करने की सभावना भरी पडी है?

उस एक साल के अन्दर स्वराज्य तो नही ही आया। आदोलन छितर गया। एक तरह की मायूसी फैली और थोडी वहुत प्रतिक्रिया भी हुई। लेकिन गाधीजी टस-से-मस न हुए और अपना काम करते रहे। उन्होने सोचा कि मुझे अपनेको और भी ज्यादा शुद्ध वनाना चाहिए और मुल्क को ज्यादा वेहतर तौर पर तैयार करना चाहिए। जव सन् ३० आया तव उन्होने सोचा कि साम्राज्यवादो के खिलाफ सीट लेने के लिए मुनासिव मौका आ गया है और लोग भी तैयार है। इसलिए उन्होने नमक-सत्याग्रह छेड दिया। इस मर्तबा भी ऐसा लगा कि या तो अव अग्रेज गया या फिर कभी नही जायगा। उन्होंने ऐलान किया कि अगर नमक-सत्याग्रह मे देश को स्वराज्य नही मिलता है, तो मै सावरमती आश्रम नही लौटूगा। स्वराज्य मिलने पर ही वहा जाऊगा। गरमी या नरमी के साथ आदोलन चार वरस चला और सन् ३४ मे पूरी तरह उठा दिया गया। स्वराज्य-प्राप्ति मे असफल होने के कारण सावरमती आश्रम न लौटने की प्रतिज्ञा तो उन्होने निभाई, लेकिन उनके माथे पर कोई शिकन नही आई। वह और भी ज्यादा तैयारी करने मे और विदेशी साम्राज्यवादी सरकार से नई टक्कर लेने के लिए पिल पडे। सन् ४२ मे विश्वव्यापी युद्ध के दौरान मे यह मौका आया। उन्होने "भारत छोडो" आदोलन का श्रीगणेश किया और 'करो या मरो' का नारा लगाया। हिंसा या अहिंसा से जितना ज्यादा किया जा सकता था, उतना वहुत से लोगो ने किया और वहुत से मरे भी। लेकिन वहुत से ऐसे थे, जो न कुछ कर सके, न मर सके। हम लोग जव जेलखानो से १९४५ मे छूटे, तो स्वराज्य-प्राप्ति की नई स्कीमो पर विचार करने लगे। राष्ट्र के नेता जव भी जमा होते थे, महात्माजी कहा करते थे कि अग्रेजी साम्राज्य से टक्कर लेने की मेरी एक इच्छा और है। इसकी जरूरत नही पडी। लेकिन कहने का मशा यह है कि अपना तुरत का मकसद पाने मे हर आदोलन असफल होता था, लेकिन देश को मजवूत वनाने मे और पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य तक के निदर्शन को पक्का करने मे सफल होता था।

एकतरफा क्राति और धर्म

इस तरह हम देखते है कि किसी भी सामाजिक क्राति मे जो काम किया जाता है, उसके पीछे बहुत तेजी, घबराहट या बेचैनी और भयानक एकतरफा जद्दोजहद या भगदड रहती है। ये खूबिया एक सामाजिक क्राति-की ही नही, एक व्यक्तिगत जीवन मे होनेवाली क्राति की भी खूबिया है। किसी भी इसान का धार्मिक या नैतिक कायापलट इसी तरह हुआ करता है। वह यह महसूस करता है कि अगर उसने अपनी मुक्ति के लिए तेजी से कदम न बढाये तो हमेशा के लिए उसका काम तमाम हो जायगा। इसलिए उसे घबराहट रहती है और वह बहुत बेचैनी के साथ काम करता है। बडे-बडे सतो, साधुओ और महात्माओ या सुधरी हुई आत्माओ के जीवन मे हमे ये बाते मिलती है। वे अपने मकसद को पूरा करने के लिए सब कुछ त्याग देते है—मा-बाप, बाल-बच्चे, धन-दौलत, पद और मान—तथा एकाग्रता के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढते जाते है। यही कारण है कि दुख के नाश का रास्ता ढूढने के लिए गौतम बुद्ध ने अपनी स्त्री, बच्चे और सारे राजपाट को छोड दिया। यही कारण है कि ईसा मसीह ने कहा, "कौन मेरा बाप? कौन मेरी मा?" वह तो सिर्फ एक ही पिता को पहचानता था। वह केवल परम-पिता परमेश्वर को जानता था, जिसके काम के लिए वह आया था। उसने अपने चेलो से साफ-साफ कह दिया, "सब कुछ छोड कर मेरे साथ आ जाओ।" उसने उनसे यह भी कहा "मुर्दो की बात मुर्दे जानें।" हिदु लोग पुनर्जन्म मे विश्वास करते है, फिर जब भी कोई आदमी अपना जीवन बदलता है और मोक्ष पाने का बाना पहनता है तो उसके बारे मे कहा जाता है कि इसकी आत्मा ने दूसरा जन्म ले लिया। वह बहुत ही फिकर और तेजी से काम करता है। मानो जो मौका उसे अपने जीवन मे मिला है, वह फिर नही मिलनेवाला है। श्रीरामकृष्ण परमहस कहा करते थे कि एक सच्चा भक्त उसी तरह ध्यानावस्थित और अधीर होता है, जैसे कि एक चोर। चोर यह बखूबी समझता है कि उसके और सोने-चादी के ढेर के बीच मे एक बस पतली-सी दीवार है, जिसे जल्दी-से-जल्दी पार कर लेना चाहिए।

उसे ढेर पर हाथ साफ करने के उपाय ढूढने के अलावा और कुछ सूझती ही नही है। हा, यह जरूर है कि इस तरह के व्यवहार से मामूली आदमी के अदर दुष्टता और असहनशीलता पैदा हो जाती है। शायद यही कारण है कि क्रान्तिकारी दल और पार्टिया अपने मकसद के फेर मे दुष्ट बन जाती है। लेकिन धार्मिक-क्षेत्र मे कोई व्यक्ति इतनी दुष्टता पर नही उतर सकता, क्योकि वह भौतिक रूप मे उस व्यक्ति तक ही सीमित रहेगी। साथ-ही-साथ यह दुष्टता ठडी पडती जाती है, क्योकि आदमी के निजी जीवन के नैतिक उसूल—जैसे प्रेम, भाईचारा, सहनशीलता और अहिसा—उसकी हरारत को ज्यादा नही बढने देते। लेकिन किसी क्रातिकारी राजनैतिक दल की दुष्टता इस तरह की नही होती। अक्सर इसका नतीजा यह होता है कि लोग दबाये जाते है, उन्हे सताया जाता है और आतक का साम्राज्य जमा दिया जाता है। अक्सर यह भी देखने मे आया है कि धार्मिक पुरुषो और दलो ने जब समाज और राजनीति को बदलने व ढालने की कोशिश की तो बहुत बुरी तरह से लोगो को दबाना और सताना शुरू कर दिया। बहुत से ईसाई दलो ने किसी-न-किसी समय अपने से विरोध रखनेवालो के खिलाफ, बहुत जानलेवा कार्रवाइया की है। और यह कह-कह कर कि इससे विरोधी की आत्माओ का उत्थान होगा। (Inquisition) "इक्वीजीशन" नाम की भयानक सस्था का नाम कौन नही जानता ? इसके अलावा योरोप मे (Calvinistic) 'केलविनिस्टिक' ढग से भी अत्याचार और अन्याय होते थे। मुस्लिम पथो ने अपने धार्मिक विचारो के अनुसार दुनिया के सुधार का बोझा तो उठाया, लेकिन उनको भी अत्याचार करने पडे। इसी तरह से दूसरे धार्मिक दलवालो ने भी आम जनता को मोक्ष के रास्ते पर लगाने के बजाय राजनैतिक जमादारी शुरू कर दी, जिसके सिलसिले मे विरोधियो के खिलाफ एक-से-एक भयानक जुल्म और ज्यादती की गई। यहा हम गाधीजी के अहिसा धर्म की याद आ जाती है, जो कि एक जबर्दस्त आग-स्नान है। इसके कारण इन्कलाब का जोश बहुत कुछ थम जाता है, या कम-से-कम इसके निन्दित रूप तो दब ही जाते है।

क्रांतिकारी की श्रद्धा

हम कहा-से-कहा पहुच गये। लेकिन हमारे कहने का मन्शा सिर्फ यह है कि क्रांतिकारी को चाहे पूरी या अधूरी कामयाबी मिले या न मिले, उसे हमेशा यकीन यही रहता है कि बस अगले मोड पर अपनी मजिल पर आ जाऊगा। चाहे निश्चित समय के अन्दर उसे कामयाबी मिले या न मिले, इससे कोई फर्क नही पडता। क्रांतिकारी का होश और जोश हमेशा बना रहता है। न कभी उसकी उम्मीद छूटती है और न कभी उसकी श्रद्धा मे कमी आती है। वैज्ञानिक रूप से देखे तो उसके अन्दर दो विरोधी धाराए सतत् काम करती रहती है। एक तरफ तो उसे बहुत जल्दी होती है, वह न आव देखता है न ताव और कम-से-कम समय मे अपनी मजिल पर पहुचने के लिए बेचैन रहता है। दूसरी तरफ उसमे अथाह सब्र और सतोष होता है। किसी चीज से उसका उत्साह कमजोर नही पडता, किसी चीज से उसे निराशा नही होती। कोई असफलता उसे अपने रास्ते से डिगा नही सकती। वह लगातार कोशिश ही करता रहता है और हर मर्तबा पहले से ज्यादा जोर-शोर करता है और हमेशा यही मानता है या तो यह चीज अभी होगी या फिर कभी नही होगी।

विनोबा का विश्वास

चारो तरफ गाव-पुनर्रचना, खादी और ग्रामोद्योग आदि के फूलने-फलने का पूरा कार्यक्रम उन्होने बना लिया है। यही नही,बल्कि वह यहा तक कहते हैं कि अगर उनके इस तरीके से भूमि का सवाल हल नही होता है तो खूनी क्रांति होकर रहेगी, जिससे हर हालत मे बचना ही चाहिए। राष्ट्र के पास समय बहुत थोडा है, जल्दी-से-जल्दी उसे उनकी यह योजना पूरी करनी चाहिए। विनोबा ने एक समय-पत्रक भी दे दिया है। उनका कहना है कि अगले तीन साल के अदर पाच करोड एकड जमीन उन्हें मिलनी चाहिए। वर्धा और देश के दूसरे हिस्सो मे कार्यकर्त्ता आकर उनके साथ जुट पडे हैं। हरेक के लिए उनके पास काम है। किसी को भी खाली बैठने की जरूरत नही। विनोबा तो कार्यकर्त्ताओ की एक फौज-की-फौज खडी करना चाहते है। वह कहते है कि देश के सामने आज सबसे बडा सवाल यही है। और इसलिए वह हर कार्यकर्त्ता की मदद चाहते है। वह कहते है कि पहला काम पहले होना चाहिए और आगामी तीन-चार साल तक भूदान ही पहला और सब से खास काम है।

क्या श्रीविनोबा अपने बताये समय के अन्दर सफल हो सकेंगे ? क्या भूदान-आदोलन हमारे आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सवालो को हल कर देगा या हल करने मे मदद दे देगा,कौन जानता है ? ऐसी अनहोनी और क्रांतिकारी बातो का अन्दाज करने मे इतिहास की पुरानी मिसालें और पिछले अनुभव ज्यादा कारगर नही होते। हर क्रांतिकारी आदोलन इतिहास मे अनोखा ही होता है। तिस पर भी क्रांतियो का एक गणित है। वह गणित बताता है कि अगर कोई चीज समय की ऐतिहासिक माग के अनुकूल हो और उसके पीछे जोरदार नेतृत्व हो, तब वह असभव होते हुए भी सभव हो जाती है। कौन कह सकता था कि एक असगठित झुड पैरिस के बैस्टाइल नाम के किले को अठारहवीं सदी मे उडा देगा ? कौन कह सकता था कि भगोडे कम्यूनिस्ट क्रांतिकारी रूस मे वापिस पहुच कर सन् १९१८ में एक नया जमाना ला देंगे ? उनकी किताब तक में यह नहीं लिखा हुआ था।

क्राति की सफलता से कभी सतोष नहीं होता

जहा यह बात सही है, वहा यह भी सही है कि असभव लगनेवाली चीज को पाने की कोशिश इतिहास मे अक्सर बेकार साबित हुई है। या कम-से-कम विरली ही उस समय के अदर पूरी हुई है, जो उनके नेता या नेताओ ने तय की हो। मेरा खयाल है अगर निश्चित अवधि के अदर विनोबा के हाथ पाच करोड एकड जमीन नही लगी तो गाधीजी की तरह वह अपने को दोष देगे और कहेगे कि भूमिवानो या जमीदारो के प्रति उनके अपन दिल मे इतना प्रेम नही था कि वह उनसे जमीन छुडा लेते। वह कहेगे कि इस काम के लायक मेरी तपस्या काफी नही थी। जैसा मैने उन्हे समझा है और जहा तक मै उन्हे जानता हू। मै मानता हू कि वह अपने कार्यकर्त्ताओ को या भाग्य को या घटनाचक्र को इसके लिए जिम्मेदार नही ठहराएगे। वह बार-बार अपनी मजिल तक पहुचने की कोशिश करेगे,और जब मजिल पर पहुच जायगे तब क्या उन्हे सतोष हो जायगा? कौन कह सकता है? चाहे वह कितनी ही अच्छी तरह क्यो न चलाई जाय और कितनी ही ज्यादा सफलता उन्हे क्यो न मिले, सुधार की क्रातिकारी योजनाए कभी भी सोलह आना पूरी नही होती। सोची हुई चीज मे और असली चीज में, विचार और अमल में हमेशा एक खाई-सी रहती है। अक्सर ऐसा हुआ है कि पैगबर, सुधारक और क्रातिकारी, सफलता होने पर भी अपनी कोशिश के नतीजेपर दग रह गए है। तब क्या उम्मीद करें कि एक वक्त वह आयगा, जबकि खुदाई हुकूमत या रामराज्य इस धरती पर कायम हो जायगा ? कौन जाने ? लेकिन अब तक की हालत देखने पर ऐसा लगता है कि हमारी यह पृथ्वी एक कमजोर और चती हुई नाव की तरह है। एक छेद की मरम्मत हुई नही कि दूसरा पैदा हो जाता है। और ऐसी जगह होता है कि जहा पर पहले जरा-सा भी शक या सदेह नही हो सकता था। कौन जाने कि यह दुनिया, जैसा कि हिन्दू साधु कहा करते है, इसी तरह रहेगी, भगवान् की लीला नये नये रग लायगी और ये नाटक हमेशा कायम रहेगा ? नये-नये खिलाडी अपना खेल दिखायगे। और यह अखड तमाशा चलता रहेगा।

: ७ :

सर्वांगीण और विशिष्ट क्रांतियां

दो प्रकार के आंदोलन

अब क्रांति के माध्यम के नाते भूदान-आंदोलन पर कुछ गहराई के साथ—जरा ज्यादा गहराई के साथ विचार करेंगे। इतिहास में क्रांतिकारी आंदोलन दो तरह के हुए हैं। एक का खुलेआम मकसद यह होता है कि सारा-का-सारा सामाजिक ढांचा बदल दिया जाय। इसके अंदर यह कोशिश की जाती है कि समाज की सारी व्यक्तिगत और सामाजिक सरगरमियों पर अंकुश रखा जाय, बुनियादी-मान बदल दिये जायं और सभ्यता का एक नया स्वरूप खड़ा हो। दूसरी तरह की जो क्रांति होती है, उसकी शुरुआत जीवन की केवल एक, मगर महत्त्वपूर्ण सरगरमी से होती है और वह आखिर में पूरी क्रांति लाकर एक नये तरह का सामाजिक ढांचा खड़ा कर देती है। इतिहास में ज्यादातर क्रांतियां दूसरे मेल की हुई हैं। जीवन के किसी एक विशेष क्षेत्र में उन्होंने मूल्यों को बदला और इस तरह शुरू होकर धीरे-धीरे जीवन के पूरे सांचे पर अपना असर जमा लिया। दुनिया में भिन्न-भिन्न धर्मों के जो प्रणेता हुए हैं, उनकी खास गरज व्यक्तिगत जीवन के उसी पहलू से थी, जिसे आध्यात्मिक कहते हैं। लेकिन यह आध्यात्मिक प्रेरणा अगर सचमुच क्रांतिकारी हुई तो आखिर में चलकर पूरे जीवन पर असर डालती थी। इस तरह एक नये ढंग का समाज तैयार हो जाता था, जो पुराने समाज से बहुत-सी बुनियादी बातों में भिन्न तरह का होता था।

मिसाल के लिए, इतिहास के शुरू के जमाने में, दुनिया के बहुत से हिस्सों में लोग कबीले या गिरोह बना कर रहते थे। इसके कई कारण थे। फिर तरह-तरह से ये झुंड मिल-मिल कर बड़ी-बड़ी इकाइयों का रूप लेने लगे। पूरब में इस आंदोलन का नतीजा यह हुआ कि बड़े-बड़े शासन और साम्राज्य खड़े हो गए। यूनान के अन्दर इसी चेतना ने नगर-राज्य (सिटी-

स्टेट) खड़े कर दिये। इन दो तरह के मिलन से दो जुदा-जुदा तरह की सभ्यता और संस्कृति पैदा हुई। दोनों में एकता की चाह थी। इसके पीछे विचार भी एक था और वह यह कि बाहरी शत्रुओं से कैसे हिफाजत की जाय? लेकिन यह चाह एक क्रांतिकारी चीज थी और समय बीतने पर इसने दो भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं को जन्म दिया,—पूरब में शासन या साम्राज्य को और यूनान में नगर-राज्यों को। दोनों के अन्दर जो नया समाज बना उसने पिछली मान्यताओं को बदल दिया और सभ्यता के दो नमूने पेश किये, जो पुराने नमूनों से अलग थे और जिनमें आपस में भी कोई मेल नहीं था।

धार्मिक क्रांतियां और समाज

पैगंबरों ने धार्मिक आंदोलन चलाये, उनका मकसद था व्यक्ति की आध्यात्मिक जरूरतों को पूरा करना। लेकिन धीरे-धीरे उनका असर समाज के सारे जीवन पर पड़ा और बड़े-बड़े मामलों में, व्यक्तिगत हो या सामाजिक, उनके कारण तब्दीली पैदा हुई। गौतम बुद्ध का मकसद था लोगों को व्यक्तिगत तौर पर निर्वाण या मोक्ष की राह बताना। लेकिन यह एक क्रांतिकारी चीज थी, इसका असर आखिर में चलकर जीवन के बहुत से पहलुओं पर पड़ा। बुद्ध के आध्यात्मिक प्रभाव का नतीजा यहां तक हुआ कि नये मान सामने आये और नये सामाजिक वर्ग, नया दर्शन शास्त्र, नया साहित्य नई कला और नई राजनैतिक व्यवस्थाओं ने जन्म लिया। यहां तक कि आर्थिक-जीवन पर भी असर पड़ा। इसमें बुनियादी तब्दीली तो जरूर नहीं आई, लेकिन वह पहले से ज्यादा सुगठित और व्यापक बन गया।

बुद्ध की तरह ईसा और मुहम्मद की असली गरज व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन से थी। लेकिन जो आध्यात्मिक प्रेरणा उन्होंने पैदा की, उसकी छाप संपूर्ण जीवन पर पड़ी और लोगों ने नई रचना को स्वीकार किया। इन दोनों महापुरुषों के उपदेशों के कारण सभ्यता के दो नये सांचे खड़े हो गए ईसाई और इस्लामी। यद्यपि प्रारंभिक प्रेरणा एक ही मानवी-

आकाक्षा, आध्यात्मिक आकाक्षा से पैदा हुई, लेकिन इसका असर सारे जीवन पर और सारी-की-सारी मान्यताओ पर, व्यक्तिगत हो या सामाजिक, पडा। नये धर्मों के प्रवाह से नये राज्य और नये साम्राज्य खडे हो गए। नये दर्शन, नये साहित्य और नये कलारूपक उभर आए। वे पुराने नमूनो से उतने ही भिन्न थे, जितना वे आपस मे भिन्न थे। इन तमाम आध्यात्मिक क्रातियो मे, यद्यपि आर्थिक-जीवन मे पहले से ज्यादा गठाव और व्यापकता आ गई, लेकिन इसका बुनियादी ढाचा ज्यो-का-त्यो बना रहा।

आजकल के जमाने मे हमारे सामने एक ऐसा आदोलन आया, जो आर्थिक कारणो से ही मुख्यतया पैदा हुआ। औद्योगिक क्राति का विशेष कारण यही था कि व्यक्तियो और वर्गों के व्यापारिक और औद्योगिक स्वार्थों को विज्ञान के आविष्कारो, नये देश और नये समुद्री मार्ग की खोजो से भारी बढावा मिल गया था। लेकिन इस क्राति ने आखिर मे समूचे जीवन पर असर डाला, पश्चिम के देशों मे व्यक्तियो और समाजो के दृष्टिकोण मे तब्दीली पैदा कर दी और जिसे हम पूजीवादी आधुनिक सभ्यता कहते है, उसे जन्म दिया।

इस्लामी क्राति

जैसा हमने शुरू मे कहा था, क्रातियो का दूसरा नमूना भी होता है। इसमे जीवन के एक विशेष पहलू या क्षेत्र पर जोर न डालकर जीवन के सम्पूर्ण दृष्टिकोण को, व्यक्तिगत हो चाहे सामूहिक, निगाह मे रख कर पूरी तौर से कुछ-न-कुछ चीज को एक ही ताव मे बदलने की कोशिश की जाती है। इस्लाम ने पिछले जमाने मे इस तरह की एक व्यापक-क्राति की। इसने यह कोशिश नही की कि व्यक्ति के केवल आध्यात्मिक जीवन को बदला जाय, बल्कि उसके खानगी और सामाजिक कुल जीवन को बदल दिया। कुरान मे जीवन के हर पहलू से सबध रखनेवाले सवालो के लिए कायदे और कानून बनाए गए है। बौद्ध धर्म या ईसाई धर्म की तरह उसने यह रूप धीरे-धीरे नही लिया, बल्कि पैगबर के सामने शुरू मे ही जीवन की एक परिपूर्ण कल्पना थी। कुरान मे उन्होने उसे पेश किया। उनके उपदेशो के अनु-

सार इस्लाम ने यह व्यापक क्राति करने की कोशिश की। कुरान के बारे मे कहा गया कि यह आखिरी किताब है, हमेशा के लिए सच्ची है और आगे जो भी उतार-चढाव या सवाल पैदा होगे, उनके जवाब मे कायदे और उसूल मौजूद है। फ्रेंच क्राति की कल्पना भी—उसके विधाता राबेस पीर, सेंट जस्ट आदि ने—इसी तरह के व्यापक शब्दो मे की थी। इसकी भी कोशिश यही थी कि पुराने सारे मान और रूप बदल जाय। कुछ अरसे के लिए वे बदले भी। लेकिन आखिर मे हुआ यह कि एक परिपूर्ण और व्यापक क्राति न हो पाई, बल्कि केवल एकागी क्राति हुई, जिसने फ्रास मे पूजीवादी और केन्द्रित लोकतत्र की स्थापना की।

रूस की सर्वागीण क्राति

हाल की रूसी क्राति ज्यादा सपूर्ण और व्यापक रही। यह हर चीज को, चाहे वह कैसी ही प्राकृतिक या छोटी-सी हो केवल एक ही दृष्टि से देखती है। वह यह कि इस चीज से कम्यूनिज्म को—और वैसा ही कम्यूनिज्म, जिसकी कल्पना इसकी बोल्शेविक पार्टी ने की थी—मदद मिलेगी या उसमे रुकावट डालेगी। चाहे गिरजा का सवाल हो, चाहे राज्य का, चाहे परिवार का आर्थिक या सामाजिक सगठन का, इतिहास या साहित्य का, कला या विज्ञान का—हर सवाल को कम्यूनिस्ट दर्शनशास्त्र और व्यवहार के एकमात्र सर्वव्यापी दृष्टिकोण से देखा जाता है। लक्ष्य यही है कि दुनिया को सोलह आने बदल दिया जाय और एक नये प्रकार के मनुष्य और समाज, सभ्यता और सस्कृति को जन्म दिया जाय।

धार्मिक-क्रातियो को दूसरी क्रातियो की अपेक्षा ज्यादा व्यापक माना गया है। लेकिन बुद्ध और ईसा सामाजिक और आर्थिक सवालो मे नही गए। न उन्होने चिता की कि लोकशाही या समता के आधार पर समाज का पुनर्सगठन कैसे हो? ये चीजे उनके दायरे से बाहर की थी। ईसा ने इस बात से कोई सरोकार नही रखा कि अपने देश पर जो विदेशी रोमन-राज है, उसे कैसे हटाया जाय। उनकी निगाह मे न कोई यहूदी था, न कोई गैर-यहूदी, सारा मानव-समाज एक था। उन्होने यहा तक कहा, 'जो चीजे सीजर

(राजा) की है वह सीज़र के हवाले कर दो और जो भगवान् की है वह भगवान् के।" पूजीवादी क्रातियो का कोई सीधा सबध ईश्वर, धर्म या गिरजे से नही रहा। दूसरी चीजो पर भी—साहित्य, कला और विज्ञान, इनका असर सीधे नही पडा। लेकिन इसके खिलाफ बोल्शेविज्म निश्चित तौर पर सारे जीवन की रचना नये सिरे से करना चाहता है और इस धरती पर नया ससार और नया स्वर्ग खडा करना चाहता है।

विनोबा का एकमेव उद्देश्य

स्पष्ट है कि श्री विनोबा का भूदान-आदोलन ऊपर बताये बोल्शेविक अर्थो मे नही, बल्कि पहले अर्थो मे क्रातिकारी है। आज वह केवल जमीन के सवाल को ही ले रहे है, यद्यपि दूसरे मसलो पर उनके अपने विचार है और काफी गहरे विचार है। लेकिन फिलहाल वह उनको नही फैलाते, या कहना चाहिए कि वह उनपर जोर नही देते। आज उनकी गरज सिर्फ एक चीज मे है—जमीन का न्यायपूर्वक फिर से बटवारा। उन्हे उम्मीद है कि जमीन-बटवारे की प्रेरणा से उनके दूसरे विचारो और योजनाओ को यथासमय फलने-फूलने को मौका मिलेगा। यह ज्यादा व्यापक रूप वाली क्राति जल्दी आयगी या देर से आयगी, इस सवाल मे वह आज नही पडते। आज हिंदुस्तान मे बहुत से जरूरी और महत्त्वपूर्ण सवाल है, जिनको फौरन ही हल होना चाहिए, जैसे कि बेरोजगारी का सवाल। लेकिन विनोबा यही कहेगे कि मेरा उससे सीधा वास्ता नही है। वह मानो यह जवाब देगे, "जमीन का सवाल हल कीजिए और फिर बेरोजगारी का सवाल या तो आप-से-आप हल हो जायगा, या बहुत थोडी कोशिश से हल हो जायगा।" ईसा का कहना था, पहले खुदाई हुकूमत की खोज करो, और फिर दूसरी सब चीजे तुम्हे मिल जायगी।" इसी प्रकार तत्त्व रूप मे विनोबा कहते है, "जमीन का सवाल हल कीजिए और फिर दूसरी सब चीजे मिल जायगी।" लेकिन इसका यह मतलब नही कि दूसरे सवालो मे उन्हे कोई दिलचस्पी नही है। इसका मतलब सिर्फ यही है कि उन्होने अपना सारा चिंतन और शक्ति इसी एक सवाल पर लगा दी है, जो उनके लिए, जैसे खादी गाधीजी के लिए थी,

दूसरे सारे आर्थिक प्रोग्रामो का केन्द्र-बिन्दु है।

लेकिन क्रांति चाहे एक विशेष प्रश्न को लेकर शुरू की जाय या निश्चित रूप से व्यापक और संपूर्ण जीवन को घेरनेवाली हो, उसे देर या सबेर सीधे या ना-सीधे राजनैतिक सत्ता को वश मे करना चाहिए। तभी वह फैल सकेगी और स्थिरता का रूप ले सकेगी, कम-से-कम इतिहास का यही पाठ है। जहा तक व्यापक और संपूर्ण क्रांति की बात है उसमे राजनैतिक सत्ता का अलग से सवाल उठता ही नही, क्योकि उसके दायरे मे सब कुछ आ जाता है। यह सवाल तो केवल ऐसी ही क्रांति के बारे मे उठता है, जो जीवन के एक विशेष पहलू को लेकर शुरू की गई हो। बिना राजनैतिक सत्ता के ऐसी क्रांति न पनप सकती है, न फूल-फल सकती है, और न फैल सकती है।

: ८ :

राजनैतिक सत्ता का स्थान

ऐतिहासिक दृष्टि से दुनिया के समस्त धर्म, राज्य का सहारा मिलने के पूर्व केवल सम्प्रदाय-मात्र थे। बौद्ध-धर्म को प्रारंभ से ही राजाओ और छोटे-मोटे सामन्तो का सहयोग मिला। लेकिन सारे देश में उसका प्रसार उसी समय हुआ, जब वह एक प्रकार से अशोक के साम्राज्य का राज्य-धर्म हो गया। लंका, बर्मा, चीन, जापान और पूर्वी द्वीपो में भी इन राज्यो की राजनैतिक सत्ता जिन्हे प्राप्त थी, उनके सहयोग या स्वीकृति से ही यह फैला। पुनश्च हिन्दुस्तान से बौद्ध धर्म का निष्कासन और ब्राह्मण धर्म की प्रतिष्ठापना भी सम्राटो और राजाओ के आश्रय से ही हुई।

सम्राट् कान्स्टाइन के ईसाई धर्म से दीक्षित होने के पूर्व तक और उसका राज्य-धर्म बनने तक ईसाई धर्म भी एक दलित सम्प्रदाय (Persecuted sect) था। (किन्तु फिलहाल हमारा उद्देश्य इस विषय की चर्चा करने का नही है कि राजनैतिक सत्ता भी किस प्रकार एक नये ध्येय

की विचार-धारा मे परिणत की जाती है।) रोमन साम्राज्य के बाहर ईसाई धर्म का प्रचार तभी हुआ, जब विभिन्न राजाओ और सामतो ने इस नये धर्म को ग्रहण कर लिया। यदि राजनैतिक सत्ताए सदैव ईसाई धर्म का दलन करती रहती तो वह भी एक सप्रदाय बना रहता, एक जागतिक धर्म के स्वरूप मे कदापि विकसित न हो पाता। स्पेन मे जबतक मूर लोगो का राज्य रहा, तबतक इस्लाम उन्नति करता गया। जब वे ईसाइयो द्वारा खदेड दिये गए, तब स्पेन मे इस्लाम के धार्मिक सम्प्रदाय का स्वरूप खत्म हो गया।

दक्षिण भारत मे ईसाई धर्म की स्थापना सेंट थॉमस ने की, जो ईसा के बारह सदेश-वाहको मे से एक थे। उस काल के क्षमाशील हिन्दु नरेशो ने इस नये धर्म की प्रवृत्तियो मे कोई दखल नही दिया। फिर भी किसी शक्तिशाली राजा को सीरियन ईसाइयत मे दीक्षित नही किया गया, अत वह दक्षिण मे सिर्फ एक सम्प्रदाय मात्र बनकर रह गया। पर ईसाई धर्म १८वी शताब्दी मे जो विकास नही कर पाया, वह गत शताब्दी मे साधारण पादरियो ने सभव कर दिखाया, क्योकि उनके धर्म-परिवर्तन कराने के प्रयत्नो के पीछे राजनैतिक सत्ता का बल था। इन सब का यह अर्थ नही होता कि किसी विशिष्ट प्रदेश मे बगैर राजनैतिक सत्ता के धर्म का प्रसार नही हो सकता। उसका अर्थ सिर्फ इतना ही होता है कि राजनैतिक शक्ति का सहयोग मिलने पर नये धर्म का प्रभाव अधिक व्यापक और तीव्रगामी हो जाता है। फिर भी यदि राजनैतिक सत्ता का लगातार तथा अधिक समय तक किसी सम्प्रदाय को दबाने के लिए सहारा लिया गया तो फिर उसका विकास मुश्किल हो जायगा। किसी नवीन ध्येय को जीवित रखने के लिए शहीदो का खून एक सीमित हद तक ही काम आयगा। दूसरी ओर, जहा किसी सम्प्रदाय को राजनैतिक सत्ता का जितना अधिक बल मिलेगा, वह उतनी ही तेजी से बढेगा। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि इस्लाम का ससार में जो प्रसार हुआ, वह सिर्फ इसलिए नही कि उसका दर्शन और सिद्धात उच्च-कोटि के थे, बल्कि वह जहा भी गया, उसने राजनैतिक सत्ता पर

अधिकार प्राप्त किया, और जव इस सत्ता-प्राप्ति का क्रम टूटा, तो वह भी अन्य सम्प्रदायो की तरह एक सप्रदाय मात्र रह गया।

इस वात की चर्चा करना कि शुद्धता और गहराई की दृष्टि से किसी सिद्धान्त के तीव्र-गामी प्रचार का उसपर क्या प्रभाव पडेगा, हमारी मर्यादा के वाहर है। इतिहास के हमारे अध्ययन से हम सिर्फ इतना ही कह सकते है कि छोटे-छोटे सप्रदाय तो शीघ्र विनष्ट होते है, परन्तु वडे-वडे धर्म—पथ विशाल भूभागो पर फैले अपने असख्य अनुयायियो के वल पर नव-जीवन प्राप्त करते हुए सदियो तक जीवित रहते है। 'विकासशीलता ही जीवन है। स्थितिशीलता तथा सकुचन, ह्रास और विनाश के स्पष्ट लक्षण है। आज हम मानते है कि पूजीवाद के सामने कोई भविष्यकाल नही है। क्योकि उसका विकास रुक गया है और वह धीरे-धीरे पीछे खदेडा जा रहा है। पूजीवादी देश भी आज अर्थ-व्यवस्था के अधिकाधिक क्षेत्रो के राष्ट्रीयकरण तथा सामूहिक उद्योग और सामूहिक व्यापार की ओर अग्रसर हो रहे है।

भूदान और राजनीति

धार्मिक क्राति के उपर्युक्त नियम सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक क्रातियो पर भी लागू होते है। अगर उन्हें फैलाना है और मानव-समाज को नये ढाचे में ढालना है, तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से उन्हे राजनैतिक सत्ता प्राप्त करनी ही चाहिए। जो क्राति मानव-जीवन के सारे पहलुओ पर असर नही करती, वह वास्तव मे क्राति ही नही है। मान लीजिए कि भूदान आदोलन ने चार सालो मे अपना लक्ष्य हासिल किया, तो क्या सिर्फ इतने से ही देश में सामाजिक तथा आर्थिक क्राति हो जायगी? वुरी राजसत्ता अपनी लेखनी की एक फटकार से इस आदोलन के सारे सुपरिणामो को शून्य कर देगी। मान लीजिए कि सरकार अपने शासन-तत्र के भार रूप ऊपरी स्तर पर, जिसकी कार्य-क्षमता दिन-व-दिन घटती जाय, अधिकाधिक धन खर्च करती रहे और अपने आर्थिक साधनो की मर्यादा के वाहर वह पुन-र्निर्माण की विशाल योजनाए अमल मे लावे, जिनके कारण मुद्रास्फीति हो, शासन-तन्त्र के अदर की घूसखोरी तथा उद्योग-व्यापार के अन्दर के

चोर-बाजारी को रोकने मे सरकार असमर्थ रहे और देश मे सच्ची क्राति और सुरक्षा करने मे सरकार असमर्थ रहे, तो क्या भूदान द्वारा जमीन के न्यायोचित बटवारे से ही समस्या हल हो सकेगी ? मान लीजिए कि सरकार की अर्थनीति इस तरह की हो कि उसमे गरीब-से-गरीब वर्गों पर करो का अधिक बोझ रहे, तो क्या भूदान द्वारा प्राप्त चार बीघे जमीन भूमिहीनो के हाथो से फिर छीनी नही जायगी ? जहा एक ओर अच्छी नीति अख्तियार करने मे सरकार राष्ट्र को खडा कर सकती है, वहा गलत नीति से राष्ट्र को बरबाद भी कर सकती है। आज तो जहा हमारी अनेकविध प्रवृत्तिया राजनीति पर निर्भर रहती है और राजनीति साधारण नागरिको के जीवन का मूलाधार है, वहा व्यक्तियो द्वारा अथवा सार्वजनिक संस्थाओ द्वारा किये हुए सुधारो के प्रयत्न बुरी सरकार के प्रभाव को पर्याप्त मात्रा में मिटा नही सकते। दूसरी ओर, अच्छे कानून और प्रामाणिक, कार्यक्षम तथा दक्ष शासन-तत्र का सहारा मिलने से व्यक्तिगत प्रयत्न पर्याप्त मात्रा मे सफल हो सकते है।

देहात के सामाजिक जीवन के सवाल को ही लीजिये। मान लीजिए कि वहा की जनता जात-पात मे बटी हो, सदियो से अज्ञान तथा अंधविश्वास मे फसी हो, बाल-विवाह प्रचलित हो, जन्म, मृत्यु तथा विवाह के उपलक्ष्य मे वहा की जनता बेहद फिजूल खर्च करती हो, तो क्या वहा का भूमिहीन श्रमिक, जिसे भूदान द्वारा थोडी-सी जमीन दे दी जाय, फिर से दरिद्री हो कर अपनी जमीन खो न बैठेगा ? जीवन के सभी क्षेत्रो को व्यापनेवाले सर्वांगीण सुधार के अभाव मे सिर्फ भूदान हमारे समाज की किसी भी समस्या को हल नही कर सकेगा।

रचनात्मक कार्यक्रम की, सामाजिक सुधार की तथा व्यक्तियो के नैतिक उत्थान की योजनाए, राजनैतिक सत्ता के समर्थन के अभाव मे, अगर राष्ट्र-जीवन का पुनर्निर्माण कर सकती, तो गाधीजी, जो रचनात्मक कार्य और नैतिक तथा सामाजिक सुधार के महान् समर्थक थे, विदेशी साम्राज्यवाद को हटाने के लिए कभी राजनैतिक आन्दोलन नही छेडते।

हमें कभी भूलना नहीं चाहिए कि कुछ शासन-तन्त्र, विदेशी हो या देशी विकास और प्रगति के मार्ग में बड़ा भारी रोड़ा होता है। अगर ऐसी बात न होती तो नैतिक और सामाजिक-सुधार के आन्दोलन खुद ही सब आवश्यक सारी प्रगति कर सकते और राजनीति या शासन के क्षेत्र में पड़ने की आवश्यकता ही न रहती। ऐसा होता तो बड़े सन्तोष की बात होती क्योंकि राजनीति बहुत दफा गंदी और क्रूर होती है। कभी-कभी इससे विदेशों के साथ युद्ध छिड़ जाते हैं और इससे अधिक बुरी बात यह है कि गृह-युद्ध भी छिड़ जाते हैं।

सेवा के लिए सत्ता

इसलिए अगर भूदान-आन्दोलन के पीछे क्रान्तिवादी मनोवृत्ति हो न कि सुधारवादी, अगर सचमुच वह प्रचलित मूल्यों को बदलना चाहता है, आज की आर्थिक तथा सामाजिक विषमता की समस्याओं को हल करके स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र को अधिक शक्तिशाली बनाने के हेतु अगर इस आन्दोलन की योजना की गई हो तो उसे अधिकाधिक व्यापक बनते जाना चाहिए और देश के शासन के राजनैतिक सवाल को अपने अन्दर समाविष्ट करना चाहिए। एक तो वह इसे प्रत्यक्ष राजनैतिक कार्य करके हल करे या फिर भूदान-आन्दोलन में और उसके महान सामर्थ्य में विश्वास रखने वालों के मार्फत इसे अप्रत्यक्ष रूप से हल करे। किसी भी तरह क्यों न हो भूदान-आन्दोलन को व्यापक बनाने के लिए और उसके क्रान्तिकारी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राजनैतिक सत्ता प्राप्त करनी ही पड़ेगी।

की जा सकती। परन्तु इस तरह राज्यसत्ता प्राप्त करने के पीछे हेतु समाज-सुधार का ही होना चाहिए। राज्यसत्ता सामाजिक लक्ष्य हासिल करने का एक साधनमात्र है। पर जैसा कि इतिहास में बहुत दफा हुआ है और आज भी हो रहा है, राज्यसत्ता को लक्ष्य नहीं बनने देना चाहिए। गांधीजी बिलकुल सही अर्थ में एक समाज-सुधारक थे। राज्यसत्ता उनके लिए सिर्फ साधन थी—प्रारम्भ में समाज-सुधार के मार्ग के रोड़े दूर करने और बाद में उसमें प्रत्यक्ष मदद करके उसे व्यापक बनाने की। राजनैतिक प्रवृत्ति को ओर देखने की और उसे चलाने की यही सही दृष्टि है। मानवीय प्रवृत्तियों का सही लक्ष्य मानवीय मूल्य ही हो सकते हैं, न कि सत्ता।



सर्वसेवा संघ की मण्डल द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकें

१ नई क्राति (नकलन) ।)

भूदान यज्ञ के रूप मे एक नई क्राति इस समय देश मे हो रही है। उसी के विभिन्न पहलुओ का विवेचन करनेवाले विविध विचारवान व्यक्तियो के लेखो का सकलन इस पुस्तक मे किया गया है।

२ नई क्राति के गीत (सकलन) ।)

भूदान-यज्ञ-सबधी चुनी हुई भावपूर्ण, प्रेरणादायक एव लोक-जीवन को नई क्राति के प्रति उन्मुख करनेवाली कविताओ का सग्रह।

३ धर्मचक्र प्रवर्त्तन (विनोबा) ।)

भूदान-यज्ञ के द्वारा समाज के नव-निर्माण की कल्पना पर प्रकाश डालनेवाले भाषणो का सग्रह।

४ दड-निरपेक्ष समाज रचना (धीरेंद्र मजूमदार) ।)

वर्तमान दोषपूर्ण समाज को बदलने के लिए उसका नया स्वरूप क्या होगा? इसका उत्तर इस पुस्तक मे मिलेगा।

५ हमारी भूमि-समस्या का हल (जयप्रकाश नारायण) ।)

हमारी भूमि के मौजूदा असमान विभाजन के कारण देश मे जो विषम स्थिति पैदा हो गई है, उसके निराकरण का मार्ग है भूदान-यज्ञ। समाजवादी नेता ने इस बात को बडे सुन्दर और तर्कयुक्त ढग से इस पुस्तक मे सिद्ध किया है।

६ सर्वोदय के सेवको से (विनोबा) ।)

रचनात्मक कार्यकर्ताओ को दिये गए आचार्य विनोबा के सात महत्त्वपूर्ण भाषण।

७ मानवीय क्राति (दादा धर्माधिकारी) ।)

भूदान-यज्ञ और सपत्ति-दान विषयक लेखो का सग्रह।

८ सामाजिक क्राति और भूदान (जे० बी० कृपालानी) ।)

विनोबाजी के भूदान-यज्ञ द्वारा किस प्रकार सामाजिक क्राति हो सकती है, इसका विशद विवेचन।

९ भूदान-दीपिका (विमला बहन ठकार) =)

भूदान-यज्ञ तथा सपत्ति-दान-यज्ञ का हृदयग्राही विवेचन।

१० व्यवहारशुद्धि (श्रीकृष्णदास जाजू) ।)

व्यापारी की नैतिकता का वर्णन करने वाली पुस्तक।

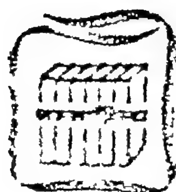
ग्रामोद्योग-साहित्य

१	गांव आन्दोलन क्यों?	जे. सी. कुमारप्पा	२॥)
२	गांधी अर्थ-विचार	,,	१)
३	स्थायी समाज व्यवस्था (२ भाग)	,,	४)
४	श्रम-मीमांसा और अन्य प्रबन्ध	,,	।।।)
५	विज्ञान और तरक्की	,,	।।।)
६	खून से सना पैसा	,,	।।।)
७	जनता की आजादी	,,	१॥)
८	यूरोप गांधीवादी दृष्टि से	,,	।।।)
९	वर्तमान आर्थिक परिस्थिति	,,	१॥)
१०	हमारी खुराक की समस्या	,,	१॥)
११	मुद्रास्फीति, उसके कारण और उपाय		।।।)
१२	ग्रामों के सुधार की एक योजना	जे. सी. कुमारप्पा	१॥)
१३	स्त्रियां और ग्रामोद्योग	,,	।)
१४	हिन्दुस्तानी खाद्य-पदार्थों की उपयुक्तता और उनसे प्राप्त जीवन-तत्त्व	,,	॥=)
१५	हमें क्या खाना चाहिये?	झवेरभाई पटेल	३)
१६	तेल घानी	,,	१॥)
१७	मधुमक्खी-पालन	—	२)
१८	ताड़-गुड़	—	१)
१९	साबुनसाजी	के. बी. जोशी	१)
२०	हाथ-कागज बनाना	—	४)
२१	मगन चूल्हा	—	॥)
२२	मगन दीप	—	॥)
२३	घानी जामा	—	=)
२४	गांवों की आर्थिक जांच-प्रश्नावली	—	।)
२५	ग्रामोद्योग जांच-प्रश्नावली	—	१।।।)
२६	राजस्व और हमारी दरिद्रता	जे. सी. कुमारप्पा	२॥)
२७	ईसा का सन्देश	,,	१)
२८	हिन्दुस्तान और ब्रिटेन का आर्थिक लेन-देन	,,	॥)
२९	नीतियों के भीतर	,,	॥)
३०	रचनात्मक कार्यक्रम किस ओर?	जी. रामचन्द्रन	॥=)
३१	नाडूळ (मराठी)		॥)

सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन-विभाग, वर्धा

नई क्रांति-माला की पुस्तकें

१. सर्वोदय का घोषणापत्र
२. सर्वोदय के सेवकों से
३. भूदान-यज्ञ
४. धर्म-चक्र-प्रवर्तन
५. मानवीय क्रांति
६. नई क्रांति
७. नई क्रांति के गीत
८. हमारी भूमि-समस्या
९. दंड-निरपेक्ष समाज-रचना
१०. सम्पत्तिदान-यज्ञ
११. भूदान दीपिका
१२. सामाजिक क्रांति और भूदान
१३. व्यवहार शुद्धि



चार आना

संपत्ति-दान-यज्ञ

समाज की नवरचना के लिए एक क्रांतिकारी कदम

श्रीकृष्णदास जाजू

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

संपत्ति-दान-यज्ञ

विनोबाजी के संपत्ति-दान-यज्ञ का तात्त्विक और
व्यावहारिक विवेचन एवं निरूपण

श्रीकृष्णदास जाजू



१९५४

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ, वर्धा का प्रकाशन

अ० भा० सर्व सेवा संघ, वर्धा
की ओर से
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

तीसरी बार १९५४
मूल्य
तीन आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

भूमिका

सर्व-सेवा-संघ ने अपनी पिछली बैठक में एक प्रस्ताव द्वारा सर्वोदय-साहित्य-सम्पादन-समिति का निर्माण किया और उसपर जिम्मेदारी डाली कि सर्वोदय और भूदान के सम्बन्ध में उत्तम प्रचारात्मक साहित्य का निर्माण, सम्पादन और प्रकाशन करे। समिति के सदस्य हैं श्री दादा धर्माधिकारी, श्री वल्लभस्वामी और लक्ष्मीनारायण भारतीय (संयोजक)। इस माला के प्रकाशन की जिम्मेदारी सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली को सौंपी गई है।

प्रस्तुत योजना के अन्तर्गत विनोबाजी की पहली पुस्तक 'सर्वोदय के सेवकों से' प्रकाशित हो चुकी है। यह दूसरी पुस्तक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है।

इसका पहला संस्करण नागपुर प्रांतिक गांधी-स्मारक-निधि द्वारा प्रकाशित हुआ है। श्रद्धेय जाजूजी ने इसमें संपत्तिदान-यज्ञ पर व्यावहारिक दृष्टि से और विशेषतः संपत्तिदानों के लिए विस्तार के साथ तर्कयुक्त विवेचन प्रस्तुत किया है।

विषय-सूची

संपत्ति-दान-यज्ञ

विभाग पहला

समान वितरण

(गांधीजी)

समान वितरण का सही आशय यह है कि हरेक मनुष्य को उसकी स्वाभाविक आवश्यकताएं पूरी करने की ही साधन-सामग्री मिले, अधिक नहीं। मिसाल के तौर पर, किसी का हाजमा कमजोर है और उसको १० तोला रोटी काफी होती है तथा दूसरे को ४० तोले रोटी की जरूरत है, तो दोनों की आवश्यकताएं पूरी हो सकनी चाहिए। इस आदर्श को अमल में लाने के लिए सारी सामाजिक व्यवस्था की पुनर्रचना करनी होगी। अहिंसक समाज इसके बदले किसी दूसरे आदर्श का संगोपन नहीं कर सकता। शायद हम इस आदर्श तक न पहुंच सकें, पर इसे सदा खयाल में रखकर इसके नजदीक पहुंचने के लिए हमें अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जितनी हद तक हम इस आदर्श की ओर बढ़ेंगे, उतना ही हमें संतोष और सुख मिलेगा और उतनी हद तक अहिंसक समाज को अस्तित्व में लाने की दिशा में हमारे द्वारा मदद होगी।

अब हम विचार करें कि समान वितरण अहिंसा के मार्ग से किस प्रकार हो सकता है। इस मार्ग में, उनके लिए, जिनने कि इस आदर्श को अपने जीवन का अंग बना लिया है, पहला कदम यह है कि वह अपने निजी जीवन में आवश्यक परिवर्तन कर ले। वह अपने दिल में भारत की दरिद्रता का खयाल रखकर अपनी जरूरतें कम-से-कम कर लेगा, आजीविका कमाने में बेईमानी और सट्टे को स्थान नहीं देगा, अपना रहन-सहन जीवन

के नये विचार के मुताबिक रखेगा। उसके जीवन के हरेक क्षेत्र में संयम होगा। अपने जीवन में जो कुछ सुधार करना शक्य है, वह कर लेने पर ही वह अपने साथी और पड़ोसियों में इस आदर्श का प्रचार करने लायक होगा।

समान-वितरण के सिद्धान्त की जड़ में, निःसंदेह, धनिकों के पास जो अधिक संपत्ति है, उसके ट्रस्टीपन का विचार निहित है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार उन्हें अपने पड़ोसियों की अपेक्षा अधिक पैसा न रखना चाहिए। यह कैसे हो सकता है? अहिंसा के मार्ग से या धनिकों की संपत्ति छीन कर? दूसरी दशा में स्वाभाविकतया हमें हिंसा का सहारा लेना होगा। हिंसक कार्यवाही से समाज का लाभ नहीं हो सकता। उससे समाज दुर्बल होगा, क्योंकि जो लोग संपत्ति कमाने की शक्ति रखते हैं, उनके सद्गुणों से समाज को वंचित रहना पड़ेगा। इसलिए साफ है कि अहिंसक मार्ग बेहतर है। धनिक अपनी संपत्ति अपने अधीन रख सकेगा, जिसमें से वह अपनी जरूरतों के लिए जितना वाजिब हो, उतने का उपयोग कर सकेगा और बाकी की संपत्ति के बारे में समाज के हित में ट्रस्टी के तौर पर काम करेगा। इस बहस में ट्रस्टी की ईमानदारी मान ली गई है।

अगर हद दर्जे का प्रयत्न करने पर भी धनिक लोग सही तौर से गरीबों के संरक्षक नहीं बनते हैं और गरीब अधिकाधिक पिस कर भूख के शिकार बनते हैं तो क्या करना चाहिए? इस पहेली को सुलझाने के प्रयत्न में ही मैं अहिंसक असहकार और सविनय अवज्ञा जैसे सही और अचूक साधनों पर पहुंचा हूं। धनिक लोग गरीबों के सहयोग के बिना संपत्ति इकट्ठी कर नहीं सकते। अगर यह ज्ञान गरीबों में पहुंचकर फैले, तो वे बलशाली बनेंगे और जिन विनाशकारी असमानताओं ने उन्हें भूख-मरण के घाट तक ला पटका है, उनसे वे अहिंसक साधनों द्वारा मुक्ति पाना सीख लेंगे।

'हरिजन', २५-८-४०

विभाग दूसरा

सब सम्पति रघुपति कै आही

(विनोबा)

१८ अप्रैल १९५१ के रोज भूदान-यज्ञ की कल्पना सूझी। अब तो देश भर में लोगों को यह कल्पना जँच गई है, ऐसा मान सकते हैं। भूमि-दान-यज्ञ के साथ-साथ संपत्ति-दान-यज्ञ भी क्यों न चलाया जाय, इसका मेरे मन में विचार तो चलता ही था लेकिन भूमि का सवाल एक बुनियादी सवाल था जिसके हल के बिना देश में मैं खतरा देख रहा था। इसलिए आरम्भ में उतना ही सवाल हाथ में लेना उचित लगा। अलावा इसके भूमि परमेश्वर की सीधी देन है, इस बात को सबकोई सहज में समझ सकते थे। वह उत्पादन का मूलभूत साधन था, इसलिए भी आरंभ में भूमि तक सीमित रहना अच्छा लगा। यथाशक्ति एक-एक कदम उठाना अहिंसा की प्रणाली के अधिक अनुरूप था।

लेकिन भूमि-दान-यज्ञ का कार्य जैसे-जैसे आगे बढ़ा, वैसे-वैसे संपत्ति का भी हिस्सा मांगे बगैर विचार की पूर्ति नहीं होती, यह बात भी स्पष्ट होती गई और आखिर मेरे मन में निश्चय हो गया कि संपत्ति का भी एक हिस्सा मैं लोगों से मांगू। मैं चाहता तो हूं कम-से-कम छठा हिस्सा, फिर लोग सोच-समझकर जो भी दें। संपत्ति चाहे हमने अपने पुरुषार्थ से कमाई हो, पर अपने लिए वह नहीं है, बल्कि सबके उपयोग के लिए परमेश्वर ने हमें वह सौंपी है यह भावना इस मांग के पीछे है। जिस पुरुषार्थ-शक्ति से हमने संपत्ति कमाई, वह शक्ति भी परमेश्वर की देन है।

के नये विचार के मुताबिक रखेगा। उसके जीवन के हरेक क्षेत्र मे सयम होगा। अपने जीवन मे जो कुछ सुधार करना शक्य है, वह कर लेने पर ही वह अपने साथी और पडोसियों मे इस आदर्श का प्रचार करने लायक होगा।

समान-वितरण के सिद्धान्त की जड मे, नि सदेह, धनिको के पास जो अधिक सपत्ति है, उसके ट्रस्टीपन का विचार निहित है, क्योकि इस सिद्धान्त के अनुसार उन्हे अपने पडोसियो की अपेक्षा अधिक पैसा न रखना चाहिए। यह कैसे हो सकता है ? अहिसा के मार्ग से या धनिको की सपत्ति छीन कर ? दूसरी दशा मे स्वाभाविकतया हमे हिसा का सहारा लेना होगा। हिसक कार्यवाही से समाज का लाभ नही हो सकता। उससे समाज दुर्बल होगा, क्योकि जो लोग सपत्ति कमाने की शक्ति रखते है, उनके सद्गुणो से समाज को वचित रहना पडेगा। इसलिए साफ है कि अहिसक मार्ग बेहतर है। धनिक अपनी सपत्ति अपने अधीन रख सकेगा, जिसमे से वह अपनी जरूरतो के लिए जितना वाजिब हो, उतने का उपयोग कर सकेगा और बाकी की सपत्ति के बारे मे समाज के हित मे ट्रस्टी के तौर पर काम करेगा। इस बहस मे ट्रस्टी की ईमानदारी मान ली गई है।

अगर हद दर्जे का प्रयत्न करने पर भी धनिक लोग सही तौर से गरीबो के सरक्षक नही बनते है और गरीब अधिकाधिक पिस कर भूख के शिकार बनते है तो क्या करना चाहिए ? इस पहेली को सुलझाने के प्रयत्न मे ही मै अहिसक असहकार और सविनय अवज्ञा जैसे सही और अचूक साधनो पर पहुचा हू। धनिक लोग गरीबो के सहयोग के बिना सपत्ति इकट्ठी कर नही सकते। अगर यह ज्ञान गरीबो मे पहुचकर फैले, तो वे बलशाली बनेगे और जिन विनाशकारी असमानताओ ने उन्हे भूख-मरण के घाट तक ला पटका है, उनसे वे अहिसक साधनो द्वारा मुक्ति पाना सीख लेगे।

'हरिजन', २५-८-४०

विभाग दूसरा

सब सम्पति रघुपति कै आही

(विनोबा)

१८ अप्रैल १९५१ के रोज भूदान-यज्ञ की कल्पना सूझी। अब तो देश भर में लोगों को यह कल्पना रुच गई है, ऐसा मान सकते हैं। भूमि-दान-यज्ञ के साथ-साथ संपत्ति-दान-यज्ञ भी क्यों न चलाया जाय, इसका मेरे मन में विचार तो चलता ही था, लेकिन भूमि का सवाल एक बुनियादी सवाल था जिसके हल के बिना देश में मैं खतरा देख रहा था। इसलिए आरम्भ में उतना ही सवाल हाथ में लेना उचित लगा। अलावा इसके भूमि परमेश्वर की सीधी देन है, इस बात को सबकोई सहज में समझ सकते थे। वह उत्पादन का मूलभूत साधन था, इसलिए भी आरम्भ में भूमि तक सीमित रहना अच्छा लगा। यथाक्रम एक-एक कदम उठाना अहिंसा की प्रणाली के अधिक अनुरूप था।

लेना चाहता हू । मै तो मुक्त ही रहना चाहता हू । लोकोपकार के कामो के लिए बहुत-सी निधिया इकट्ठी की जाती है, जिनका कारोबार सार्वजनिक समितिया देखा करती है । ऐसा भी करने का मेरा विचार नही है । समय-समय पर भिन्न-भिन्न कामो के लिए इकट्ठी की जानेवाली उपयोगी निधियो में और इस सपत्ति-दान-यज्ञ मे और भी एक महत्त्वपूर्ण भेद है । वह यह कि इस यज्ञ मे सपत्ति का हिस्सा हर साल देना होगा । इसलिए मैंने यह सोचा है कि दाता के पास ही वह सपत्ति रहेगी । उसका विनियोग हमारे निर्देश के अनुसार वह करेगा और उसका हिसाब वह हर साल हमारे पास भेजेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि देनेवाला न सिर्फ अपनी सपत्ति का हिस्सा देगा, बल्कि अपनी बुद्धि का भी उपयोग इसमे करेगा । हमारे निर्देश के अनुसार विनियोग करने की बात मैंने की है, लेकिन उसमे भी वह अपना सुझाव पेश कर सकेगा ।

जाहिर है कि मै इसमें दाता पर सारी जिम्मेदारी रख रहा हू और विश्वास से काम ले रहा हू । तार्किको का इसपर आक्षेप हो सकता है । लेकिन धर्म-बुद्धि का विश्वास पर ही आधार है । विश्वास से जो सरक्षण मिल सकता है, वह किसी कानूनी कार्रवाई से नही मिल सकता । उस दृष्टि से सपत्ति-दान-यज्ञ की यह रीति मैंने निश्चित की है ।

इस यज्ञ मे हिस्सा लेनेवाले अपने परिवार के साथ मशविरा करके सबके सतोष से और पूरे प्रेम से इसमे हिस्सा ले । मै मानता हू कि अगर भक्तजन इस काम मे योग देगे तो एक जीवन-विचार के तौर पर यह कल्पना देश मे फैलेगी और साम्ययोग की तरफ समाज की सहज गति होगी ।

अस्तेय और अपरिग्रह, दोनो के मेल से अर्थ-शुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा नही हो सकती ।

अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन अस्तेय करता है, और उसकी मात्रा का नियमन अपरिग्रह करता है। अस्तेय कहता है कि शरीर का निर्वाह मुख्यतया शरीर श्रम से, यानी उत्पादक परिश्रम से होना चाहिए। शरीर-

श्रम के वगैर अगर हम अन्न खाते है, तो एक खतरा पैदा करते है ।

दुनिया की वहुत-सी वर्तमान विषमताए, वहुत से दु ख और पाप शरीर-श्रम टालने की नीयत से पैदा हुए है । वैसी नीयत रखनेवाला गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करता है । इसलिए अस्तेय-व्रत शरीर-श्रम द्वारा सपत्ति-निर्माण पर जोर देता है ।

आज समाज मे चोरी को पाप माना जाता है, फिर भी कुछ लोग चोरी करते है । पर चोरी करना अच्छा नही है, यह तो हमने मान लिया ही है न ? यह एक मूल्य हमारे समाज मे स्थापित हो गया है । पर चोरी के समान सग्रह भी पाप है, यह अव समझना चाहिए । अस्तेय और अपरिग्रह हमे सीखने है । ये दोनो पाप है । मै कई दफा कहता हू, कजूस चोर के वाप होते है । अगर कजूस और सग्रह करनेवाले न हो, तो चोरी ही न होगी ।

अपहरण और परिग्रह

मै जिस विचार को चलाना चाहता हू, उसके विरुद्ध जो विचार समाज मे आज चल रहा है, उसको अपहरण कहते है । अपहरण के विचार में विश्वास करनेवाले मानते है कि आखिर व्यक्ति समाज के लिए होता है और समाज के लिए व्यक्ति की सपत्ति का अपहरण करने मे कोई दोष नही, वल्कि व्यक्ति की सम्पत्ति के अपहरण को रोकनेवाला विचार ही गलत है । आज उस विचार की ओर दुनिया के कई देश आकर्षित हुए है । उसके विरुद्ध मै अपरिग्रह का विचार रखता हू । अक्सर ऐसा माना जाता है कि अपरिग्रह तो गाधीजी, विनोवा या ऐसे सन्यासियो के लिए ही है और सामान्य जनता के लिए तो परिग्रह ही है । इसलिए लोग सन्यासियो का आदर तो करते है, परन्तु कही-कही तो उन्हे अपने घर मे भी प्रवेश नही करने देते । सन्यास को अन्तिम आदर्श के तौर पर मानते तो है, लेकिन गृहस्थ-जीवन मे परिग्रह ही चलता है । धर्मविचार को इस तरह उदित करने से उसका सीमित लाभ ही हो सकता था । नतीजा यह हुआ कि लोभी का मुकावला करते समय निर्लोभी भी लोभी वन गया । क्षत्रियत्व

को मिटाने के लिए खुद क्षत्रिय वनकर अपने काम मे असफल होनेवाले परशुराम का उदाहरण तो हमारे सामने है ही । जिसका मुकावला करना है, उसीका शास्त्र हम स्वीकार कर ले, तो हम उसके स्थूल रूप को चाहे मार सकें, पर सूक्ष्म रूप मे उसे अमर कर देते है । आज दुनिया मे लोभ का, परिग्रह का राज है । परिग्रह के इर्द-गिर्द ऐसे कानून खडे किये गए है कि परिग्रह गलत नही माना जाता । चोरी को हम गुनाह मानते है, पर जो सग्रह करके चोर को प्रेरणा देता है, उसकी कृति को चोरी नही मानते । उपनिषदो की कहानी मे राजा कहता है, "मेरे राज मे न तो कोई चोर है, न कजूस", क्योंकि कजूस ही चोरो को पैदा करते है । चोरो को तो हम जेल भेजते है और उनके पिता को मुक्त रखते है । वे शिष्ट-प्रतिष्ठित वनकर गद्दी पर वैठते है । यह कैसा न्याय है ? गीता ने भी,उन्हें ही चोर कहा है । लेकिन हमने तो आज गीता को सन्यासियो की किताव कहकर उससे भी सन्यास ले लिया है ।

समाजाय इदम्

जिस तरह हम यज्ञ मे आहुति देते समय कहते है कि "इद्राय इदम् न मम"—यह मेरा नही है, इद्र के लिए है उसी तरह आज हम जो कुछ उत्पादन करते है, चाहे वह खेती मे हो, चाहे फैक्टरी मे, उसके बारे मे कहना चाहिए कि "समाजाय इदम्, राष्ट्राय इदम्, न मम—यह सब मेरे लिए नहीं है, समाज के लिए है, राष्ट्र के लिए है ।" अपने पास जो भी कुछ है वह सब समाज को अर्पण करना चाहिए । फिर समाज की ओर से अपनी आवश्यकता के अनुसार जो कुछ मिलेगा, वह अमृत होगा ।

वचपन मे हम पर अनेको के उपकार हुए है । उसकी निष्कृति के लिए शरीर-परिश्रम के सान्य तरीके से जो हमने कमाया हो, उसका हिस्सा समाज को देना लाजमी हो जाता है । उसमे सम्यक्-विभाजन का उद्देश्य होना है ।

हम छठा हिस्सा मागते है, तो क्या पाच-बटा-छ का सग्रह मान्य करते है ? पर हमारे मान्य करने का सवाल ही नहीं ह। वह भला मनुष्य

छ -वटा-छ' सगह ही मान्य कर रहा है। उनकी उस मान्यता को हम धक्का देते हैं, एक-वटा-छ माग कर उसको हम विचार के लिए प्रेरित करते है। भक्तो ने कहा था, "जिसने 'हरिनाम' एक दफा वोल लिया, उसने मोक्ष-प्राप्ति के लिए कमर कस ली।" जिसने एक-वटा-छ समाज को निरतर अर्पण करने का नियम, जीवन-निष्ठा के तौर पर, कबूल किया, उसने अपनी सारी सपत्ति, अपना सारा जीवन, यहा तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी, समाज को अर्पित करने के लिए कमर कस ली। सपत्ति-दान-यज्ञ की तरफ देखने की यह दूरदर्शी दृष्टि है।

त्याग-बन्धन और भोग-बन्धन

बहुतो को यह विचार ही कठिन मालूम होता है कि जिन्दगी भर छठा या आठवा हिस्सा दान दे। लेकिन वे यह नही सोचते कि वे एक दफा शादी कर लेते है तो जिन्दगी भर के लिए ही तो अपने को बाध लेते है! हिदू धर्म ने सन्यास की छूट रखी है, फिर भी जो मनुष्य आमरण बधन मे रहते है, वे इस बधन से क्यो हिचकिचाते है? और इसमे तो त्याग ही त्याग है, भोग पाने को तो कुछ है ही नही। इसलिए शुद्ध विचार करनेवाले इस चीज को जीवन का अग समझ ले। जिस तरह जिन्दगी भर स्वच्छ हवा और स्वच्छ आहार हम लेते है, उसी तरह जीवन भर अपनी सपत्ति का एक हिस्सा लोगो को हमे देना है। दरअसल सारा-का-सारा ही देने की बात होनी चाहिए, पर ट्रस्टी के नाते अपने पास वे कुछ रख ले और बाकी का सारा दे दे।

हम यह जो मालकियत मिटाना चाहते है, वह सविधान के विरोध मे है, ऐसा लोग कहते है। हम कहते है, क्या सविधान देवो का बनाया हुआ है? जैसे-जैसे मनुष्य का विचार बदलेगा, वैसे-वैसे उसका सविधान भी बदलेगा। यह बात तो नही कि कोई चीज हम जबरदस्ती लादना चाहते है। समझाने का हमारा हक है और समझने का लोगो का कर्तव्य है। अगर वे समझ गये तो क्या उसका मतलब यह होगा कि सविधान का उन्होने विरोध किया? हम तो समझते है कि सविधान दिन-ब-दिन विकासशील

होना चाहिए। मालकियत की भावना मिटनी ही चाहिए, क्योकि हमारे पास अधिक बुद्धि, अधिक शक्ति, अधिक महत्त्वपूर्ण काम है, इसलिए हमे अधिक पैसा मिलना चाहिए, यह जो पैसे का नाता जिम्मेदारी के साथ जोड दिया गया है, इसे ही हम गलत समझते है।

यह बात जिन मित्रो को हृदयगम होगी, उनसे मै आशा करूगा कि वे चाहे गरीब हो चाहे धनी, चाहे भोगी सासारिक हो, चाहे त्यागी कार्यकर्ता, सपत्ति-दान-यज्ञ मे खुद दीक्षित हो और इस विचार का प्रत्यक्ष कृति से अधिक सशोधन करे।

मेरे काम के बारे मे किसी प्रकार की गलतफहमी न रक्खे। यह एक धर्म-विचार है। मनुष्य को आसक्ति से छुडा कर अपरिग्रही बनाना मेरा उद्देश्य है। इसलिए जो बडे-बडे परिग्रही है, उन्ही के पास दान मागने के लिए पहुचना है, ऐसी बात नही है। आसक्ति तो एक लगोटी मे भी रह सकती है। इसलिए हरएक व्यक्ति के पास पहुचकर विचार समझाना है और दान-पत्र हासिल करना है।

सपत्ति-दान-यज्ञ बहुत गहरी चीज है। हम भूदान-यज्ञ मे हरएक से भूमि मागते है। खास दान-पत्र लेते है, उसपर उसके हस्ताक्षर आदि लेते है, सरकार उसे मजूर करती है, तब वह अमल मे आता है। वैसी पूरी योजना इस यज्ञ में नही है। इसलिए जो व्यक्ति वचन-पत्र लिखकर देगा, वही अपने अतर्यामी भगवान् को साक्षी रखकर अपना वचन पालन करेगा और हिसाब भी रखेगा। उस दान का पूर्ण उपयोग हमारे कहने के अनुसार करने की जिम्मेदारी उसी पर है। यह भूमि के समान एक साल के लिए दान देने की बात नही है। हर साल हिस्सा देना पडेगा। अत उसके लिए जीवन को नैष्ठिक बनाने का काम होना चाहिए। अदर की निष्ठा जगनी चाहिए।

"सब सपति रघुबर कै आही।" तब छठा हिस्सा देने की बात गौण है। होना तो यह चाहिए कि अपना सबकुछ समाज को देना चाहिए और फिर अपने शरीर के लिए उसमे से थोडा-सा लेना चाहिए। परन्तु अभी समाज मे इस तरह का इन्तजाम नही है और तुरन्त होनेवाला भी नही है। इसलिए

सभी छठा हिस्सा दे दिया जाय और बाकी जो बचे, उसमे से और देने का सोचा जाय। छठा हिस्सा देने का मतलब यह है कि जीवन के लिए एक निश्चय करके वह देना है। उतना हिस्सा नही देते है तो हम भी पापी बनते है और हमारा जीवन भी पापी बनता है। इसलिए देना कर्त्तव्य मानना चाहिए। दूसरा कितना देता है, इसकी चिन्ता हमे नही करनी चाहिए। बल्कि स्वय हमने कितना दिया है, इसकी ओर ध्यान देना चाहिए। दूसरे की परीक्षा करने की यह बात नही है। यह निजी शुद्धि की और अपने कर्त्तव्य की बात है। यह आध्यात्मिक काम, आत्म-सतोष का काम है, ऐसा भान होने के बाद ही काम करना चाहिए।

अगर हमे कोई जीवन भर छठा हिस्सा देते रहे, तो भी हम यह नही समझेंगे कि उन्होने हमारा पूरा विचार समझा ही है। अगर उनके पास कोई विशेष उद्योग है, तो जो उद्योग चलता है, उसमे काम करनेवाले, सबका साझा है। अत सबको अपना-अपना हिस्सा मिले और हिस्सा मिलने के बाद जो बाकी बचे, उसे सेवा-कार्य मे दिया जाय। यह जिसने समझ लिया, सपत्तिदान का विचार समझ लिया, ऐसा होगा। इस तरह करने वाला यदि थोडा भी खाता है तो उसका वह खाना भी यज्ञ होगा, आहुति-स्वरूप होगा। इस तरह अपना सारा जीवन यज्ञमय बनाने का विचार है और गाधीजी की तीव्रतम भावना थी कि सपत्ति का हर कोई ट्रस्टी हो। वह बात इसी से पूरी होगी। इसे हम आधुनिकतम अर्थशास्त्र समझते है, जो सच्चा अर्थशास्त्र है।

सपत्तिदान-यज्ञ उतना ही गहरा है, जितना भूदान-यज्ञ। जमीन हरेक के पास नही होती परन्तु सम्पत्ति तो हरेक के पास होती ही है और जमीन सपत्ति का ही एक प्रकार है। सपत्ति मे बुद्धि, शक्ति, पैसा सबकुछ आता है।

किसी के पास कम है, तो भी हम चाहते है कि वह अपनी अपर्याप्त रोटी मे से थोडी-सी रोटी गरीब के लिए दे। इसका मतलब यह है कि हम अपने घर मे एक को प्रवेश देते है। इसलिए यह बहुत सोच-विचार की बात है। इसका मतलब यह होता है कि हरएक को जीवन थोडा-सा मितव्ययी

करना पडेगा। कई लोगो को तो अपने पेट मे मे काट कर भी कुछ देना पडेगा। वह अपने कुटुम्ब का खर्च तो चलायगा ही, पर उसके साथ दरिद्रनारायण की भी फिक्र रखेगा। यह एक धर्म-विचार है और समझ-बूझ कर इसपर अमल करना है। हिंदुस्तान मे दान की परम्परा चली आई है। भूखे को लेकिन खिलाकर फिर खायेगे, इसी को दान कहते है। इसी मे हमारी खान-दानी है। आज यह कुछ कम हो गया है और शहरो मे तो बहुत ही कम हो गया है। लेकिन मैंने कहा है कि जो गुण आजतक व्यक्तिगत रूप में थे, उन्हे अब सामाजिक रूप देना है।

कुछ गुणो का विकास ही नही हुआ है और वही हमे करना है। दया का विकास हुआ था, परन्तु दया का मतलब यह था कि दूसरो का दुख हममे न सहा जाता, न देखा ही जाता था इसलिए कुछ देने की प्रेरणा हो जाती थी और ऐसे मौके पर मदद करने की स्फूर्ति हो जाती थी। यही आज तक दया का स्वरूप रहा। लेकिन अब उसे नित्य जीवन का एक अग बनाना है। जिस तरह हम रोज नहाते है उसी तरह कुछ विचारो को भी रोज अमल मे लाना है। मनुष्य यह नही सोचता कि जब मै गदा हो जाऊगा तभी नहाऊगा, बल्कि वह रोज नहाता है। दया को हम व्यापक करते है तो उसका विकास होता है। क्या हम अपने भाइयो पर या लडको पर दया करते है ? हम तो उनका हक मानते है और हक मान कर उन्हें जो चाहिए सो दे देते है। यह रोज करने की बात है। जहा दया को सार्वजनिक रूप देते है वहा दूसरे की चिन्ता करना आ जाता है।

अगर ममत्व का अमल करेगे तो दया आयेगी। जहा दया को सार्व-जनिक रूप देना है वहा समत्व, समविभाजन आ जाता है।

सपत्ति-दान-यज्ञ-मार्गदर्शन

(१) सपत्ति हरेक को अपने पास ही रखनी है, या किसी परिचित के पास (२) जो हिस्सा देना है, वह जीवन भर देना है। इसलिए परिवार के जिम्मेदार लोगो की अनुमति से यह काम होना चाहिए (३) कर्जदार को इसमें गुजाइश नही है। कर्ज मे मे मुक्त होना उसका

पहला काम होगा। (४) सपत्ति का विनियोग मेरी सूचनानुसार करना है। इस सारी योजना का यह एक बहुत बडा सरक्षण है। (५) सपत्ति-दान-यज्ञ मे प्राप्त होनेवाली उस वर्ष की रकम उसी वर्ष मे खर्च होगी। बाकी रहने का कारण नही। देश मे इतना विशाल काम करना है कि कितनी भी सपत्ति मिले तो भी सारी उसमे सहज खर्च होनेवाली है (६) सपत्ति का विनियोग फिल्हाल मुख्यतया तीन मदो पर करने का सोचा है (अ) जिन भूमिहीन किसानो को जमीन दी जायगी उनको बीज, बैल, कुआ आदि के रूप मे मदद करना (आ) त्यागी सेवक-वर्ग को अल्पतम सेवा-धन देना, (इ) सत्साहित्य का प्रचार करना। (७) सपत्ति-दान यज्ञ मे हिस्सा देने वाले के जीवन का परिचय मै चाहता हू। उनके लिए इस यज्ञ मे सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवालो को अपनी कुछ जानकारी मुझे भेजनी चाहिए।

विभाग तीसरा

संपत्ति-दान-यज्ञ

(श्रीकृष्णदास जाजू)

प्रस्ताविक

अब सारा देश भूदान-यज्ञ से परिचित हो गया है। जब कार्यकर्ता लोग जमीदारो से भूदान-यज्ञ के लिए जमीन मागने जाते थे, तब कुछ जमीदार यह प्रश्न करते थे, जैसे हमसे जमीन मागी जाती है, वैसे ही जो धनिक लोग है और जिनके पास करोडो की सपत्ति पडी है, उनसे उनकी सपत्ति का हिस्सा क्यो नही मागा जा रहा है? वास्तव मे सपत्तिदान-यज्ञ भूदान-यज्ञ के गर्भ मे था ही अबतक उसने प्रकट रूप नही लिया था। दोनो यज्ञो मे से प्रथम केवल भूदान का ही प्रारम्भ क्यो हुआ इसका खुलासा पूज्य विनोबाजी ने कई बार किया है और हर कोई समझ सकता है कि जमीन का प्रश्न कुछ विशेष और निराला ही है। ईश्वर ने जमीन पैदा की मनुष्य को भी पैदा किया मनुष्य के जीवन का आधार जमीन ही है। पर उसने

आजीविका तब ही मिलती है जब शरीर-श्रम द्वारा उसमे कोई चीज पैदा की जाय। हवा और पानी की तरह जमीन पर भी किसी की व्यक्तिगत मालिकी रहना न्याय नही है। जमीन समाज की ही समझी जाय। ईश्वरी संकेत तो यह दीखता है कि मनुष्य जमीन पर मेहनत कर अपना जीवन चलावे और जो वैसा शरीर-श्रम करे उसे उसका पूरा फल भी मिले। पर मनुष्य की गलत करतूत के कारण कुछ ऐसा हो गया है कि जो जमीन पर श्रम नही करते उनके पास बडी तादाद मे जमीन इकट्ठी हो गई है। वे और जो जमीन जोतते है या जोतना चाहते है उनमे से बहुतसो के पास अपना पेट भरने के लिए भी मालिकी हक की जमीन नही है। फलस्वरूप उनको अपने श्रम के फल का एक बडा हिस्सा तथाकथित मालिक को दे देना पडता है, इसलिए भूमिहीनो को भूमि देने का प्रश्न पहले हाथ मे लेना उचित ही था और बहुत-से काम एक साथ हाथ मे लेने से कोई भी पूरा सधता नही। मनुष्य की शक्ति परिमित है, इसलिए एक काम हाथ मे लेकर उसी के पीछे पडने से उसके सफल होने की आशा रहती है। अब, जब कि भूदान-यज्ञ का काम काफी मात्रा मे चल निकला है और उसके सफल होने मे शका नही रही है, इतना ही नही बल्कि जिन्हे यज्ञ की जमीन दी जाती है उन्हे साधन-सामग्री मुहैया कर देने के लिए धन की आवश्यकता भी है, इसलिए अब स्वाभाविकतया संपत्तिदान की जरूरत हो जाती है। समय पाकर संपत्तिदान-यज्ञ का धर्म-प्रवर्त्तन-चक्र भी भूदान-यज्ञ की तरह जोरो से चल पडेगा। इसलिए विनोबा ने इस विषय मे जो कुछ प्रवचन दिये है उनका बारीकी से अध्ययन कर लेना जरूरी है। इस पुस्तिका मे उनके प्रवचनो मे से कुछ अश प्रारम्भ मे दिये गए है। मै जब कुछ भूदान-यज्ञ के प्रचार के लिए गया था तब भूदान-यज्ञ के साथ संपत्ति-दान-यज्ञ के बारे मे भी जो विचार मेरे मन मे उठे, वे इस पुस्तिका मे सक्षेप में लिखने का प्रयत्न कर रहा हू। विशेषकर मेरा निवेदन धनिक व्यक्तियो से है। प्राय जो परम्परा चलती है, उसे हम सही मान लिया करते है। उसकी जड मे जाने का प्रयत्न नही करते। अगर उसकी जड की

खोज करे तो शायद हमे अपने विवेक से ही मालूम हो जाय कि अबतक की मानी हुई मान्यता कितनी गलत थी। यहा मै कुछ विचार धनिको के सामने उनके चिन्तन के लिए रखता हू इस आशा से कि वे खुद सोचे कि सम्पत्ति कमाने और उसे अपने पास रखने और उसके उपयोग के बारे मे जो कुछ हमारे विचार बने है वे कहा तक सही है। इसी प्रकार के मनोमथन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्रगति करता है।

'दान' और सम्पत्ति का स्वामित्व

है उनके अनुसार ही धन कमाया। उसे भोगने का मेरा अधिकार है। यह मेरा अधिकार कानून ने मान रखा है, समाज भी मानता है। इस दशा मे उस सपत्ति पर मेरा अधिकार नही है, यह बात जचती नही। इसी प्रकार जिसको दान मिलेगा, उसने वह जमीन या सपत्ति कमाने के लिए परिश्रम नही किया, उससे उसका कोई सबध नही आया और कानून से उसे कोई अधिकार प्राप्त नही होता, इस दशा मे उसका हक है, यह बात कैसे मानी जाय ? केवल कल्पना से व्यावहारिक काम कैसे चल सकता है ? बिना कमाये किसी का किसी चीज पर हक कैसे हो सकता है, जबकि कानून उसका समर्थन नही करता ?

क़ानून और मान्यता की अपेक्षा न्याय सर्वोपरि है

हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करे। कानून और समाज की मान्यता का मूल्य आकना होगा। भूलना न चाहिए कि कानून और मान्यता के अलावा न्याय भी एक चीज है, जो सर्वोपरि है। उसका अधिकार कोई मेट नही सकता, क्योकि उसकी जड बाहर न होकर अन्तरग मे, आत्मा मे, मनुष्य की सदसद्विवेक बुद्धि मे है। इस सबध मे यह बात खयाल मे रखनी चाहिए कि किसी समय-विशेष मे समाज की या कानून की जो धारणा रहती है, वह ठीक ही रहती है, ऐसा नही है। कानून तो बहुधा प्रचलित परम्परा को लेकर चलता है। समाज की मान्यता भी बहुत करके रूढि को लेकर चलती है। जो बात कानून या समाज मानता है, वह सदा न्याय की ही होती है, ऐसा नही कह सकते। दीर्घ काल के इतिहास का परीक्षण करने से मालूम होगा कि एक जमाने मे जो मान्यताए सही मानी जाती थी, उनमे समय पाकर आमूल परिवर्तन हो गया। मान्यताओ के बदलने के साथ कानून भी बदल गया। जबतक मान्यता चलती रही, तबतक उसके सही होने के बारे मे किसी के मन मे शका नही थी, अगर थोडो के मन मे शका रही होगी तो उसका उस समय की विचारधारा पर कोई असर नही पडा। समय पाकर विवेक जागृत हुआ। मानव ने देखा कि जो बात आज मानी जाती है वह घोर अन्याय की है। अन्त मे परिवर्तन होकर रहा। मान्यता बदलने पर

राजसत्ता को कानून भी बदलना पड़ता है। अगर राजसत्ता वैसा न करे तो वह टिक नहीं सकती। विवेक जागृत होने पर अर्थात् गलती दीख पड़ने पर मान्यता कितनी ही पुरानी और व्यापक क्यों न हो उसे बदलना पड़ता ही है। स्पष्टीकरण के लिए एक-दो उदाहरण लें। गुलामी की प्रथा हजारों वर्षों तक और जगत्भर में चलती रही। एक बड़े नामी तत्ववेत्ता ने भी उसका समर्थन किया था। कुछ गुलाम लोग खुद भी मानते थे कि वह प्रथा उनके हित की है। फिर भी मनुष्य का विवेक जागृत हुआ। अपने जैसे ही हाड़-मांस के और सुख-दुःख की भावना रखनेवालों को एक दूसरा बलवान या धनवान मनुष्य गुलामी में जकड़ रखे क्या यह बात न्याय्य है, ऐसा प्रश्न सामने आया। इसको हल करने के लिए आपस में युद्ध भी हुए। अन्त में गुलामी की प्रथा मिट कर रही। इसी प्रकार राजाओं की सत्ता की बात है। जगत्भर में हजारों वर्षों तक व्यक्तियों का, बादशाहों का राज्य चला।

सम्पत्ति कैसे बनती है ?

यहा थोडा विचार कर ले कि सपत्ति बनती कैसे है ? यह खयाल गलत है कि रुपया, नोट या सोना-चादी सपत्ति है। ये तो सपत्ति के माप-तौल के साधन-मात्र है। सपत्ति वही चीजे है जो किसी-न-किसी रूप मे मनुष्य के उपयोग मे आ सकती है। उनमे से कुछ ऐसी है, जिनके बिना मनुष्य जिन्दा नही रह सकता और कुछ सुख-सुविधा और आराम के लिए होती है। अन्न, वस्त्र और मकान मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताए है, जिनके बिना उसकी गुजर-बसर नही हो सकती। इनके अलावा दूसरी अनेक चीजे है, जिनके बिना मनुष्य निभा सकता है। सपत्ति रूपी ये सब चीजे बनती कैसे है ? वे अपने आप तो बनती नही, न आकाश से टपकती है। कोई जन्म के साथ लाता भी नही, बल्कि जन्म के साथ तो कुछ आवश्यकताए ही उत्पन्न होती है, जिनको पूरी करने के लिए निरन्तर खटपट चलती रहती है। सृष्टि मे जो नानाविध द्रव्य है, उनको लेकर मनुष्य शरीर-श्रम करता है। तब यह काम की चीजे बनती है। अत सपत्ति के मुख्य साधन दो है सृष्टि के द्रव्य और मनुष्य का शरीर-श्रम। यत्र से कुछ चीजे बनती दीखती है, पर वे यत्र भी शरीर-श्रम से बनते है और उनको चलाने मे भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शरीर-श्रम की आवश्यकता होती है। केवल बौद्धिक श्रम से कोई उपयोग की चीज नही बन सकती, अर्थात् बिना शरीर-श्रम के सपत्ति का निर्माण नही हो सकता। पर आखिर सपत्ति की मालिकी मे शरीर-श्रम करनेवालो का स्थान क्या है ? जो प्रत्यक्ष शरीर-श्रम के काम करते है, उन्हे तो गरीबी में या कष्ट मे ही अपना जीवन बिताना पडता है और उन्ही के द्वारा उत्पादित सपत्ति दूसरे थोडे से हाथो मे ही इकट्ठी होती रहती है। श्रमजीवियो की बनाई हुई चीजे व्यापारियो या दूसरो के हाथो मे जाकर उनके लेन-देन मे कुछ लोग मालदार बन जाते है। वर्ष भर मेहनत कर किसान अन्न पैदा करता है। बहुत दफा तो उसकी खुद की आवश्यकताए भी पूरी नही होती, पर वही अनाज व्यापारियो के पास जाकर उनको धनवान बनाता है। जिन मजदूरो की मेहनत के बिना कारखाना चलना ही

असंभव है, उनको तो विशेष प्राप्ति होने की आशा नहीं। अगर मजदूर योग्यता प्राप्त कर लें तो धनिकों और बुद्धिमानों के बिना भी कारखाना चल सकता है। अकेले बुद्धिमान और धनिक स्वयं उन्हें कदापि नहीं चला सकते फिर भी उन धनिकों और व्यवस्थापकों को मजदूरों की अपेक्षा कितना ही गुना अधिक पैसा मिलता है। संपत्ति बनाते हैं मजदूर और धन इकट्ठा होता है उनके पास जो मजदूरी नहीं करते, उल्टे वे मजदूरी और मजदूर को नफरत की दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार संपत्ति चंद लोगों के पास इकट्ठी होती है। इन लोगों की संख्या सौ में शायद ५-१० ही हो, जबकि शरीर-श्रम करनेवालों की संख्या तो ९०-९५ है। इन धनिकों की संपत्ति का मूल देखा जाए तो वह श्रमिक के श्रम में ही मिलेगा। धनिकों के पास जो पैसा है वह श्रमिक या गरीब की जेब में से ही निकला हुआ पाया जायगा। गरीबों को उनके श्रम का पूरा फल नहीं मिलता या गरीब के अधिक गरीब बनने पर धनिकों की संपत्ति बढ़ती है। उस संपत्ति पर उनका मालिकी हक माना जाता है। कानून या सामाजिक मान्यता कुछ भी हो पर क्या यह स्थिति न्यायोचित है?

श्रमजीवी और बुद्धिजीवी में श्रेष्ठ कौन?

धधो के मूल्यो मे बहुत फर्क है। यह भी बहस की जाती है कि जैसे कुछ लोगो को शरीर-श्रम करना पडता है, वैसे दूसरो को बौद्धिक श्रम करना पडता है, बौद्धिक श्रम का महत्व शरीर-श्रम के जितना ही या उससे अधिक है। पर हम गहराई से सोचेगे तो पता चलेगा कि समाज-धारणा की दृष्टि से स्थिति कुछ और ही है। कल्पना करे कि अगर श्रमजीवी लोग अपने-अपने धधे एकाएक छोड देने का विचार कर ले तो परिणाम क्या होगा ? मनुष्य-जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओ की चीजें भी नही बन सकेंगी, समाज जिदा नही रह सकेगा। दूसरी ओर अगर बुद्धिजीवी लोग अपने धधे छोड दे तो समाज मे कुछ अव्यवस्था जरूर होगी, पर समाज मरेगा नही। बुद्धिजीवियो का जीवन भी श्रम-जीवियो के धधो पर अवलबित है। इससे कल्पना की जा सकती है कि समाज के अस्तित्व के लिए श्रमजीवियो का कितना महत्व है। ऐसा होते हुए भी दैवदुर्विलास यह है कि श्रमजीवियो की मजदूरी या आमदनी कम है, समाज मे उनकी प्रतिष्ठा नही और उनको अपना जीवन प्राय कष्ट मे ही बिताना पडता है। बालको की शिक्षा, बीमारी मे दवा-पानी, मनोरजन आदि बाते तो उनके लिए दूर की है। इसके विपरीत बुद्धिजीवियो का वेतन या मुनाफा ज्यादा है और समाज से उन्हे बढी-चढी प्रतिष्ठा तथा ऐश-आराम भी उपलब्ध है। इस व्यवस्था मे आज समाज को कोई दोष नही दीखता। कानून भी इस स्थिति का समर्थन करता है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या यह न्यायोचित है ?

क्या बुद्धिजीवी को अधिक धन कमाने का हक है ?

धन-सचय के और अधिक धन कमाने के पक्ष मे भी कुछ बाते कही जाती है। उनका भी विचार करना चाहिए। देश और विदेश के उच्चतम विद्यालयों मे लबी अवधि तक शिक्षा पाकर कोई विशेषज्ञ, जैसे कि डाक्टर, अपना धधा करने लगता है, वह सफलता से चलता है, सफलता से चलाने लायक योग्यता भी उसमे है। वह मानता है और समाज भी मानता है कि उसे अपनी कला द्वारा अधिक-से-अधिक धन कमाने का अधिकार है।

वह अपनी मनमानी फीस मुकर्रिर करता है। अगर कोई उसे कम फीस लेने को कहे तो वह जतलाता है कि उसने वर्षो तक कठोर परिश्रम कर और खर्च सहन कर योग्यता प्राप्त की है, तो उसे उतने ही परिमाण मे मुआवजा मिलना चाहिए। बीमार गरीब हो तो कभी-कभी उसे थोडी राहत भले ही मिल जाए, परतु राहत का वह हकदार नही माना जाता। इसी प्रकार जो भाई कानून, इजीनियरिग आदि विद्याओ मे निष्णात होते है, उनका भी यही हाल है। नामी लेखक, कवि, चित्रकार आदि कलाविदो की भी यही कथा है। ऐसा ही हक व्यापारी, उद्योगपति, व्यवस्थापक आदि जताते है।

व्यापारी और उद्योगपतियो के लिए अर्थ-शास्त्र ने यह नियम बताया है कि खरीदी सस्ती-से-सस्ती हो और बिक्री महगी-से-महगी। मुनाफे की कोई मर्यादा नही। जो कारखाना मजदूरो के शरीर-श्रम के बिना चल ही नही सकता, उसके मजदूर को सौ-पचास रुपये मासिक से अधिक भले ही न मिले, पर व्यवस्थापको और पूजी लगानेवालो को हजारो-लाखो का मिलना आक्षेपार्ह नही माना जाता। प्रचलित विचारधारा यह है कि बुद्धि-मानो को अमर्यादित धन कमाने का और अपने पास सपत्ति इकट्ठी करने का हक है, क्योकि उन्होने उतना धन कमाने की शक्ति और कला प्रयत्न द्वारा प्राप्त कर ली है। जिन्हे वैसी शक्ति या कला प्राप्त नही है, उन्हे अधिक नही मिलता या भूखो भी रहना पडता है तो दूसरे को दोष क्यो दिया जाय ? पर इस बात पर हमारा ध्यान नही जाता कि उन गरीबो मे भी बुद्धि है और उन्हे मौका मिलता तो वे भी बुद्धिजीवियो जैसी ही शक्ति प्राप्त कर सकते थे। इस बात को हम छोडे। यहा तो इसका परीक्षण करना है कि इन शक्ति-शालियो का असीम धन कमाने का अधिकार माना जाय या नही ? कल्पना कीजिये कि किसी बालक को हम उसके बिल्कुल छुटपन मे ही कही एकात मे छोड दे, उसका जनता से सपर्क न आने दे, उसके रक्षण और पोषण की व्यवस्था कर दे और उसे वैसे ही बढने दे, तो परिणाम क्या होगा ? वह बोली भी नही सीख सकेगा, अपने दिल की बात दूसरे को नही समझा सकेगा और दूसरे की बात खुद नही समझ सकेगा, व्यवहार बिल्कुल नही चला

सकेगा। मनुष्य-समाज में रहने से अर्थात् समाज की कृपा से ही मनुष्य व्यवहार चलाने लायक बनता है। बालक प्राथमिक शाला से लेकर देश-विदेश के ऊंचे-से-ऊंचे दर्जे के महाविद्यालयों में सीख कर जो योग्यता प्राप्त करता है, वे शिक्षालय उसके निज के नहीं होते हैं। वे या तो सरकार द्वारा चलाये जाते हैं, जिनका खर्च आम जनता से टैक्स के रूप में वसूल किये हुए पैसे से चलता है या दानी लोगों की कृपा से। जो कुछ पढ़ने की फीस दी जाती है, वह तो खर्च के हिसाब से नगण्य है। इस सारी शिक्षा में जो कुछ ज्ञान मिलता है वह भी हजारों वर्षों तक अनेक तपस्वियों ने मेहनत करके जो कण-कण संग्रहीत कर रक्खा है, उसी के बल पर मिलता है। व्यापारी और उद्योगपति अपनी कला विद्यालयों से और अपने साथियों से प्राप्त करता है। व्यक्ति खुद अपनी बुद्धि का कुछ उपयोग तथा अध्ययन जरूर करता है, पर योग्यता प्राप्त करने में उसका खुद का हिस्सा इतना कम है कि अगर ऊपर लिखे अनुसार समाज की मदद न मिले तो वह कुछ विशेष करने लायक बनेगा ही नहीं। इस दशा में, जबकि अपनी योग्यता प्राप्त करने में हमारा खुद का हिस्सा अल्पतम है और समाज की कृपा का अंश अत्यधिक है, तो हमें जो योग्यता प्राप्त हुई है, उसका उपयोग समाज को अधिक-से-अधिक देना और उसके बदले में समाज से कम-से-कम लेना यही न्याय्य तथा हमारा कर्तव्य माना जा सकता है, पर चल रहा है कुछ उलटा ही। व्यक्ति, समाज को कम-से कम देने की इच्छा रखता है, समाज से अधिक से-अधिक लेने का प्रयत्न करता है, कुछ भी न देना पड़े तो उसे रंज नहीं होता। आखिर व्यक्ति की यह धन कमाने की शक्ति भी प्रचलित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर ही अवलंबित है, न कि केवल उसकी इच्छा पर। अगर आर्थिक समानता का जमाना आए, जो कि कभी न कभी आने ही वाला है तो हम आज जिस धन कमाने की शक्ति का अभिमान रखते हैं वह पैसे के रूप में क्या फल दे सकेगी?

क्या बुद्धि का उपयोग धन कमाने के लिए करना उचित है?

यह एक गंभीर और बुनियादी सवाल है कि क्या बुद्धि का उपयोग

धन कमाने के लिए करना उचित है ? यह तो साफ दीखता है कि आर्थिक विपमता का एक मुख्य कारण बुद्धि का ऐसा उपयोग ही है। शोपण भी प्राय उसीसे होता है। समाज मे जो आर्थिक और सामाजिक विपमताए चल रही है और शोषण होकर अशाति होती है उसे मिटाने के लिए जगत् में अनेक योजनाए अबतक सामने आई है और इनमे से कुछ पर अमल भी हो रहा है। पर अहिंसाके द्वारा यह जटिल प्रश्न हल करना हो तो गाधी-जी ने यह सूत्र बताया कि "पेट भरने के लिए हाथ, पैर और बुद्धि का उपयोग ज्ञान प्राप्त करना और ज्ञान देना हो। अभी समाज मे यह चल रहा है कि बहुत से लोग अपनी आजीविका शरीर-श्रम से चलाते है। और थोडे बौद्धिक श्रम से जिनके पास सपत्ति अधिक है वे आराम मे रहते है। अनेको से श्रम करने की आदत भी नही है। इस दशा मे उस सूत्र का अमल होना दूर की बात है। फिर भी उसके पीछे जो तथ्य है, वह हमे स्वीकार करना चाहिए, भले ही हमारी दुर्बलता के कारण हम उसे ठीक तरह से न निभा सके क्योकि आजीविका की साधन-सामग्री किसी-न-किसी के श्रम बिना बन ही नही सकती। इसलिए बिना शरीर-श्रम किये उस सामग्री का उपयोग करने का न्यायोचित अधिकार हमे नही मिलता। अगर पैसे के बल पर हम सामग्री खरीदते है तो उस पैसे की जड भी अत मे श्रम ही है। इसके अलावा हम यह भी देख रहे है कि जब बुद्धि का उपयोग समाजहित को छोडकर अपने स्वार्थ के लिए किया जाता है, चाहे वह स्वार्थ व्यक्ति का हो, जाति का हो समूह का हो या देश का हो, उससे दूसरो को हानि ही पहुचती है। ऐटम बम भी ऐसे ही कुछ बुद्धि के उपयोग से बना है।

लोगो द्वारा चलाये विना चलेंगे भी नही । जबतक आज की परिस्थिति चलती रहेगी और उसमे आमूल परिवर्तन नही होगा, तवतक इन दलीलो को महत्व देना होगा । परतु हम यहा विचार बुनियादी सिद्धान्त का कर रहे है । व्यावहारिक दृष्टि मे उसमे ढिलाई भी सहन करनी पडेगी । फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि बुद्धिजीवियो और श्रम-जीवियो की आमदनी मे उतना फर्क क्यो हो जितना अभी है ? अगर यह कहा जाय कि बुद्धिजीवियो की आदते, रहन-महन ऐसी है कि अधिक आमदनी के विना उनका निभ ही नही सकता तो ऐसी आदते क्यो वनी ? उन्हे अव भी सुधारना सभव है या नही ? सुधारने का हम जी-जान से प्रयत्न क्यो न करे ? जबतक यह कमजोरी है, तवतक उन्हे कुछ अधिक सुविधा भले ही मिले जैसे कि परिवार में भी कुछ कमजोरो को दी जाती है, तथापि आज की विषमता का समर्थन कैसे हो सकता है ?

धनिक ट्रस्टी बनें

कुछ भाई यह भी कहते है कि हम अपनी सपत्ति का बहुत थोडा-सा अश ही निजी काम मे लगाते है, अधिकतर अश का उपयोग बडे-बडे उद्योग-धधे, जो पूजी के वल पर ही चल सकते है और जिनसे समाज के काम की चीजे वनती है उनके चलाने मे ही किया जाता है, हमारे प्रयत्न के फलस्वरूप कई लोगो को काम मिलता है और उनकी आजीविका चलती है । एक प्रकार मे हम यह समाज की सेवा ही करते है, अगर व्यक्तियो के पास विपुल सपत्ति इकट्ठी न हो तो यह कैसे हो सकेगा ? समाज के बहुत से व्यवहार रुक जायगे । गरीबो की आजीविका चलाने की जो वात कही जाती है उसका उत्तर तो इतना ही काफी है कि जब उन गरीबो के विना श्रीमानो के कार-खाने या कामकाज चल ही नही सकते, तो यही मानना ठीक लगता है कि गरीब श्रमिक ही उनपर उपकार करते है जिनकी सहायता से उन्हे मुनाफा होता है । अन्य कथन मे तथ्य तब होता जबकि राजसत्ता या सहकार-समि-तियो द्वारा ऐसे काम होना सभव नही होते । उसकी तफसील मे यहा न जावे । यहा तो धनिको की दृष्टि से ही विचार करना है । जो धनिक भाई यह

कहते है कि उनके अधिकतर प्रयास का फल समाज की सुविधा है, उनके लिए सीधा प्रश्न यह है कि यह आपका प्रयास स्वार्थ के लिए है या समाज हित के लिए ? सही उत्तर तो यही होना चाहिए कि हेतु तो स्वार्थ का ही है, फिर दूसरो को कुछ लाभ मिल जाता है, तो उन दूसरो के भाग्य की वात। अगर यह उत्तर आवे कि हमारा हेतु देश-हित है तो उनका स्वागत ही है। फिर हमारा कहना इतना ही रहेगा कि वे अपने सारे काम मे असलियत लावें। महात्माजी भी तो यही कहते थे न कि धनिक लोग अपनी ज्यादा सपत्ति का उपयोग समाज के हित मे ट्रस्टी के तौर पर करे ? सपत्तिदान-यज्ञ और भूदान-यज्ञ का भी आखिर आशय क्या है ? अपने पास आवश्यकता से जो कुछ अधिक है उनपर अपना अधिकार न समझ कर उसका उपयोग दूसरो के लिए करे।

दान में सदोषता

यह भी वहस चलती है कि धनिको के दान से सामाजिक उपयोग के अनेक वडे-वडे कार्य होते है जैसेकि अस्पताल, विद्यालय आदि। अगर व्यक्तियो के पास सपत्ति इकट्ठी न हो तो समाज को यह लाभ कैसे मिलेगे ? वास्तव मे ऐसे काम करने के लिए राजसत्ता पडी है। जव सपत्ति थोडे से हाथो मे वधी न रहकर समाज मे फैली रहेगी तो सहकार पद्धति से वडे पैमाने पर ऐसे काम आसानी से चलने लगेगे और उनका लाभ लेनेवाले, याचक या दीन की तरह नही, पर सम्मानपूर्वक लाभ उठावेंगे। फिर भी धनिको की दृष्टि से भी विचार किया जाय तो करोडो की सपत्ति इकट्ठी कर उनमें से कुछ लाख दान मे खर्च कर देने मात्र से दूसरो के हिस्से की चीज अपने पास वटोरने के दोष से वे मुक्त नही हो सकते। जा या वेजा रीति से वहुत-सा धन कमाकर उसका कुछ थोडा-सा हिस्सा दान कर देना पूरा प्रायश्चित्त नही है। और जव हम चारो ओर धनिको की दान की रीति देखते है तो उसमे शुद्ध दान कहा तक है, इसका पता चलाना कठिन होता है। जहा देखो वहा प्राय ख्याति या स्वार्थ की दृष्टि ही अधिकतर देखने मे आती है। कभी-कभी दान का सौदा व्यापार के सौदे से भी अधिक कठोर

होता है। एक लाख का दान करके दस लाख की कीर्ति कमाने की इच्छा रहती है। शुद्ध सात्विक दान तो विरले ही होता है।

प्रारब्धवाद

अन्य देशो मे और अन्य धर्मों मे जो नही है, वह एक विशेष वात भारत मे चली आ रही है। वह है प्रारब्धवाद। यह माना जाता है कि पूर्व जन्मो मे जो पुण्य किया है, उसके फलस्वरूप इस जन्म मे सपत्ति और आराम मिलता है। जिन्होने पाप किया है उनको गरीवी और कष्ट भोगना पडता है। इस दशा मे कोई किसी को दोष क्यो दे ? ऐसी वहस तो चलती रहती है, पर उसमे क्या हमारी पूरी श्रद्धा है ? सच्ची श्रद्धा हो तो खेद का कारण नही दीखता, क्योकि पूर्व जन्म का इस जन्म मे सवध आता है तो इस जन्म का सम्वन्ध आगामी जन्म से निस्सदेह आना ही चाहिए। इस जन्म मे भाग्य से जो कुछ मिला तो मिला और न मिला तो न मिला, पर आगामी जन्म का प्रवन्ध करना तो हमारे हाथ मे है। आगामी जन्म मे सुख-आराम मिलता हो तो इस जन्म मे हमे पुण्य-ही-पुण्य करना चाहिए। अगर यह वात व्यापक रूप से वन जाय तो फिर और अधिक क्या चाहिए ? समाज मे सुख-शाति दृढ मूल होगी। परतु भाग्य के भरोसे कोई बैठा दीखता नही। हरएक जी-जान से खपकर सासारिक झझटे वढा रहा है। वहुतेरे सपत्ति जोडने मे पाप-पुण्य का ख्याल रखना भूल गए है। व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार वढने की शिकायत रात-दिन हो रही है, वह किस वात की द्योतक है ? यह मानना भी गलत होगा कि यह भ्रष्टाचार या पाप गरीव ही करते है, धनिक नही करते। वास्तव मे धनिको का पाप कम नही है। जव धनिक लोग भी धन कमाने मे पाप करने से डरते नही, तव हम उनका यह प्रारब्धवाद सचमुच मे दिल मे है यह कैसे माने ? अगर यह प्रारब्धवाद चलाना ही है तो गरीव लोग भी यह कह सकते है कि अव हमारे भी भाग्य ने पलटा खाया है और हमारा प्रारब्ध हमे सुझा रहा है कि श्रीमानो की सपत्ति लूटकर अपना भाग्य सुधारने मे वाधा नही है। इस प्रकार प्रारब्ध-वाद दुधारी तलवार वन सकती है, और चूकि धनिको की अपेक्षा गरीवो

की सख्या बहुत अधिक है, इसलिए धनिको के लिए वह खतरनाक है। गरीबो को उनके भाग्य के भरोसे छोडना भयानक है, लबे समय तक उनकी अवहेलना हुई है। अब लक्ष्मीनारायण की जगह दरिद्रनारायण की उपासना होनी चाहिए ।

स्वार्थ का स्थान ?

अर्थशास्त्री कहते है कि व्यक्ति के स्वार्थ के लिए अवसर रखे बिना देश मे उत्पादन और सपत्ति नही बढ सकेगी, किफायत भी नही होगी। माना कि मनुष्य मे स्वार्थ-वृत्ति स्वाभाविक है, फिर भी अगर धनिक लोग खुद स्वार्थ की बहस करते है तो उनके लिए इतना ही उत्तर काफी है कि अगर समाज के और व्यक्ति के स्वार्थ मे विरोध हो तो व्यक्ति के स्वार्थ को महत्व नही दिया जा सकता। अर्थशास्त्रियो की बहस मे विपुल पूजी का सग्रह अनिवार्य मान लिया गया है, पर सर्वोदय समाज मे पूजी की अपेक्षा मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है। विकेन्द्रित उत्पादन और क्षेत्र-स्वावलबन मे मनुष्य-बल और शरीर-श्रम का ही महत्त्व है। थोडी-सी पूजी काफी है। अगर कुछ चीजो के लिए बडे कारखाने चलाने की जरूरत हो, तो वे सरकार की ओर से चल सकते है। देश मे आज सरकार की ओर से उद्योग-धधे चलाने लायक स्थिति न दिखे, तो भी वैसी स्थिति लाये बिना देश का कल्याण नही है। अबतक का अनुभव बताता है कि पूजी गरीबी या बेकारी की समस्या हल नही कर सकी है। नैतिक दृष्टि से भी स्वार्थ-वृत्ति का पोषण करना योग्य नही है। बहुत करके स्वार्थ का अर्थ होता है परार्थ की हानि। उसी मे से स्पर्धा बढती है, जिसके फलस्वरूप कुछ थोडे-से ही लाभ उठा सकते है, बहुसख्यको को तो हानि ही पहुचती है। मानवोचित सहयोग की जगह जगल का कानून या मत्स्य-न्याय चलता है। आखिर यह देखना है कि समाज का कल्याण किस वृत्ति से होगा। अगर समाज मे स्वार्थ-वृत्ति के लोग अधिक हो तो क्या कल्याण की आशा रखी जा सकती है ? समाज ऊचा तो परोपकार-वृत्ति के बल पर ही उठ सकता है। सपत्ति बढाने के लिए स्वार्थ का आधार दोषास्पद है।

दाता को दीन बनना पडे तो ?

अर्थ-नीति के बारे मे कुछ भाई अमेरिका का उदाहरण पेश करते है। भारत को कल्याणकारी (वेल्फेयर) राज बनाने की बात चल रही है। कल्याण-राज का अर्थ यह समझा जाता है कि सब तरह के दुर्बलो को राज्य-सत्ता द्वारा मदद मिले अर्थात् बडे पैमाने पर कर वसूल करके उसमे गरीबो को सहारा दिया जाय। भारत जैसे दरिद्र देश मे यह बात बन पडना क्या सभव है ? इसके अलावा स्वास्थ्य और शिक्षा के बारे मे राज की प्रणाली कल्याणकारी हो, यह बात तो कुछ समझ मे आ सकती है, परन्तु आर्थिक बातो मे अर्थात् पेट भरने के विषय मे मनुष्य राज के भरोसे रहे, यह बात कहा तक ठीक है ? प्राथमिक आवश्यकताओ के बारे मे मनुष्य अपने पैर पर खडे रहने के लायक हुए बिना स्वतत्र नही रह सकता, किसी-न-किसी प्रकार उसे पराधीन रहना होगा। अमेरिका जैसे देश का उदाहरण हमारे काम नही आ सकता। वहा सारे जगत से सपत्ति बटोरी जाकर इकट्ठी हुई है, गरीबो को भी काफी आराम मिल जाता है। वह मिसाल आज की दशा मे या जहा तक भविष्य देख सकते है वहा तक हमारे किस काम की ? हमारे यहा हर साल कही-न-कही करोडो लोगो को अकाल की-सी दशा मे से गुजरना पडता है। अनाज के भडार भरे रहते हुए भी कुछ प्रातो मे बडी तादाद मे लोगो को भुखमरी सहन करनी पडती है। गरीबो के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नही है। काम करने का अवसर नही है, इसलिए पैसा नही मिलता। धनिको के केन्द्रित उद्योगो के कारण बेकारो को ग्रामोद्योग मुहय्या नही किये जा सकते। यह सही है कि अकाल की-सी दशा मे कल्याण राज की तरह सरकार और दानी लोग उनको राहत पहुचाने की कुछ व्यवस्था करते है। पर क्या वह पर्याप्त है ? उस दृश्य का चित्र आपके सामने लाइये कि कुछ लोग भूखो मे भाजी का वितरण कर रहे है और कुछ भाजी ले रहे है, कुछ दयालु कपडा बाट रहे है और कुछ अधनगे कपडा पा रहे है। ऐसे फोटो अखबारो मे छपते भी है। पर क्या ये दृश्य मनुष्य के हृदय मे व्यथा पहुचानेवाले नही है ? एक व्यक्ति चीज बाटने की दशा मे

रहे और दूसरा लेने की विपन्नावस्था मे । इसका ठीक मर्म तो तब ही समझ मे आयगा जब बाटनेवालो को ऐसी चीजे मागने के लिए दीनता से अपना हाथ पसारना पडे। स्वराज्य मिल जाने के बाद भी यह कबतक चलता रहेगा ? हरएक को यथोचित खाना, कपडा और मकान मिल जाने के बाद अगर कुछ बचे तो धनिक लोग भले ही उसे अपने पास रखे। उसमे भी आपत्ति तो है ही। जबतक गरीबो की सभाल ठीक-ठीक नही होती है तबतक धनिको को बेचैन रहना चाहिए। महलो मे रहनेवालो को सोचना चाहिए कि उनके महलो के सामने ही फुट-पाथ पर बेघर-बार वालो को रात-दिन अपना जीवन क्यो बिताना पडता है, मोटर मे बैठकर जानेवालो को सोचना चाहिए कि उसी सडक पर से साठ-सत्तर बरस के स्त्री-पुरुषो को सिर पर लकडी की मोली या घास का गट्ठर लेकर क्यो चलना पडता है ? ऐसी बातो का विचार करते रहने से अपने पास अधिक सपत्ति रखने का अधिकार है या नही, इस प्रश्न पर काफी रोशनी पडेगी।

देश को परिवार समझें

समझिये कि एक परिवार मे पाच व्यक्ति है, उनको पेट भरने के लिए चार सेर अनाज की जरूरत है। अगर पूरा चार सेर अन्न मिल जाता है तो सब पेट भर खायेगे। अगर तीन ही सेर मिले तो क्या करेगे ? क्या एक-दो को भूखा रखकर बाकी सब पेट भर खा लेगे ? परिवार में ऐसा नही होता। अगर जरूरत से कम मिलता है तो सब ही थोडा-थोडा कम लेकर निभा लेते है। बालक और कमजोरो का ख्याल पहले किया जाता है। सामाजिक दृष्टि से यही न्याय समाज के सब व्यक्तियो पर लागू होना चाहिए। राज्यकर्ता और समाज की दृष्टि से सारा देश एक परिवार है। अगर देश मे सपत्ति पर्याप्त है तो सब पूरी भोगे। सम्पत्ति कम रहने की दशा मे हरेक को कुछ-न-कुछ कष्ट सहने को त्याग करने को तैयार रहना चाहिए। धर्म भी यही बात सिखाता है। हमारी जबान पर तत्त्वज्ञान के विचार समय-बेसमय आते रहते है। अपने-पराये का भेद गलत है सबके आत्मा समान है ईश्वर ने सबको पैदा किया हम सब भाई-बहन बराबर है इत्यादि।

इन सही विचारो मे आचरण का सदा मेल बैठाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

शरीरश्रम से नफरत

शरीरश्रम के बारे मे हमारी सामाजिक विचारधारा मे एक बडा भारी दोष है जो शायद दूसरे देशो मे नही मिलेगा। हम शरीरश्रम करना नही चाहते। इतना ही नही, वरन् उसे नफरत की नजर से देखते है और जिनको शरीरश्रम करना पडता है, उन्हे समाज मे हीन दर्जे का मानते है। श्रीमान या गरीब कोई श्रम करना नही चाहता। धनिक अपने पैसे के बल से नौकरो द्वारा अपना काम चला लेता है। गरीब भूख की लाचारी से श्रम करता है। हमे यह वृत्ति बदलनी चाहिए। शरीरश्रम की केवल प्रतिष्ठा स्थापित कर सतोष नही मानना है, उसके लिए हमारे दिल मे प्रीति होनी चाहिए। धनिक और मध्यम वर्ग के लोगो को दूसरो के लिए शरीरश्रम का उदाहरण पेश करना चाहिए ।

आर्थिक विषमता हटे बिना चारा नहीं

पहले बताया जा चुका है कि शरीरश्रम के बिना सपत्ति नही बनती, अर्थात् धनिको के पास जो सपत्ति इकट्ठी होती है वह गरीबो के शरीर-श्रम का ही फल है। इसके अलावा गरीबो के सहयोग के बिना धनिक लोग सपत्ति कमा नही सकते, अपने पास रख नही सकते और उसका उपयोग या उपभोग भी नही कर सकते। न्याय की दृष्टि से इस निर्णय पर पहुचना पडता है कि आवश्यकता से अधिक सपत्ति रखने का और कमाने का किसी व्यक्ति को अधिकार नही है। यह प्रश्न उठ सकता है कि आवश्यकता कितनी मानी जाय ? मनुष्य मनुष्य के नाते इसमे बहुत फर्क नही पडना चाहिए। बीमार और स्वस्थ, बालक और युवक और अपनी-अपनी विभिन्न आदतो के कारण भी कुछ फर्क जरूर पड सकता है और उसे मानना भी चाहिए। अगर न्याय की दृष्टि से देखे तो आवश्यकताओ के बारे मे निर्णय करना मुश्किल नही है। परन्तु समस्या तब जटिल होती है, जब अपना स्वार्थ, सासारिक मोह, धन मे आसक्ति, आदि दोष खेल खेलने लगते है। आवश्यकता

के प्रश्न पर यहा अधिक गहरा जाने की जरूरत नही है। हमारे लिए इतना काफी है कि अभी की सामाजिक और आर्थिक घोर विषमता न्यायोचित नही है। उसे बदलना चाहिए। यह जमाने की माग टाली नही जा सकेगी। इस प्रकार की विषमता हर जगह चलती रही है, हजारो वर्षों तक चली। साधु-सतो ने, सब धर्मवालो ने सदा आदेश दिया है कि गरीबो का खयाल करो, अपने पास जो ज्यादा है उसे दूसरो को दो। दान, धर्म, खैरात की प्रणाली चल रही है तथापि गरीबी का प्रश्न हल नही हुआ। ऐसे उपायो से हल होता दीखता भी नही। अब कुछ समय से जगत् के सामने दया की जगह समता का विचार आया है। पूरी सोलह आना समता आना सभव न हो तथापि अभी की विषमता का सहन होना सभव नही दीखता। यह विषमता कैसे दूर हो? कही-कही लोगो ने हिंसा का मार्ग ग्रहण किया। उसमे से अनेक बुराइया निकली जो अबतक दूर नही हो सकी है। विषमता दूर करने मे कानून भी कुछ मदद देता है। भारत मे कुछ अश मे कानून का चक्र चालू भी हो गया है। परतु कानून से मानवोचित गुणो का, सद्भावना का विकास नही हो सकता। महात्माजी ने हमे जो अहिंसा की विचार-धारा दी है, जिसका हमने कुछ अनुभव भी कर लिया है तथा भारत की परपरा का खयाल करते हुए यह सभव दीखता है कि विषमता का प्रश्न बहुत कुछ हद तक अहिंसा के मार्ग से हल हो सकना सभव है। इसमें धनिको से पूरा सहयोग मिलना चाहिए। उनके दिल मे परिवर्तन होना चाहिए। इसका असर कानून बनाने की शक्ति पर भी पडेगा और हमारे सब कार्य-क्षेत्रो मे, समाज मे सद्गुणो का विकास होगा। जैसे राजनैतिक स्वराज्य का प्रश्न काफी हद तक अहिंसा के मार्ग से सुलझा, वैसे ही आर्थिक और सामाजिक समता का प्रश्न भी भारत मे अहिंसा के मार्ग से सुलझेगा, ऐसी हम श्रद्धा रखे। विनोबाजी द्वारा चलाये हुए भूदान-यज्ञ और सपत्ति-दान-यज्ञ मे हम सब छोटे-बडे, अमीर-गरीब, तहेदिल से सहयोग दें।

गरीबो से भी दान क्यो?

भूदान-यज्ञ मे बडे जमीदारो से विशेष अधिक मात्रा मे जमीन मिलने

की आशा रखी गई है, साथ ही थोडी जमीनवालो से भी कुछ-न-कुछ जमीन मागी जा रही है। अनुभव यह रहा कि तुलनात्मक दृष्टि से थोडी जमीन-वालो की उदारता विशेष रूप मे प्रकट हुई। भूदान की तरह सपत्ति-दान मे छोटे-बडे सबसे अपेक्षा रखी गई है कि अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हरएक अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा दे। यह शका की जाती है कि जिन-के पास पाच-दस एकड से ज्यादा जमीन नही है उनसे जमीन क्यो ली जा रही है ? वैसे ही जिनकी आमदनी इतनी कम है कि उनको गरीबी मे भी गुजर करना मुश्किल है तथा यह चिंता रखनी पडती है कि किसी प्रकार थोडी-सी भी अधिक आमदनी हो, उनसे भी सपत्ति-दान मे कुछ-न-कुछ मिलने की अपेक्षा क्यो रक्खी जा रही है ? दान देने मे किसी पर जबरदस्ती नही है। देना स्वेच्छा पर अवलबित है। देनेवाला अगर प्रसन्नता से देता है तो दान क्यो न लिया जाय ? ऐसा कुछ दीखता है कि गरीबी का अनुभव होने के कारण गरीब लोग इन यज्ञो मे विशेष उत्साह से शामिल होते हैं। यज्ञ मे हविर्भाग देने के लिए गरीब, अमीर सबको निमत्रण है। ऐसे विश्व-यज्ञो मे सबका योग आवश्यक है। बहुत दफा जब गरीब लोग दान देने का सिलसिला शुरू कर देते है तो फिर धनिक भी उसमें शामिल हो जाते हैं। वास्तव मे इस विषय मे तो धनिको को नेतृत्व करना चाहिए। पर उनको जो जमीन या सपत्ति देनी पडे, उसकी तादाद बडी होने के कारण और अधिक चीज मे आसक्ति भी अधिक होती है इसलिए धनिको को अपने दिल को समझाकर निर्णय करने मे कुछ देर लगती है। इसलिए गरीब हो या अमीर, जिस किसी के दिल मे उत्साह हो, उसे दान करने को तैयार रहना चाहिए। इन यज्ञो में हविर्भाग देने को सबको निमत्रण देने का यह भी एक कारण है कि अभी समाज मे स्वार्थ-वृत्ति बढकर जो भ्रष्टाचार चल रहा है उसपर कुछ पाबदी लगे। जो इन यज्ञो मे हिस्सा लेगा वह अपने दिल में शुद्धता-अशुद्धता का विवेक जरूर रखेगा। स्वार्थ-वृत्ति गरीब-अमीर सबमें है। सबका मानस सुधरने की जरूरत है। स्वार्थ-वृत्ति घटे बिना समाज का उत्थान नही होगा। दान मे सब लोग हिस्सा लेंगे तो राष्ट्रीय

जीवन शुद्ध होगा। छोटे-बडे सबका एक-दूसरे पर असर पडता है। अवगुणो की तरह गुण भी मनुष्य दूसरो को देखकर सीखता है। सब आर्थिक समता तथा शरीर-श्रम और स्वावलंबन का महत्व समझें, हर व्यक्ति दूसरो के सुख-दुःख की चिंता रक्खे, एकता की भावना बढे, सबका स्वार्थ घटे इत्यादि गुणो के विकास के लिए आवश्यक है कि छोटे-बडे सब इन यज्ञो मे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग दे।

धन की लालसा कम हो

वास्तव मे गरीबो को तो मदद पहुचनी ही चाहिए। ये यज्ञ उनको मदद पहुचाने के लिए ही है। फिर भी उनसे भी, किंचित् ही क्यो न हो, कुछ-न-कुछ मागा जा रहा है, क्योकि उनमे भी धन की लालसा कम होनी आवश्यक है। आज तो गरीबो को भी हमारी आर्थिक व्यवस्था का मूल दोष मालूम नही है। अगर उन्हे धनिक होने का मौका मिले तो वे उसका लाभ उठाना चाहेंगे। कोई धनिक हो या गरीब हो, या मध्यम वर्ग का सबको धनिक बनने की लालसा सता रही है। जो धनिक नही है और धनिको को दोष देते रहते है वे भी धनिक बनने की लालसा तो रखते ही है। चारो ओर धन के लिए दौड-धूप मची हुई है। कारखानो मे मालिक और मजदूरो के बीच सदा झगडे होते रहते है। गरीबो और मजदूरो की दशा सुधारना तथा उनकी आय बढाना आवश्यक तो है ही, परन्तु उनका ध्यान अपना सुधार करने की अपेक्षा अधिक पैसा कमाने की ओर ही अधिक है। देश में खुद की अपेक्षा दूसरे अधिक गरीब लोग भी है और उन कारखानो के कारण ही दूसरो मे बेकारी बढ रही है, इस ओर उनका ध्यान नही है। मालिको की तरह मजदूर भी कारखानो मे अधिकाधिक मुनाफे का स्वागत करते है, क्योकि उस मुनाफे मे से उनको भी कुछ हिस्सा मिल जाता है। इस तरह कारखानो मे चीजो का उपयोग करनेवाले गरीबो के हित की अपेक्षा मुनाफे की दृष्टि ही अधिक रहती है। समाज के सब वर्गो मे पैसा कमाने की लालसा को लगाम लगाने की जरूरत है। इस तत्व को समझ कर हरेक मे त्याग-वृत्ति का विकास होना चाहिए। ये यज्ञ इसमे मदद करेंगे। समझ-बूझकर

अत करण मे अगर ऐसा परिवर्तन होगा और चारो ओर ऐसी हवा फैलेगी तो धनिक लोग भी उससे अलग नही रह सकेंगे।

व्यक्तिगत मालिकी हक

सोचविचार कर देखा जाय, तो धन कमाना तो दूर रहा, समाज के सहयोग और मदद के बिना मनुष्य जिदा भी नही रह सकता। अगर किसी को अपने पुरुषार्थ का घमड हो तो वह जगल मे अकेला जाकर रहकर देखे। मनुष्य समाज मे रहता है, एक-दूसरे की मदद होती है, तब ही वह अपनी आजीविका चला सकता है। गरीब मजदूर को भी मालिक कुछ काम देता है तब उस मजदूर का पेट भरता है और मजदूर की मदद से मालिक का काम बन आता है। व्यापारी को कोई चीज बेचता है और उससे कोई चीजे खरीदता है, तब उसका व्यापार चलता है। कारखाने मे भी अनेक तरह के लोग सहयोग देते है। तब कारखाना चलता है। बीमारो के कारण डाक्टरो का काम चलता है और सपत्ति के झगडो के कारण वकीलो का। इसी प्रकार सब धधे परस्पर के सहयोग से चलते है जिनसे मनुष्य की उपजीविका सधती है। जब मेरा शरीर-बल, बुद्धि-बल और सपत्ति-बल समाज पर ही निर्भर है तो इनपर केवल व्यक्तिगत मालिकी या अधिकार समझना न्यायसगत कैसे हो सकता है ?

अगर हमारा स्वार्थ हमे दूसरी ओर न खीचे तो इस निर्णय पर आना आसान होगा कि आवश्यकता से अधिक धन कमाना और अधिक सपत्ति पर व्यक्तिगत मालिकी हक समझना उचित नही है। मालिकी हक का समाज के हित में विसर्जन हो यानी उसका उपयोग और अपनी बुद्धि का भी उपयोग समाज को मिले यह मार्ग न्याय्य मार्ग है और कानून में या समाज की मान्यता मे जो व्यक्तिगत मालिकी हक की विचारधारा चल रही है उसमे परिवर्तन होना जरूरी है, अर्थात् इस धारणा पर आना होगा कि अधिक सपत्ति व्यक्ति की न रहकर, समाज-हित के लिए हो।

दान की मात्रा और उद्देश्य

परिवार के व्यक्तियो की औसत सख्या पाच मान कर दरिद्रनारायण

के रूप मे बाहर के एक व्यक्ति को अपने हृदय मे स्थान मिले, इस आशय से यह सूचना है कि फिलहाल सपत्ति दान मे आय का कम-से-कम छठा हिस्सा दिया जाय। यह हिस्सा केवल एक साल या एक ही बार नही, जीवन भर देने की बात है। इस हिस्से की रकम किसी दूसरे के सुपुर्द नही करनी है, खुद ही खर्च कर उसका हिसाब भेज देना है। इस खर्च के विनोबाजी ने तीन उद्देश्य बताये है —

(१) भूदान-यज्ञ के सिलसिले मे जिन भूमिहीनो को जमीन दी जायगी उनके लिए साधन-सामग्री,

(२) जो गरीब कार्यकर्ता इन यज्ञो मे या ग्राम-सेवा मे लगेगे उनका निर्वाह,

(३) सत्साहित्य का प्रचार।

इस योजना मे दाता पर पूरा विश्वास रखा गया है। ट्रस्टीशिप की विचारधारा अमल मे लाने मे यह एक कारगर कदम साबित होगा।

स्थूल दृष्टि से देखने पर जीवन भर सपत्तिदान देते रहना भारी लगना सभव है, परतु यह प्रक्रिया अत करण-शुद्धि की है, वह हमारे जीवन मे सयम लाने मे मदद करेगी, उसमे स्वय-प्रेरणा से स्वय पर नियत्रण आता है। इसके न होने से समाज मे क्या चल रहा है ? जिनके पास करोड की सपत्ति है वे दो करोड बनाने में जी-जान से लग रहे है। साधन की शुद्धता का शायद ही ख्याल रहता है। इतना धन कमाने की जरूरत क्या है, इस धन का क्या करेंगे, इसमें खुद का कल्याण है या नही, इसका विचार कितने लोग करते है ? धनिको को अपने काम-काज मे व्यस्त रहने के कारण देश-सेवा के लिए फुरसत नही, गरीबो को पेट भरने की चिता के कारण अवकाश नही, मध्यम वर्ग बढी हुई महगाई के कारण त्रस्त है। देश-सेवा के काम के लिए कुछ अपवाद रूप थोडे से ही मिलते है। इस दशा मे हमारी क्राति कैसे हो ? वास्तव मे सबसे अधिक सुविधा उन धनिको को है, जिनके परिवार मे काफी लोग है, जिनमे से कुछ काम-काज सभालने लायक है। उन्हे अपनी धार्मिक परपरा के अनुरूप सन्यास न ले, वानप्रस्थाश्रम स्वीकार कर

गरीबो की सेवा मे लग जाना चाहिए। परन्तु ससार की तथा धन की लालसा इतनी तीव्र है कि मरने तक इन बन्धनो से छूटने का हम विचार तक नही करते।

दान की कुछ तफसील

धनिको को कुछ-न-कुछ दान तो करना ही पडता है, कुछ शायद अपनी आय के छठवे हिस्से से अधिक भी करते होगे। पर यह दान खुद की प्ररणा से न होकर प्राय पर-प्रेरित होता है। कुछ विशिष्ट लोग मागने को आते है तो इन्कार नही कर सकते। जिस काम के लिए दान दिया जाता है वह चाहे उन्हे पसन्द न भी हो ऐसा दान लेने वाले और देने वाले, दोनो के लिए अप्रिय रहता है। इसके बदले अगर ऐसा नियम बना लिया जाय कि हर साल आय का अमुक हिस्सा दान किया जायेगा, तो दाता खुद सोचेगा कि कौन-कौन से काम उसके दान के लायक है। जो काम उसे प्रिय होगा, उसके लिए खुद सोच-समझ कर वह अपने दान की रकम खर्च करेगा और अपन प्रिय उद्देश्य को सफल होते देखेगा। कुछ व्यापारियो मे यह परम्परा रही है कि वे अपनी आमदनी का एक निश्चित हिस्सा दान-धर्म के लिए हर साल अलग रखते रहे। कुछ जैन भाई अमुक मात्रा से अधिक सम्पत्ति सग्रह न करने का व्रत भी लेते है। ऐसी पद्धति को सम्पत्ति-दान-यज्ञ व्यापक बनाना चाहता है। पुरानी पद्धति मे एक बडा दोष यह आ गया है कि वह समयानुकूल नही रही है। सात्विक दान तो वही समझा जा सकता है कि जो 'देशे काले च पात्रे च' हो। विनोबाजी ने सम्पत्ति-दान के ऊपर लिखे जो उद्देश्य बताये है, वे देश की वर्तमान परिस्थिति मे बहुत उपयुक्त है। अभी धनिको द्वारा जो दान होता रहता है उसका लाभ प्राय शहरी मध्यम वर्ग के लोगो को ही मिलता है। वास्तव मे दान गरीब-से-गरीब के पास पहुचना चाहिए। यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि जिसको दान दिया जाता है, वह पगु न बने, बल्कि काम मे लग कर स्थायी रूप मे अपनी आजीविका अपने श्रम से सम्मानपूर्वक चला सके। भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ से यह बात विशेष रूप से सधती है।

जिनकी आय अपने और परिवार के पालन-पोषण के लिए भी पर्याप्त नही है उन्हे सम्पत्ति-दान म छठा हिस्सा देना भारी मालूम हो तो वे अपनी शक्ति के अनुसार कम हिस्सा देने की भी सोच सकते हैं, जीवन भर का सकल्प करने का साहस न हो तो कुछ मर्यादित समय का भी विचार किया जा सकता है ? पर वह समय पाच वर्षो से कम तो क्या हो सकता है ? कुछ भाइयो का कहना है कि सपत्ति-दान का हिस्सा देने के उपरान्त दान की कुछ ऐसी दूसरी मागे भी है जिन्हे इन्कार नही किया जा सकता और सम्पत्ति-दान का हिस्सा दान देने के बाद अधिक देने की शक्ति नही रहती। अगर ऐसा कुछ हो तो विनोबाजी को लिख कर सपत्ति-दान के हिस्से मे से ही कुछ व्यवस्था हो सकना सभव है, पर सपत्ति-दान का हिस्सा विशेष कम नही होना चाहिए, क्योकि सपत्ति-दान में योग देने का प्रयोजन सफल करना ही है। यह भी न भूलना चाहिए कि धनिको की जितनी अधिक आय हो, उतनी ही उनकी सम्पत्ति-दान की मात्रा अधिक अर्थात् छठे हिस्से मे भी ज्यादा हो। जो अपनी आय का हिस्सा देन की इच्छा नही रखते वे अपन गृहस्थी के खर्च का हिस्सा दे सकते है। इसमे विवाह आदि प्रसगो का खर्च भी शामिल समझना चाहिए।

●

संपत्ति-दान-यज्ञ के दान-पत्र का नमूना

श्री विनोबाजी, आपने भारतीय परम्परा के अनुसार आर्थिक क्रान्ति की अहिंसक प्रतिक्रिया को सम्पूर्ण रूप देने की दृष्टि से अब लोगो से भूमि के अलावा अपनी सम्पत्ति का भी षष्ठांश देने की मांग की है। भूमिदान-यज्ञ में जो लोग भूमि न होने के कारण विशेष सहयोग नही दे सकते थे, उनके लिए भी अब आपने रास्ता खोल दिया है। दरिद्रनारायण के लिए किये गये आपके इस आवाहन पर मैं अपनी आय/व्यय का वा हिस्सा आपको अर्पित करता हूं तथा हर साल आपके निर्देशानुसार मैं इसका विनियोग सार्वजनिक कार्य के लिए करूंगा।

अपनी आय या व्यय का जितना हिस्सा सम्पत्ति-दान में अर्पित करने का तय किया है उसके खर्च का वार्षिक हिसाब आपको, या आपके प्रतिनिधि या जिस समिति को आप अधिकार दें, उसको मैं नियमित भेजता रहूंगा।

ऊपर लिखे हुए हिस्से की सारी रकम को सुरक्षित रखने तथा आपके निर्देशानुसार उसको खर्च करने की जिम्मेदारी मैं मान्य करता हूं।

अपने नियम का साक्षी अन्तर्यामी रूप में मैं ही स्वयं हूं तथा मुझे अपनी अन्तरात्मा से वफादार रहना है।

ईश्वर मुझे बल देगा।

मेरी सम्पत्ति आदि का ब्योरा साथ में दिया है।

तारीख ———————— हस्ताक्षर ————————

पूरा नाम-पता ————————————————

सम्पत्ति का ब्योरा ————————————————

आय का ब्योरा ———————————————— वार्षिक/मासिक

वे हिस्से की रकम ———————————————— " "

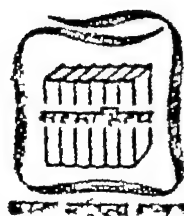
सूचना—यह दानपत्र भर कर विनोबाजी के पास या सर्व-सेवा-संघ, सेवाग्राम के पते पर भेज दें और दिये हुए हिस्से की रकम अपने पास सुरक्षित रखें। जब विनोबाजी या उनके द्वारा नियुक्त समिति कोई आदेश देगी, तभी उस निर्देश के अनुसार इस रकम का विनियोग करना है।

नई क्रांति-माला

की

पुस्तकें

१. सर्वोदय का घोषणापत्र
२. सर्वोदय के सेवकों से
३. भूदान-यज्ञ
४. धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन
५. मानवीय क्रांति
६. नई क्रांति
७. नई क्रांति के गीत
८. हमारी भूमि-समस्या का हल
९. दंड-निरपेक्ष समाज-रचना
१०. सम्पत्तिदान-यज्ञ



चार आना

मानवीय क्रांति

दादा धर्माधिकारी

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

मानवीय क्रान्ति

—समाज के नव-निर्माण के लिए बुनियादी विचारों की व्याख्या—

दादा धर्माधिकारी

•

१९५४

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

सर्व-सेवा-सघ' के लिए
मार्तण्ड उपाध्याय
मत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

दूसरी बार : १९५४
कुल छपी प्रतिया : १५,०००
मूल्य
चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिग वर्क्स,
दिल्ली

भूमिका

दादा धर्माधिकारी के भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ विषयक लेखों का पुस्तकाकार में संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है, यह खुशी की बात है। उनके सारे लेख मैं पढ़ तो नहीं सका हूँ। 'सर्वोदय' में आते थे तो सरसरी तौर पर मैं देख जाता था। लेकिन जीवन-विषयक बहुत से प्रश्नों पर उनका और मेरा दृष्टिकोण मिलता-जुलता रहा है। विचार-प्रदर्शन का उनका अपना एक ढंग है जो कुछ लोगों को ग्रहण नहीं होता, जिससे कुछ लोगों को 'शॉक' भी लगता है। लेकिन आधुनिकतम परिभाषा का वे प्रयोग करते हैं, इसलिए शिक्षितों में खासकर विद्यार्थियों में, उनके शब्द विचार-परिवर्तक साबित होते हैं।

मुझे आशा है भूदान-यज्ञ के साहित्य में इस पुस्तक से एक कमी की पूर्ति होगी।

पड़ाव लक्ष्मीसराय
२७-१०-५३

—विनोबा

विषय-सूची

मानवीय क्रान्ति

: १ :

गांधी-प्रक्रिया का परिणत स्वरूप

स्व. किशोरलाल भाई मशरूवाला ने विनोबा के भूदान-यज्ञ के प्रयोग को गांधी-प्रक्रिया का 'परिणत-स्वरूप' कहा था। लेकिन कुछ प्रगतिवादी समाचार-पत्रों ने विनोबा के इस उपक्रम की कड़ी आलोचना की। उनका यह आक्षेप है कि इस प्रकार के आन्दोलन से अराज्यवाद की प्रवृत्ति जोर पकड़ेगी और देश में विधि-पूर्वक सत्ता की प्रतिष्ठा नहीं रहेगी।

जनता का अनुमोदनरूपी आधार

इस आलोचना में एक गम्भीर तर्क-दोष है। हरेक राज्य के विधान के पीछे जनता के अनुमोदन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार अनुमोदन यदि हो तो कानून का अमल करने के लिए दंड की शरण नहीं लेनी पड़ती। इसलिए शासन को जनता का स्वयंप्रेरित समर्थन और सहयोग प्राप्त करा देना हरएक लोक-निष्ठ कार्यकर्त्ता का परम कर्त्तव्य है। जनता का स्वयं-प्रेरित प्रयत्न प्रशासन को शक्ति देता है और उसकी नींव को दृढ़ करता है। विनोबा का उपक्रम इसी प्रकार का है।

मानवोचित क्रांति

ढग से करना चाहते है। वे सम्पत्तिमानो को यह समझाना चाहते है कि वे सम्पत्ति के सविभाजन में यदि सहयोग देगे तो मानवता की बलि दिये बिना ही क्रान्ति होगी। सशस्त्र और हिंसक क्रान्ति या सम्पत्ति का बलपूर्वक अपहरण करने से दोनो पक्षो मे कटुता पैदा होती है। सविभाग तो होगा, लेकिन अन्त करण मे गहरे घाव रह जायेगे। इसमे भयानक सास्कृतिक हानि होगी। इस अनर्थ से मानवता को बचाने का सकल्प विनोबा ने किया है। हो सकता है कि उनकी शक्ति परिमित साबित हो, लेकिन साक्षात् भगवान् बोल चुके है कि 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

छोटे-बड़े भूपतियों की श्रृंखला

सार्वभौम भूपति सम्राट् कहलाता था, एक राष्ट्र का भूपति राजा कहलाता था और फुटकर भूपति जमींदार तथा सरमायेदार कहलाते थे। इस प्रकार एक तरफ छोटे-बडे भूपतियो की परम्परा थी और दूसरी तरफ जमीन जोतनेवाले छोटे-बडे भू-दासो की श्रेणी थी। आज जो भू-दास है, याने अपने परिश्रम से जमीन जोतते है, वे भी भूपति बनना चाहते है। पहले छोटे-बडे भूपति थे, अब सभी समान आकार के भूपति बनना चाहते है, किन्तु बनना चाहते है भूपति ही।

भावी समाज भूपतियों का नही, निर्माताओं का

विनोबा समाज मे यह सकल्प जाग्रत करना चाहते है कि भविष्य मे समाज भूपतियो का नही भू-माता के पुत्रो का होगा। मालिको का नही उत्पादको का होगा। सृष्टि का धनधान्य खा-खाकर खत्म करनेवालो का नही, सृष्टि की समृद्धि और उत्पादन-शक्ति बढानेवालो का होगा।

शास्त्रपूत अनुभवसिद्ध प्रयोग

इसके लिए दो तरह की भावनाओ का विकास करना होगा। सम्पत्ति-धारियो में आत्म-विसर्जन की भावना पैदा करनी होगी और छोटे-छोटे भूस्वामी किसानो मे ट्रस्टीशिप की भावना का विकास करना होगा। [illegible] क्रान्ति की यही विधि है। विनोबा इसके विज्ञाता और अनुष्ठाता

हैं। उनका प्रयोग शास्त्रपूत और अनुभवसिद्ध है। वह अवश्य कल्याण-कारी सिद्ध होगा। इस देश से सभी आर्थिक स्वतन्त्रतावादी व्यक्तियों को इस महान् उपक्रम में उत्साह और लगन के साथ सहयोग देना चाहिए। उसकी नुक्ताचीनी करने में किसी का फायदा नहीं है।

सोने का नहीं, मिट्टी का निरख

विनोबा के प्रयोग की एक अपूर्व विशेषता यह है कि वे सोने की जगह मिट्टी का निरख बढ़ाना चाहते हैं, इसलिए वे किसी से पैसा नहीं लेते। सिर्फ मिट्टी मांगते हैं। धरती माता के वे अनन्य उपासक हैं।

मिट्टी में सृष्टि का वैभव

श्रीकृष्ण ने जब मिट्टी फाकी तो यशोदा ने उन्हें डांटा। 'मैंने मिट्टी नहीं खाई' यह दिखाने के लिए श्रीकृष्ण ने अपना मुंह बाकर दिखाया तो यशोदा ने उस छोटे से मुखारविन्द में विश्वरूप का सारा वैभव देखा। "क्वचित् मृत्स्नाशित्वम्, क्वचिदपि च वैकुण्ठविभव ।" विनोबा के इस साधारण-से प्रयोग में ऐसा ही इंगित सन्निहित है।

संसार में भूपति भूमि का संग्रह करते हैं, नृपति जन-संग्रह करते हैं और धनपति धन-संग्रह करते हैं। किन्तु मानवीय शान्ति का यह आधुनिक अग्रदूत केवल स्नेह-संग्रह करके धरती का बोझ घटा रहा है।

ढंग से करना चाहते हैं। वे सम्पत्तिमानों को यह समझाना चाहते हैं कि वे सम्पत्ति के संविभाजन में यदि सहयोग देंगे तो मानवता की बलि दिये बिना ही क्रान्ति होगी। सशस्त्र और हिंसक क्रान्ति या सम्पत्ति का बलपूर्वक अपहरण करने से दोनों पक्षों में कटुता पैदा होती है। संविभाग तो होगा, लेकिन अन्तःकरण में गहरे घाव रह जायेंगे। इससे भयानक सांस्कृतिक हानि होगी। इस अनर्थ से मानवता को बचाने का संकल्प विनोबा ने किया है। हो सकता है कि उनकी शक्ति परिमित साबित हो, लेकिन साक्षात् भगवान् बोल चुके हैं कि 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

छोटे-बड़े भूपतियों की शृंखला

सार्वभौम भूपति सम्राट् कहलाता था, एक राष्ट्र का भूपति राजा कहलाता था और फुटकर भूपति जमींदार तथा सरमायेदार कहलाते थे। इस प्रकार एक तरफ छोटे-बड़े भूपतियों की परम्परा थी और दूसरी तरफ जमीन जोतनेवाले छोटे-बड़े भू-दासों की श्रेणी थी। आज जो भू-दास हैं, याने अपने परिश्रम से जमीन जोतते हैं, वे भी भूपति बनना चाहते हैं। पहले छोटे-बड़े भूपति थे, अब सभी समान आकार के भूपति बनना चाहते हैं, किन्तु बनना चाहते हैं भूपति ही।

भावी समाज भूपतियों का नहीं, निर्माताओं का

विनोबा समाज में यह संकल्प जाग्रत करना चाहते हैं कि भविष्य में समाज भूपतियों का नहीं भू-माता के पुत्रों का होगा। मालिकों का नहीं उत्पादकों का होगा। सृष्टि का धनधान्य खा-खाकर खत्म करनेवालों का नहीं, सृष्टि की समृद्धि और उत्पादन-शक्ति बढ़ानेवालों का होगा।

शास्त्रपूत अनुभवसिद्ध प्रयोग

इसके लिए दो तरह की भावनाओं का विकास करना होगा। सम्पत्ति-धारियों में आत्म-विसर्जन की भावना पैदा करनी होगी और छोटे-छोटे स्वामी किसानों में ट्रस्टीशिप की भावना का विकास करना होगा। अहिंसक क्रान्ति की यही विधि है। विनोबा उसके विज्ञाता और अनुष्ठाता

है। उनका प्रयोग शास्त्रपूत और अनुभवसिद्ध है। वह अवश्य कल्याणकारी सिद्ध होगा। इस देश ने सभी आर्थिक स्वतन्त्रतावादी व्यक्तियो को इस महान् उपक्रम मे उत्साह और लगन के साथ सहयोग देना चाहिए। उसकी नुक्ताचीनी करने मे किसी का फायदा नही है।

सोने का नही, मिट्टी का निरख

विनोबा के प्रयोग की एक अपूर्व विशेषता यह है कि वे सोने की जगह मिट्टी का निरख बढाना चाहते है, इसलिए वे किसी से पैसा नही लेते। सिर्फ मिट्टी मागते है। धरती माता के वे अनन्य उपासक है।

मिट्टी मे सृष्टि का वैभव

श्रीकृष्ण ने जब मिट्टी फाकी तो यशोदा ने उन्हे डाटा। 'मैने मिट्टी नही खाई' यह दिखाने के लिए श्रीकृष्ण ने अपना मुह बाकर दिखाया तो यशोदा ने उस छोटे से मुखारविन्द मे विश्वरूप का सारा वैभव देखा। "क्वचित् मृत्स्नाशित्वम्, क्वचिदपि च वैकुण्ठविभव।" विनोबा के इस साधारण-से प्रयोग मे ऐसा ही इगित सन्निहित है।

ससार में भूपति भूमि का सग्रह करते है, नृपति जन-सग्रह करते है और धनपति धन-सग्रह करते है। किन्तु मानवीय शान्ति का यह आधुनिक अग्रदूत केवल स्नेह-सग्रह करके धरती का बोझ घटा रहा है।

: २ :

भूदान-यज्ञ का बीजगणित

भूदान-यज्ञ आन्दोलन का विचार आर्थिक सयोजन की दृष्टि से कई धुरन्धर अर्थशास्त्रियो ने और राज्य-नेताओ ने भी किया है और आर्थिक दृष्टि से हिसाब करना आवश्यक और उपयुक्त भी है। विनोबा के दो सूत्र प्रसिद्ध है, वे कहा करते है कि परमात्मा के बाद मेरा विश्वास गणित मे है। वे यह भी कहा करते है कि परमार्थ उत्कृष्ट हिसाब का नाम है, अर्थात् विनोबा गणित की दृष्टि से और हिसाब की दृष्टि से भी अपनी सारी योजनाओ का बडी सावधानी से विचार कर लेते है। लेकिन उनके इस भूदान-यज्ञ-आन्दोलन मे अकगणित की अपेक्षा बीजगणित की प्रक्रिया अधिक है। अकगणित का सारा दारोमदार आकडो और रकमो पर होता है। बीजगणित मे आकडो की जगह 'सकेत' (सिम्बल्स) होते है। भूदान-यज्ञ मे 'दान' और 'यज्ञ' ये दोनो शब्द साकेतिक है।

'दान' शब्द का सांकेतिक अर्थ

'दान' शब्द सपत्ति के समान वितरण का सकेत है। जिसने सग्रह कर लिया हो, वह उस सग्रह के विभाजन के लिए दान करे। जबतक सम्पत्ति का समान वितरण न हो, या कम-से-कम न्यायोचित वितरण न हो, तबतक उसका दान परिपूर्ण नही होगा।

समान वितरण और न्यायोचित वितरण

हमने समान वितरण और न्यायोचित वितरण मे भेद किया है, क्योकि मनुष्यो की तथा कुटुम्बो की आवश्यकताए भिन्न-भिन्न हो सकती है। आवश्यकतानुरूप वितरण को हम न्यायोचित वितरण कहेगे। अकगणित के हिसाब से वितरण बराबरी मे होता है। हमने कैदी को छः-छः रोटिया

मिलती है। जो पाच खाये उसको भी पेशी होती है और जो सातवी मागे, उसकी भी पेशी होती है। साधारण गुणाकार या मोटा हिसाब सुविधाजनक भले ही हो, परन्तु वह हमेशा न्यायोचित नही होता। हम सग्रह का विभाजन इसीलिए तो चाहते है, न कि वह अन्याययुक्त है? हमे यह ध्यान मे रखना चाहिए कि हम विषमता का निराकरण करना चाहते है, न कि विविधता का या विशिष्टता का।

दान-वृत्ति की अपार महिमा

मतलब यह कि दान मे सम्पत्ति के सविभाग (सम्यक् विभाजन) का सकेत है। जो सम्पत्तिमान है उन्हे सग्रह के प्रायश्चित्त के रूप मे दान करना चाहिए। यदि वे ऐसा करेगे तो उनकी सम्पत्ति का परिहरण (ऐक्स्प्रोप्रिएशन) नही करना पडेगा। सम्पत्ति को मर्यादित करनेवाले जो कानून बनेगे, उनके साथ वे भी सहमत रहेगे। दान मे प्रतिमूल्य की या मुआवजे की भावना के लिए गुजाइश ही नही। जो दान देता है, वह दान की वस्तु के साथ-साथ दान की पूर्ति के लिए ऊपर से और दक्षिणा भी दे देता है। जो पुराणमतवादी लोग ब्राह्मण को दान मे गाय, मकान या अन्य कोई वस्तु देते है, वे उस दान की परिपूर्ति के लिए दक्षिणा भी देते है। दान मे ममत्व के त्याग के साथ-साथ प्रायश्चित्त की भी भावना है। सम्पन्न व्यक्ति यदि अपनी मर्जी से सम्पत्ति के समविभाजन का आरम्भ कर देते है तो उनकी सम्पत्ति के साथ-साथ उनकी प्रतिष्ठा और हिम्मत भी नही जाती। अमीरी को नष्ट करके अमीरो की इज्जत और हिम्मत बचा लेने का यह अनोखा तरीका है। यह अमीरो और गरीबो को इन्सानियत सिखाता है।

यज्ञ मे आत्मोत्सर्ग है

केवल बड़े-बड़े जमीदारों से ही जमीन नहीं मांगते, वे एक एकड़ और आध एकड़वाले छोटे-छोटे आदमियों से भी भूदान ले लेते हैं। कोई आध एकड़-वाला आदमी अपनी कुल जमीन दे दे तो वे भी ले लेते हैं। क्योंकि गरीब का दान यज्ञरूप होता है। हजार एकड़वाला अगर नौ सौ एकड़ भी दे दे, तो भी वह आपको अपना पेट काटकर नहीं देता। अपनी जीविका का उत्सर्ग नहीं करता, वह केवल अपने वैभव का अधिकांश आपको दे देता है। लेकिन अगर पांच एकड़वाला ढाई एकड़ दे देता है, तो वह अपना आधा राज ही नहीं, आधा पेट आपको दे देता है। इसलिए उसका दान यज्ञरूप है। वह अपनी मिलकियत की भावना की ही आहुति दे देता है।

भूमाता की पुकार

हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं वह समाज मालिकों का नहीं, उत्पादकों का होगा, अब इस वसुधा में कोई भूपति या नरपति नहीं होगा, सभी मानव भूमि-पुत्र होंगे। यह भूमि मालिकों से और पतियों से तंग आगई है। गाय का रूप धारण करके मानो वह भगवान् से ही कह रही है कि मुझे अब इस पाप का भार हो रहा है। मेरे सभी पुत्र मेरे स्वामी बनना चाहते हैं। भगवान् ने उसे आश्वासन दे दिया है कि जिस प्रकार अब राज्य-सत्ता किसी राजा की या राजवंश की नहीं रह गई है, उसी प्रकार अब यह धरती भी किसी मालिक की नहीं रहेगी। धरती में से जो हूक निकली, वही भगवान् का संकेत बनकर अब आकाश में गूंजने लगी है।

मिलकियत का निराकरण

सेंट सायमन के शब्द थे, "भविष्य का संसार स्वामियों (प्रोप्राइटर्स) का नहीं, उत्पादकों (प्रोड्यूसर्स) का होगा।" गांधी ने कहा था, "सभी सम्पत्तिधारी अपने आपको सम्पत्ति के न्यास-रक्षक (ट्रस्टी) मानेंगे। जो बड़े सम्पत्तिधारी होंगे, वे अपनी सम्पत्ति का विसर्जन करेंगे और जिनके पास थोड़ी-सी ही सम्पत्ति होगी, वे भी अपने आपको उसके मालिक नहीं समझेंगे।"

यज्ञ की व्यापकता

किसी ने विनोवा से कहा कि "मुट्ठी-भर बड़े-बड़े मालिकों की जगह दुनिया पर छोटे-छोटे मालिकों का जाल आप फैला देंगे तो आगे चलकर सहयोग के तत्व की स्थापना करना मुश्किल हो जायगा। ये सारे छोटे-छोटे मालिक अपनी मिल्कियत की रक्षा के लिए लड़ने खड़े हो जायगे।" इसलिए विनोवा ने अपने भूदान-आन्दोलन में 'यज्ञ' का भी समावेश कर लिया है। यज्ञ में छोटे-बड़े सभी अपनी-अपनी इच्छा और शक्ति के अनुरूप हविर्भाग लाते हैं।

नमक-सत्याग्रह का दृष्टांत

सांकेतिक आन्दोलन में पुण्य-भावना का महत्व बहुत अधिक होता है। पुण्य-भावना सारे वायु-मण्डल को सुरभित कर देती है। गांधीजी ने चुटकी भर नमक बनाया। उनसे यहां के कोई समुद्र तो नहीं सूख गए और न लवणागार ही खाली हुए। परन्तु उस छोटे-से संकेत ने सारे वायुमण्डल को अभिमन्त्रित कर दिया। विनोवा का यह आन्दोलन नियमित संविभाग की भावना से सारे वातावरण को सुगंधित कर देगा।

बिना नैवेद्य के प्रसाद कहां ?

केवल बडे-बडे जमीदारो से ही जमीन नही मागते, वे एक एकड और आध एकडवाले छोटे-छोटे आदमियो से भी भूदान ले लेते है। कोई आध एकड-वाला आदमी अपनी कुल जमीन दे दे तो वे भी ले लेते है। क्योकि गरीब का दान यज्ञरूप होता है। हजार एकडवाला अगर नौ नौ एकड भी दे दे, तो भी वह आपको अपना पेट काटकर नही देता। अपनी जीविका का उत्सर्ग नही करता, वह केवल अपने वैभव का अधिकाश आपको दे देता है। लेकिन अगर पाच एकडवाला ढाई एकड दे देता है, तो वह अपना आधा राज ही नही, आधा पेट आपको दे देता है। इसलिए उसका दान यज्ञरूप है। वह अपनी मिलकियत की भावना की ही आहुति दे देता है।

भूमाता की पुकार

हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते है वह समाज मालिको का नही, उत्पादको का होगा, अब इस वसुधा में कोई भूपति या नरपति नही होगा, सभी मानव भूमि-पुत्र होगे। यह भूमि मालिको से और पतियो से तग आगई है। गाय का रूप धारण करके मानो वह भगवान् से ही कह रही है कि मुझे अब इस पाप का भार हो रहा है। मेरे सभी पुत्र मेरे स्वामी बनना चाहते है। भगवान् ने उसे आश्वासन दे दिया है कि जिस प्रकार अब राज्य-सत्ता किसी राजा की या राजवश की नही रह गई है, उसी प्रकार अब यह धरती भी किसी मालिक की नही रहेगी। धरती में से जो हूक निकली, वही भगवान् का सकेत बनकर अब आकाश में गूजने लगी है।

मिलकियत का निराकरण

सेंट सायमन के शब्द थे, "भविष्य का ससार स्वामियो (प्रोप्राइटर्स) का नही, उत्पादको (प्रोड्यूसर्स) का होगा।" गाधी ने कहा था, "सभी सम्पत्तिधारी अपने आपको सम्पत्ति के न्यास-रक्षक (ट्रस्टी) मानेंगे। जो बडे सम्पत्तिधारी होगे, वे अपनी सम्पत्ति का विसर्जन करेंगे और जिनके पास थोडी-सी ही सम्पत्ति होगी, वे भी अपने आपको उसके मालिक नही समझेंगे।"

यज्ञ की व्यापकता

किसी ने विनोबा से कहा कि "मुट्ठी-भर बडे-बडे मालिको की जगह दुनिया पर छोटे-छोटे मालिको का जाल आप फैला देंगे तो आगे चलकर सहयोग के तत्व की स्थापना करना मुश्किल हो जायगा। ये सारे छोटे-छोटे मालिक अपनी मिलकियत की रक्षा के लिए लडने खडे हो जायगे।" इसलिए विनोबा ने अपने भूदान-आन्दोलन मे 'यज्ञ' का भी समावेश कर लिया है। यज्ञ मे छोटे-बडे सभी अपनी-अपनी इच्छा और शक्ति के अनुरूप हविर्भाग लाते है।

नमक-सत्याग्रह का दृष्टांत

साकेतिक आन्दोलन मे पुण्य-भावना का महत्व बहुत अधिक होता है। पुण्य-भावना सारे वायु-मण्डल को सुरभित कर देती है। गाधीजी ने चुटकी भर नमक बनाया। उनसे यहा के कोई समुद्र तो नही सूख गए और न लवणागार ही खाली हुए। परन्तु उस छोटे-से सकेत ने सारे वायुमण्डल को अभिमन्त्रित कर दिया। विनोबा का यह आन्दोलन विधायक सविभाग की भावना से सारे वातावरण को सुगधित कर देगा।

बिना नैवेद्य के प्रसाद कहा ?

केवल बडे-बडे जमीदारो से ही जमीन नही मागते, वे एक एकड और आध एकडवाले छोटे-छोटे आदमियो से भी भूदान ले लेते है। कोई आध एकड-वाला आदमी अपनी कुल जमीन दे दे तो वे भी ले लेते है। क्योकि गरीब का दान यज्ञरूप होता है। हजार एकडवाला अगर नौ सौ एकड भी दे दे, तो भी वह आपको अपना पेट काटकर नही देता। अपनी जीविका का उत्सर्ग नही करता, वह केवल अपने वैभव का अधिकाश आपको दे देता है। लेकिन अगर पाच एकडवाला ढाई एकड दे देता है, तो वह अपना आधा राज ही नही, आधा पेट आपको दे देता है। इसलिए उसका दान यज्ञरूप है। वह अपनी मिलकियत की भावना की ही आहुति दे देता है।

भूमाता की पुकार

हम जिस समाज की स्थापना करना चाहते है वह समाज मालिको का नही, उत्पादको का होगा, अब इस वसुधा में कोई भूपति या नरपति नही होगा, सभी मानव भूमि-पुत्र होगे। यह भूमि मालिको से और पतियो से तग आगई है। गाय का रूप धारण करके मानो वह भगवान् से ही कह रही है कि मुझे अब इस पाप का भार हो रहा है। मेरे सभी पुत्र मेरे स्वामी बनना चाहते है। भगवान् ने उसे आश्वासन दे दिया है कि जिस प्रकार अब राज्य-सत्ता किसी राजा की या राजवश की नही रह गई है, उसी प्रकार अब यह धरती भी किसी मालिक की नही रहेगी। धरती में से जो हूक निकली, वही भगवान् का सकेत बनकर अब आकाश में गूजने लगी है।

मिलकियत का निराकरण

सैंट सायमन के शब्द थे, "भविष्य का ससार स्वामियो (प्रोप्राइटर्स) का नही, उत्पादको (प्रोड्यूसर्स) का होगा।" गाधी ने कहा था, "सभी सम्पत्तिधारी अपने आपको सम्पत्ति के न्यास-रक्षक (ट्रस्टी) मानेंगे। जो बडे सम्पत्तिधारी होगे, वे अपनी सम्पत्ति का विसर्जन करेगे और जिनके पास थोडी-सी ही सम्पत्ति होगी, वे भी अपने आपको उसके मालिक नही समझेंगे।"

यज्ञ की व्यापकता

किसी ने विनोबा से कहा कि "मुट्ठी-भर बडे-बडे मालिको की जगह दुनिया पर छोटे-छोटे मालिको का जाल आप फैला देगे तो आगे चलकर सहयोग के तत्व की स्थापना करना मुश्किल हो जायगा। ये सारे छोटे-छोटे मालिक अपनी मिलकियत की रक्षा के लिए लडने खडे हो जायगे।" इसलिए विनोबा ने अपने भूदान-आन्दोलन मे 'यज्ञ' का भी समावेश कर लिया है। यज्ञ मे छोटे-बडे सभी अपनी-अपनी इच्छा और शक्ति के अनुरूप हविर्भाग लाते है।

नमक-सत्याग्रह का दृष्टात

साकेतिक आन्दोलन मे पुण्य-भावना का महत्व बहुत अधिक होता है। पुण्य-भावना सारे वायु-मण्डल को सुरभित कर देती है। गाधीजी ने चुटकी भर नमक बनाया। उससे यहा के कोई समुद्र तो नही सूख गए और न लवणागार ही खाली हुए। परन्तु उस छोटे-से सकेत ने सारे वायुमण्डल को अभिमन्त्रित कर दिया। विनोबा का यह आन्दोलन नियामक सविभाग की भावना से सारे वातावरण को सुगधित कर देगा।

बिना नैवेद्य के प्रसाद कहा ?

: ३ :

दान-प्रक्रिया से क्रान्ति

इस यज्ञ के संबंध में कुछ मूलभूत भ्रम है, जिनके कारण कई अनावश्यक आक्षेप कार्यकर्त्ताओ के भी मन में उठते है। 'दान' शब्द के बारे में आम तौर पर जो आक्षेप किये जाते है, उनका समाधान करने की कोशिश स्वयं विनोबा ने और प्रस्तुत लेखक ने की है। फिर भी कई प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओ के मन में कही कुछ अटका रह जाता है। इसका कारण यह है कि 'दान' शब्द के अर्थ की और उसके प्रयोग की व्याप्ति कार्यकर्त्ताओ की समझ में अच्छी तरह नही आई है।

श्रमिक क्रांति

यह खयाल गलत है कि भूदान-यज्ञ मे दान सिर्फ अमीरो को ही देना है। विनोबा गरीबो से भी दान मागते है और धन्यतापूर्वक ले लेते है। वे कहते है कि गरीबो की क्रान्ति-सेना का निर्माण और संगठन दूसरी किसी पद्धति मे नही हो सकता। हम गरीब आदमी की हुकूमत के साथ-साथ उसकी मिलकियत भी कायम करना चाहते है। यही आर्थिक क्रांति की प्रक्रिया है। गरीब आदमी की मिलकियत का अर्थ है उत्पादक की मिलकियत। जो उत्पादक है आज उसके पास उत्पादन के औजारो के सिवा दूसरे कोई औजार नही है। इसलिए गरीब आदमी की क्रांति हथियारो के द्वारा नहीं हो सकती। गरीब गरीब है, इतना कह देने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पैसे की ताकत उसके पास नही है। तब सवाल यह होता है कि बगैर पैसे के और बगैर हथियारो के गरीबो की फौज किस तरह बने?

गरीब का अपरिग्रह

भूदान-यज्ञ-आंदोलन के प्रणेता ने यह योजना की है कि गरीब आदमी

अपरिग्रह के प्रयोग का आरम्भ करे। उनका परिग्रह याने उसकी सपत्ति इतनी थोडी है कि एक तरह से उसकी सपत्ति कहना भी मजाक है। परन्तु उस नगण्य मिलकियत से भी वह चिपका रहना चाहता है। उसे यह डर है कि इस छोटी-सी मिलकियत को मै छोड दूगा तो कही का नही रहूगा। छोटी-सी मिलकियत का नाम गरीबी है। अगर गरीब आदमी उस छोटी-सी मिलकियत का विसर्जन सामुदायिक मिलकियत मे कर देता है तो वह खोता कुछ नही और पाता सब कुछ है। इसलिए गरीब आदमी के दान के लिए 'यज्ञ' सज्ञा का प्रयोग किया गया है।

गरीबो की सेना

गरीब जब अपनी अल्प सपत्ति मे से भी सार्वजनिक सपत्ति के यज्ञ मे आहुति दे देता है तो वह एक गरीब और दूसरे गरीब के बीच स्नेह-बधन का निर्माण करता है। त्याग और बलिदान के डोरे से बधे हुए ये गरीब एक अजेय सेना का निर्माण करेगे।

विषमता का निराकरण क्यो ?

रूप स्नेह हो। भूदान-यज्ञ-आदोलन मे यह विशेषता है। गरीब अपनी-अपनी अल्प सम्पत्ति समर्पित करके एक-दूसरे के साथ स्नेह-बंधन मे बंध जाते है। गरीबो का इस प्रकार का भाईचारा कायम हो जाने के बाद मुट्ठी भर अमीर अलग नही रह सकते। अमीरो की यह शर्त है कि बहुत-से गरीबो का परिश्रम खरीदने का अवसर हमेशा बना रहे। जहा यह अवसर खत्म हुआ, अमीरी की नीव ही ढह जाती है।

सत्ता का नशा

अब एक इतना ही अतिम आक्षेप रह जाता है कि मनुष्य-समाज का इतना भरोसा करना अव्यावहारिक है। इस आक्षेप के जवाब मे बहुत अदब के साथ एक परिप्रश्न किया जा सकता है। अगर सपत्ति मनुष्य की वृत्ति को बिगाड कर उसमे जहर पैदा कर देती है, तो क्या सत्ता का हलाहल सपत्ति के गरल से कम भयानक होता है? गरीबो को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए जो मुट्ठी भर आदमी अपने हाथो मे शस्त्र-प्रयोग से सत्ता लेंगे, वे क्या फरिश्ते और देवता होगे? क्या उनमे सत्ता का उन्माद पैदा नही होगा?

मनुष्य पर भरोसा

मतलब यह कि मनुष्य की शुभ वृत्ति पर कही-न-कही जाकर विश्वास रखना ही पडता है। मनुष्य मे अविश्वास के आधार पर मानवता के उत्कर्ष की पोषक कोई क्रान्ति नही हो सकती। जो लोग साधनशुद्धि का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करते है उनकी बात मे तर्कसंगति तो है ही, परन्तु उसमे कही अधिक वास्तविकता है। भूदान-यज्ञ-आदोलन मे एक दानी और दूसरा भिखारी ऐसी कल्पना नही है। यह दान उत्सर्ग और समर्पण की प्रक्रिया का आरम्भ है। जो अमीर दान देता है वह भी क्रान्ति की सेना में दर्ज हो जाता है। जो गरीब उत्सर्ग करता है, वह तो क्रान्ति की वर्दी पहन कर उसका अग्रदूत ही बन जाता है।

क्रांति की सेना

रामराज्य की फौज जितनी अनोखी थी उतनी ही विक्रमशाली थी। विनोबा के ग्रामराज्य की यह सेना भी अपने ढंग की अनूठी और पराक्रमी होगी।

'दान' शब्द से बहुत-से क्रान्तिवादियों को भी कृपा, उपकार और कृतज्ञता की बू आती है। उनका कहना है कि दान की विधि से जो प्रतिग्रह करनेवाला होता है वह कृतज्ञता के बोझ से दब जाता है और देनेवाला अपने आपको परोपकारी तथा दानवीर समझने लगता है। इसलिए 'दान' का यह मार्ग गरीब आदमी की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचानेवाला है और 'अमीर' का गर्व बढ़ानेवाला है।

परंपरागत 'दान'-विचार

बारीकी के साथ अध्ययन करने की परवाह नही की है। हिन्दू समाज मे ब्राह्मण को दान दिया जाता था। हम यह जानते है कि दान लेने मे ब्राह्मण जाति दब्बू नही बनी। वह दान ले लेती थी, उसकी परिपूर्ति के लिए दक्षिणा भी ले लेती थी और यजमान की जरा-सी गल्ती पर क्रोध करके शाप देने के लिए भी उद्यत हो जाती थी। दान देनेवाला नम्र होकर दान देता था, सकोच के साथ दान देता था और शोभा तथा शुभ भावना के साथ दान देता था। उसे सकोच यह होता था कि जो-कुछ मै दे रहा हू, वह बहुत कम है और उसका मूल्य भी बहुत अल्प है। इसलिए वह डरते-डरते दान देता था। छान्दोग्योपनिषद् मे "श्रिया देयम्, भिया देयम्, सविदा देयम्," ऐसा आदेश है। जो कुछ देना है, उसमे व्यवहार की सुन्दरता (ग्रेस), अपने दान की अल्पता का भान और लेनेवाले की प्रतिष्ठा का खयाल अवश्य होना चाहिए। दान मे 'श्री' वह भावना है, जिसे हम अग्रेजी मे 'ग्रेस' कहते है। दाता के लिए इतनी कडी मर्यादाए थी और लेनेवाले के लिए भी कुछ मर्यादाए बतलाई गई थी। फिर भी हमने देखा कि ब्राह्मण दब्बू बनने के बदले घमडी, उद्दड और आत्म-सभावित बन गया। उसका पतन हुआ। उसने उपयोगी वस्तुओ का तथा द्रव्य का दान लिया, इसलिए वह परोप-जीवी बन गया। जहा उसने जमीन का दान लिया, वहा प्रत्यक्ष उत्पादन का काम स्वय नही किया। इन दोषो के कारण धीरे-धीरे समाज मे से उसकी प्रतिष्ठा नष्ट होती चली गई जो सर्वथा उचित ही हुआ।

विनोबा का 'दान'-विचार

परन्तु विनोबा के इस दान मे न अन्न-दान का समावेश है और न वस्तु-दान का। किन्तु उत्पादन के साधन और उत्पादन के उपकरणो का दान है। यदि हम थोडी देर के लिए यह मान ले कि प्राचीन दान के सिद्धान्त के मूल मे जितनी भावनाए थी, वे सब इस दान के पीछे भी है तो भी उस दान में और इस दान मे उत्तर-दक्षिण ध्रुव का अन्तर पड जाता है। क्योकि यह दान उत्पादन के साधनो का है, उपयोग की वस्तुओ का नही। इसमे परपरागत दान के सभी गुण तो है, लेकिन उसका दोष एक भी नही है।

क्रांति की दिशा में

परम्परागत दान मे और इस दान मे और भी एक मूलगामी अतर है। परम्परागत दान व्यक्तिगत पुण्य-प्राप्ति के लिए और ऐश्वर्य तया वैभव की आकाक्षा से किया जाता था। इस लोक मे हम जो दान ब्राह्मण को या दूसरे सत्पात्र व्यक्ति को देते है, उसके बदले हमे स्वर्ग-लोक मे या दूसरे जन्म में प्रभूत सम्पत्ति का लाभ होगा, ऐसी श्रद्धा से वह दान दिया जाता था। इस लोक मे एक गाय का दान कर दिया तो स्वर्ग-लोक मे साक्षात् काम-धेनु के अक्षय पुष्टि-दायी दूध का लाभ हमे होता था। यहा थोडी-सी जमीन का दान कर दिया तो अगले जन्म मे सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त होने की आशा रहती थी। परन्तु विनोबा की दान-प्रक्रिया अधिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए नही है, वरन् प्राप्त सपत्ति के शीघ्रातिशीघ्र विसर्जन के लिए है। इसलिए विनोबा की दान-प्रक्रिया आर्थिक क्रांति के मार्ग पर बहुत बडा कदम है।

एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि "हम जिस वस्तु का दान लेते है, उस वस्तु पर दाता का स्वामित्व स्वीकार कर लेते है। परन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि आज जिससे हम दान लेते है, वह उस वस्तु का स्वामी नही बल्कि अपहर्ता है। अपहर्ता का स्वामित्व हम क्यो मजूर करे?"

क्रांति का मूल बीज

झपटी और जोर-जबरदस्ती अनिवार्य ही है ? जो ऐसा मानते है कि बगैर हिंसा के क्राति हो ही नही सकती, वे हिंसा को अनिवार्य ही नही, बल्कि आवश्यक मानते है। इसका तो यह मतलब हुआ कि जितनी हिंसा अधिक होगी, उतनी क्रांति भी अधिक सफल होगी। परतु यह अपसिद्धान्त है। जो क्रातिवादी अहिंसा का आग्रह नही रखते, वे भी इस सिद्धान्त को हरगिज नही मानेगे। हमारी ही चीज अगर कोई भलेमानस की तरह सभ्यता और शोभा के साथ लौटा देता है, तो उसमे उसका श्रेय है और हमारी प्रतिष्ठा है। क्रातिवादियो में भी कुछ परपरा के गुलाम और जीर्णमतवादी होते हैं। जो यह मानते है कि बगैर लडाई-झगडे के परस्पर सम्मति से जो सामाजिक स्थित्यतर होता है वह क्राति नही है, वे दकियानूसी है। क्राति मे महत्व सामाजिक परिवर्तन का है, न कि सघर्ष और रक्तपात का।

इस देश की रियासतो के राजाओ ने अपनी-अपनी रियासतें बगैर लडाई-झगडे के दे दी। तो क्या इससे देश की हानि हुई ? क्या हमको उन्हे यह कहना चाहिए था कि जबतक हम तुम्हारी रियासतें तुमसे छीनकर नही लेगे, तबतक हमारा उद्देश्य सफल नही होगा ? हमने ये रियासते उनसे इनाम या भिक्षा के रूप में नही ली है। उन्होंने युग की आकाक्षा तथा हमारी सामर्थ्य को पहचाना और अपना कब्जा छोड दिया।

'दान' ही 'सम्प्रदान'

जो सपत्तिधारी है, उनको हम सपत्ति के मालिक नही मानते। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि सपत्ति आज उनके कब्जे में है। उन्हे हम कब्जा छोड देने को कहते है। अगर वे समझाने-बुझाने और विनय-अनुनय से ही मान लेते है, तो उतने से क्राति मे दोप कहा पैदा होना है ? अगर आगन मे लगे हुए अकौए के पेड से शहद मिल सकता हो तो पहाड छानने की जिद करने में कौन-सी समझदारी है ? क्रान्तिकारी को सम्पत्ति के परिहरण से मतलब है या उसके विसर्जन से ? परिहरण के बदले स्वेच्छा-प्रेरित समर्पण और उत्सर्ग से यदि सपत्ति का विसर्जन हो जाता है तो क्राति मे कौन-सी त्रुटि रह जाती है ? ऐसी स्थिति मे परिहरण का आग्रह रखना वैचारिक सम्भ्रम

का द्योतक है। हां, हम अपनी असमर्थता और दुर्बलता के कारण आज दान के मार्ग की शरण लेते हैं तो हमारी क्रिया क्रांति के प्रतिकूल होगी। परन्तु यदि हमारी शक्ति और कालात्मा के पद-चिन्हों को पहचानकर सम्पत्ति-धारी अपनी सम्पत्ति समाज को अर्पण कर देते हैं, तो लेनेवाला और देनेवाला, दोनों धन्य हो जाते हैं। ऐसा 'दान' केवल देने की क्रिया-मात्र है। इसमें देनेवाले की और लेनेवाले की भूमिका में कोई भेद नहीं रहता। लेनेवाले की भूमिका गौण नहीं हो जाती। दो बराबरी के आदमी जब एक-दूसरे को उपयोग की कोई वस्तु देते हैं तो दोनों कृतज्ञ होते हैं और एक-दूसरे को धन्यवाद देते हैं। इस प्रकार विनोबा की यह दान-दीक्षा उभय पक्षों को धन्य-धन्य करनेवाली है। यह 'दान' वास्तव में 'सम्प्रदान' ही है।

पुराणप्रिय क्रांतिवादियों को चुनौती

जाता है। जिसमें प्रतिक्राति की आशका बिलकुल न रहे या अल्पतम रहे ऐसा अमोघ क्राति-तत्र दुनिया के परम्परानुगामी क्रातिवादी अबतक नही खोज पा े है। विनोबा ने स आदोलन के रा प्रतिक्राति की आशका से सुरक्षित क नये क्रातितत्र का उपक्रम किया है। क्या इसमें क्रातिवादियो की पुराण-प्रियता को चुनौती नही है ?

आज दान का मुहूर्त्त, कल सम्पत्ति-विसर्जन

देश मे सम्पत्तिमानो के दो वर्ग है। क बडे मालिक और दूसरे छोटे मालिक। जो बडे मालिक है, उन्हे हम अमीर कहते है और जो छोटे-छोटे मालिक है, उनको हम गरीबो मे शुमार करते है। लेकिन वे भी उत्पादन के साधनो के मालिक तो है ही। बडे मालिको और छोटे मालिको में एक बहुत बडा अन्तर यह है कि बडे मालिक मुनाफाखोरी करते है और दूसरो के श्रम से लाभ उठाकर अपनी सम्पत्ति बढाते है। सलिए बडे मालिको के लिए दान की प्रक्रिया है। उन्हे यह समझ लेना चाहि कि भूदान-यज्ञ का यह आन्दोलन दान का एक सग नही है, वह दान की एक प्रक्रिया है। दान का मुहूर्त्त आज ही है, लेकिन दान का सिलसिला तबतक जारी रहेगा, जबतक कि वे अपनी पूरी सम्पत्ति का विसर्जन नही कर चुकेगे।

दान की इस प्रक्रिया की अवधि भी बहुत अल्प है। पुराने जमाने में राजाओ के राज-महलो मे दान की अवधि 'सवा-पहर' की होती थी। 'सवा-पहर' उपलक्षणात्मक है। आशय यह है कि जितनी जल्दी सम्पत्ति का विसर्जन सम्पन्न होगा, उतनी जल्दी हम अपने देश को और ससार को भावी अनर्थ से बचा सकेगे। सम्पत्ति का यह विसर्जन विनय-पूर्वक, मन -पूर्वक, और बुद्धि-पूर्वक होना चाहिए, तभी उसमे से हमारे उद्दिष्ट परिणाम निकलेगे। उसमें किसी प्रकार का सदेह या अश्रद्धा नही होनी चाहिए। मागनेवाले को टाल देने की नीयत से जो दान दिया जायगा, उससे दूना अनर्थ होगा। देनेवाले की अप्रतिष्ठा होगी और लेनेवाले का मनस्ताप शान्त नहीं होगा, बल्कि बढेगा। सामाजिक प्रशम (प्रशान्ति) का जो वातावरण विनोबा इस देश मे बनाना चाहते है, उसमें बाधा पहुचेगी

और सार्वत्रिक हानि होगी। इसलिए सम्पत्तिमानों से सविनय अनुरोध है कि वे अपनी सम्पत्ति का विसर्जन शांतिमय क्रांति सिद्ध करने की भावना से करें।

जो बोया सो पाया

धार्मिक क्षेत्र में जो दान किया जाता है, उसके विषय में हमारा यह अनुभव रहा है कि यजमान अल्प-से-अल्प तथा निकृष्ट-से-निकृष्ट वस्तु का दान करता है और उसके बदले में उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट फल चाहता है। रेज-गारी में आये हुए खोटे सिक्के यथाशक्ति द्रव्य-दान के नाम पर भगवान् के चरणों में वह चढ़ाता है और उसके बदले में बड़ा पुण्य चाहता है। भगवान् बेचारे अदृष्ट और अदृश्य हैं, इसलिए उस क्षेत्र में ऐसी धांधली चल जाती है। लेकिन इस दुनिया में सौदा नकद है। यहां, 'बुवा सो लुनिय, लहिय जो दीन्हा'—(जो बोया सो काटो, जो दिया सो पाओ) का प्रत्यय बहुत जल्दी आता है।

सहयोगी उत्पादन की भूमिका

यज्ञ की प्रक्रिया

हमे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गरीबो में आपस के स्वार्थो का सघर्ष न हो। एक गरीब के पास तीन एकड जमीन है, दूसरे के पास एक एकड है और तीसरे के पास शून्य एकड है। इनमे किसी की भी गुजर नही होती, तब वे आपस मे बैठकर यह तय करते है कि यह सारी जमीन हम सबकी है। इस तरह से वे अपनी-अपनी मिलकियतो को एक-दूसरे के साथ मिला लेते है। इसके लिए उन्हे अपनी मिलकियत छोड देनी पडती है। इसका नाम 'यज्ञ' की प्रक्रिया है।

हम बडी-बडी मिलकियतो को बिखेरकर सबको मालिक बना देना चाहते है। यह दान की प्रक्रिया है। लेकिन हमारा यह उद्देश्य नही है कि बडे-बडे मालिको की जगह छोटी-छोटी मिलकियतो का एक जाल बिछा दे। मिल्कियतो को बिखेरना हमारा पहला कदम है। वह हमारा मुकाम नही है। वह हमारी छत्री है, छप्पर नही है। हम मिलकियत को ही खतम कर देना चाहते है। इसलिए छोटे-छोटे मालिको से अपनी-अपनी मिलकियते जोड लेने के लिए कहते है। बडी मिलकियतो को तोडने के लिए 'दान' है और छोटी मिलकियतो को जोडने के लिए 'यज्ञ' है।

अन्यतम क्रांति-तन्त्र

इस क्राति-तत्र की यह अन्यतम विशेषता है कि उसमें वर्ग-कलह के बिना वर्ग-निराकरण का निश्चय है, प्रतिक्राति के प्रतिबध की योजना है और किसान-किसान तथा किसान-मजदूर के अन्तर्गत सघर्ष को टालने की विवेक-युक्त व्यवस्था है। यह आदोलन एक अपूर्व प्रक्रिया के द्वारा क्राति को सम्पन्न करने का एक अमोघ साधन और निश्चित आश्वासन है।

: ४ :

वर्ग-निराकरण की प्रक्रिया

मैं ऐसा मानता हू कि हमारे देश मे भी वर्ग है। हरेक वर्ग के व्यक्ति बदलते रहते हैं और बदल सकते है, इसलिए यह कहना सयुक्तिक नही होगा कि वर्ग है ही नही। जिस समूह के व्यक्ति बदलते है, उसी को 'वर्ग' कहना चाहिए। यदि ऐसा न होता तो वह समूह 'जाति' कहलाता। जाति जन्म पर निर्भर है। इसी कारण जाति-निराकरण तबतक असभव है, जबतक हम जन्म की ही परिस्थिति मे परिवर्तन नही करते, याने सजातीय विवाह निषिद्ध नही करार देते। वर्ग के विषय मे यह बात नही है। आज का अमीर कल गरीब बन जाता है, आज का गरीब कल अमीर बन जाता है। इसमे कर्तृत्व के लिए अवसर है, लेकिन वह समाज-व्यवस्था के कारण सीमित है। वास्तव मे सबको समान अवसर नही मिलता। जो अमीर की गोद मे पैदा होता है, उसे सामाजिक प्रतिष्ठा तथा कौटुबिक सुख-सुविधा बिना प्रयत्न के ही उपलब्ध हो जाते है। सम्पत्ति और दारिद्र्य व्यक्ति को विरासत मे प्राप्त होते है।

वर्ग-निराकरण के बिना साम्ययोग असभव

के कारण परिस्थिति की जो विरासत हरेक व्यक्ति को मिलती है, वही आर्थिक विषमता की जड है। जो व्यवसाय व्यक्ति के अथवा विशिष्ट समुदाय के मुनाफे के लिए किया जाता है, उसे पापमूलक समझना चाहिए। यदि अनुत्पादक व्यवसाय व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता हो, तो उसे अधिक वडा पाप मानना चाहिए। ये व्यवसाय विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति पर अवलम्बित है। इसलिए जो लोग ये व्यवसाय करते है, उनका एक वर्ग वन जाता है। अतएव वर्ग-निराकरण के विना साम्ययोग की स्थापना असभव है।

अच्छाई और बुराई का वर्गीकरण अनर्थकारक

समझदार और मूर्ख, सज्जन और दुर्जन के वर्ग मानना न केवल अशास्त्रीय ही है, अपितु अनर्थावह भी है। अच्छाई और बुराई गुण है। उनका सम्बन्ध वाह्य साधनो से और व्यवसायो से कम मात्रा मे है। व्यवसाय के कारण कभी-कभी समाज-विरोधी भूमिका प्राप्त होती है। उससे वृत्ति भी दूषित होती है। परन्तु व्यवसाय के कारण जो सज्जनता और दुर्जनता की भूमिका प्राप्त होती है, उसके आधार पर हमे व्यक्तियो को सज्जन या दुर्जन नही मानना चाहिए। कसाई का धधा करनेवाला भी वडे दिल का और दयालु हो सकता है। फासी की सजा पर अमल करनेवाले व्यक्ति निर्वृण (वेहया) भले ही हो, लेकिन उनकी गिनती दुष्टो मे नही की जा सकती। जो अपने-आपको साधु या सज्जन मानता है, उस अहकारी व्यक्ति के वरावर अधम और कौन है? हम जव वस्तुनिष्ठ दृष्टि से और तटस्थ भाव से देखते है तो कुछ व्यक्तियो की दुष्टता अल्प मात्रा मे दिखाई देती है और कुछ व्यक्तियो मे सज्जनता अल्प मात्रा मे पाई जाती है। समाज मे सज्जन और दुर्जन, मूर्ख और सुजान, उदार और कृपण व्यक्ति है। परन्तु सज्जनता और दुष्टता, मूर्खता और सयाणा इत्यादि गुण वाह्य उपकरणो पर और साधनो पर अल्प मात्रा मे निर्भर है और समाज मे हम सारे नियम सज्जनता के विकास के लिए ही वनाते है। इसलिए

सज्जन और दुर्जन, मूर्ख और सयाने, इस तरह का वर्गीकरण करना अत्यन्त अनर्थकारक साबित होगा।

सज्जन और दुर्जन, मूर्ख और सयानो मे प्रत्यक्ष व्यावहारिक स्वार्थ-विरोध निर्माण नही होता। सज्जन को अपना सौजन्य बढाने के लिए दुर्जन की दुर्जनता से फायदा उठाने की जरूरत नही होती। सयाने को अपने सयापे के सरक्षण के लिए दूसरे की मूर्खता बनाये रखने की योजना नही करनी पडती।

आर्थिक और गुणाश्रित विषमता का निराकरण

इस प्रकार आर्थिक विषमता और गुणाश्रित विषमता मे मूलभूत अन्तर है। आर्थिक विषमता विशिष्ट सामाजिक रचना, परम्परा तथा परिस्थिति पर आधार रखती है। गुणाश्रित विषमता का निराकरण आत्म-शक्ति से हो सकता है।

अमीरी प्राप्त करने के लिए भी त्याग और परिश्रम की आवश्यकता होती है। परन्तु वह त्याग और परिश्रम व्यक्तिगत लाभ, प्रतिष्ठा और स्वार्थ के हेतु किये जाते है। इसलिए वे समाज-विघातक सिद्ध होते है। यह तप, आसुरी तप कहलाता है।

वदौलत आसुरी सम्पत्ति की सत्ता शुरु हो जाती है। अत जबतक अमीरी और गरीबी का अन्त नही होगा, तबतक मनुष्यता का सरक्षण असभव है।

दान और यज्ञ में बंधुत्वमूलक प्रक्रिया

अमीरी और गरीबी की बदौलत मनुष्य मनुष्य से दूर पड जाता है। इसीलिए हम अमीरी और गरीबी का अन्त कर देना चाहते है। स्पष्ट है कि अमीरी और गरीबी के निराकरण की प्रक्रिया भी मनुष्यता और बन्धुत्व का विकास करनेवाली होनी चाहिए। यह गुण विनोबा की दान-यज्ञ-प्रक्रिया मे है। बन्धुत्व पर अधिष्ठित आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए सम्पत्ति और भूमि के पुनर्वितरण की प्रक्रिया भी बन्धुत्वमूलक होनी चाहिए। तभी वह सम्पत्ति सार्वजनिक अथवा अखिल मानवीय होगी।

आसुरी सम्पत्ति प्रभुत्व की भावना पर आधार रखती है। दैवी सम्पत्ति कल्पित वाद से कलुपित होती है। परन्तु मानवीय सस्कृति श्रम पर आधार रखती है, इसलिए उसमें बन्धुत्व के दो आचारात्मक तत्वो का अर्थात् दान और यज्ञ का महत्व है। असुरो की मदिरा मे मादकता है, देवो के अमृत मे केवल मिठास है, बहुत मीठा खाने मे मुह मीठा हो जाता है। परन्तु श्रमनिष्ठ उत्पादन-पद्धति से उपार्जित हमारे अन्न में अद्भुत स्वाद होता है। उसमे जीवन के सारे रस और धरतीमाता का समूचा सौरभ होता है।

: ५ :

क्रांति के बीज

गरीबो से दान क्यो ?

कुछ ऐसे तटस्थ समाज-सेवक जिनके मन मे गरीबो के साथ सहानुभूति है और जिनका सम्बन्ध किसी राजनैतिक दल या आर्थिकवाद से नही है, अक्सर पूछते है कि "भूदान-यज्ञ मे गरीबो से दान क्यो लिया जाता है ? गरीबो के पास तो पहले ही इतना थोडा है कि जिससे उनका पेट तक नही भरता। तो फिर उनसे मागने से क्या मतलब ? गरीबो को और भी गरीब बनाने से क्या फायदा !

बेड़ी तोड़ने का सकेत

मिलकियत के विसर्जन का संकेत

मिलकियत की आकाक्षा आर्थिक विपमता की जड है। आज का गरीव खुद अमीर वनना चाहता है। वह गरीबी और अमीरी का निराकरण नही करना चाहता। इसलिए उसके मन मे अमीरो के लिए ईर्ष्या और द्वेष है। लेकिन अपने मे अधिक गरीव के लिए सहानुभूति नही है। हरेक गरीव अपने लिए अमीरी चाहता है, सबके लिए नही। अगर वह सबके लिए अमीरी चाहता है, तो उसे अपनी मिलकियत अपने से अधिक गरीव आदमियो के साथ बाट लेनी चाहिए। जब वह अपनी छोटी-सी मिलकियत मे से भी नैवेद्य की तरह थोडा-सा हिस्सा राष्ट्र को अर्पित कर देगा तब वह अपनी अल्प सम्पत्ति मे सपत्तिहीनो को शामिल करने का संकेत करेगा।

मूल पर कुल्हाड़ी

जिसके पास धन होता है, उसके मन मे दूसरो के लिए डर और अविश्वास होता है। मेरे शरीर पर अगर सोने के गहने हो तो मै निर्भय होकर रास्ते से नही चलता और घर मे भी निर्भय होकर नही सोता। दूसरो से डरता रहता हू। इसलिए अमीर का डर तो हमारी समझ मे आता है, लेकिन गरीब को किस बात का डर है? क्या किसी कैदी को यह डर होता है कि कोई मेरी वेडी न चुरा ले या छीन ले? या कोई मेरे जेलखाने को न लूट ले? जो एक एकड, दो एकड और आध एकड के मालिक है, वे भी तो भूखे और नगे है। उनकी मिलकियत अगर कोई छीन ले या चुरा ले तो वह वेडी और हथकडी ही चुरायेगा। फिर भी हम देखते है कि छोटे मालिक को अपनी मिलकियत के खो जाने का डर है। जबतक वह इस मिलकियत के मोह का त्याग नही करता, तबतक पूजीवाद के मूल पर कुल्हाडी की चोट नही पडेगी।

मिलकियत के विसर्जन की प्रक्रिया

बडा मालिक जब सगठन शुरू करेगा तो छोटे मालिको से कहेगा कि अगर मेरे पचास एकड जायेगे तो तेरे पाच एकड भी कहा रहेगे? जिनके

पास कुछ भी नही है, वे तेरे पाच एकड छीन लेगे। छोटा मालिक उनके चकमे मे आ जाता है और मिलकियत के मोह के कारण पूजीवाद के जाल मे फस जाता है। लेकिन अगर पाच एकड वाला कह दे कि यह लो, यह छोटी मिलकियत मैंने फेक दी, तो वह पूजीवाद की जड ही उखाड देता है।

आखिर जहा सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण कानून से और शासन से किया जाता है, वहा भी छोटे मालिको की मिलकियत छीन लेनी ही पडती है। उत्पादन के साधनो की व्यक्तिगत मिलकियत खत्म करने के लिए गरीब की मिलकियत भी छीननी पडती है। अहिंसक प्रक्रिया मे भी अपरिग्रह की भावना बडे मालिक और छोटे मालिक, दोनो को स्वीकार करनी पडती है, इसलिए दोनो को अपनी-अपनी मिलकियत का उत्सर्ग करने की प्रेरणा होनी चाहिए। गरीबो से जो दान लिया जाता है, उससे से यह प्रेरणा होती है। गरीबो का दान मिलकियत के विसर्जन की प्रक्रिया का आरम्भ है।

जोड़नेवाली कडी

दान मे मिलकियत का वटवारा होगा। धन और धरती की मिलकियत वट जायगी। लेकिन मिलकियत के ही विमर्जन की क्रान्ति गरीब के दान से होगी। गरीब के दान मे क्रान्ति के बीज का गुण-धर्म होगा। इसलिए अहिंसात्मक क्रान्ति की प्रक्रिया मे गरीब के स्वामित्व के उत्सर्ग का महत्व मूलभूत है।

मूल प्रेरणा

आखिर सशस्त्र क्रान्ति में भी क्रान्तिकारी सिपाही की ताकत उसकी वर्दी और हथियार मे नही होती। उस वर्दी के पीछे छिपी हुई छाती की धडकन में होती है। इस धडकन का नाम भावना है। साम्यवादियो का यह दावा है कि क्रान्ति की भावना और प्रेरणा से ही रूस के सिपाहियो की अभेद्य छातियो ने क्रान्ति के दुर्ग का सरक्षण किया। भावना जितनी शुद्ध और उदात्त होगी, क्रान्ति के सैनिक की शक्ति भी उतनी ही अमोघ होगी। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन है। वह शोषित और दलित वर्ग का उत्साह और वीरता वढानेवाला है। वह क्रान्ति का विरोधी नही है। विरोधी है, रक्तपात, क्रूरता और हृदय-हीनता का।

क्या यह राष्ट्रीयकरण नही है?

एक वात और हमेशा कही जाती है कि वडे-वडे सामन्तो की और भूमिपतियो की जमीनो का राष्ट्रीयकरण करके उन्हे छोटे किसानो और भूमिहीनो मे बाट देना चाहिए। ये जमीने उनके मौजूदा मालिको से वगैर मुआवजे के जब्त कर लेनी चाहिए। इसमे अमली तत्व की वात जब्त करने की नही है। तत्व की वात यह है कि ये जमीने वडे आदमियो से राज्य अपने कब्जे में ले ले और वगैर मुआवजे के ले ले। फिर राज्य उनका बट-वारा करे। इस तरह का बटवारा अगर राज्य की तरफ से होगा, तो वह दान होगा और उसके लेने से गरीब की शान मे कोई बट्टा नही लगेगा।

गैर-सरकारी राष्ट्रीयकरण

आखिर भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया का नतीजा यही नही तो और क्या

है ? बडे आदमियो से जो दान लिया जाता है, उसके बदले मे उन्हे क्या मिलनेवाला है ? उनसे तो बगैर मुआवजे के ही उनकी करीब-करीब सारी जमीन विनोबा माग रहे है न ? यह दान एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपनी मर्जी से नही देता। वह तो विनोबा को देता है। विनोबा व्यक्ति नही है, दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि है। वे भी अपनी मर्जी से किसी व्यक्ति को जमीन नही देते। सबके सामने भूमिहीनो की सलाह से भूमिहीनो को देते है। यह सरकारी राष्ट्रीयकरण नही तो और क्या है ? इसमे जोर-जबरदस्ती और जल्दी नही है, इसलिए क्या स्वरूप और गुण बदल जाता है ?

क्या यह मिट्टी-फंड है ?

कुछ आक्षेपको ने तो यहा तक कह डाला कि "कस्तूरबा गाधी-फंड और गाधी-स्मारक-निधि की तरह यह भी एक फंड है और उन फडो का जो हाल हुआ वही इस मिट्टी-निधि का भी होगा।" अगर यह आक्षेप गम्भीरता-पूर्वक न किया जाता तो उसकी तरफ ध्यान देने की जरूरत न होती।

: ६ :

ऊसर ज़मीन के दान का आक्षेप

एक आक्षेप बार-बार किया जाता है कि भूमि-दान-यज्ञ में जो जमीन मिलती है, उसमें से बहुत-सी जमीन बंजर, ऊसर और बेकार होती है। देनेवाले अपनी जान छुड़ाने के लिए और झूठी शोहरत कमाने के लिए इस तरह की फालतू जमीन दे देते हैं। उनकी इज्जत होती है और हमारा काम नहीं होता।

वस्तुस्थिति यह नहीं है

सुनने में यह आक्षेप सही मालूम होता है, लेकिन उसमें सचाई का अंश बहुत कम है। क्या बिहार में विनोबा को जिन्होंने लाख-लाख एकड़ जमीन दी है, वह सब-की-सब ऊसर और निकम्मी है? जिनके पास इतनी जमीन थी, उसमें से कुछ पड़ती जरूर रही होगी। लेकिन इतने से वह ऊसर या बंजर नहीं कही जा सकती। बड़े-बड़े मालिकों ने जिस प्रकार विनोबा को जमीन दी है, उसी प्रकार छोटे-छोटे किसानों ने भी दी है। इन छोटे किसानों के पास तो कोई ज्यादा जमीन नहीं थी। उन्होंने अपनी जोतकाश्त जमीन में से ही जमीन दी। कई लोगों ने अपनी जमीन का आधा, तिहाई, चौथाई और छठवां हिस्सा दिया है। बिहार में और दूसरे प्रांतों में भी भूदान में चार-चार, पांच-पांच हजार रुपये फी एकड़ कीमत की जमीन मिली है। भूदान-कार्यकर्ताओं का ऐसा अनुभव नहीं है कि बेकार जमीन ही अधिक मात्रा में मिलती है। इसलिए यह कहना बहुत गलत है कि भूदान में बेकार जमीन ही अधिक मिलती है।

काम थोड़े ही रुकेगा ?

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भूमि-दान की अभी तो पहली किस्त ही वसूल की जा रही है। १९५४ तक सारे देश के लिए पचीस लाख का लक्ष्य रखा गया है, लेकिन १९५७ तक पाच करोड एकड जमीन भूदान मे इकट्ठी करनी है। उत्तर प्रदेश मे पाच लाख का लक्ष्य पूरा हो जाने पर भी काम बन्द नही हुआ। अब एक करोड का लक्ष्य है। बिहार मे एक-एक जिले मे तीन-तीन लाख एकड जमीन इकट्ठी करने के सकल्प किये गये है। इतनी बजर और ऊसर जमीन कहा से आयगी ? पहली किस्त मे बजर और ऊसर जमीन भले ही मिल गई हो, परन्तु जबतक पाच करोड का लक्ष्य पूरा नही होगा, तबतक भूदान का काम नही रुकेगा। अगली किस्त मे अच्छी जमीन भी आने ही वाली है।

मिलकियत ढीली पड रही है

समय धोखा नही खाता

जो लोग अत्यन्त स्थूल लाभ और हानि की दृष्टि मे विचार करते है, उनमे भी हमारी एक विनय है। जो छोटे-छोटे मालिक है और खुद जमीन जोतते है, उनके पास जैसी जमीन है, उसीमे मे वे देते है। उन्हे तो हम कोई दोष नही दे सकते। जिसके पास चने है, वह चने ही देता है। वह मोतीचूर कहा से लाये ? हमारे लिए तो उसका चना ही मोतीचूर है। लेकिन जो लोग मोतीचूर अपने पास रखकर विनोबा को चने देते है, उससे भी विनोबा का क्या नुकसान होता है ? वे लोग वक्त टाल देने के लिए और मुह रखने के लिए चाहे जैसी जमीन दे देते होगे, लेकिन इससे न तो वक्त टलता है, न इज्जत बचती है। लोग देखते है कि गरीबो ने तो अपनी अपनी खेती की जमीन मे से विनोबा को दान मे यथाशक्ति जमीन दी, लेकिन बडे आदमियो ने अपनी बेकार जमीन मे से जमीन देकर दान का स्वाग किया। इससे गुनाह बेलज्जत हो जायगा। दान का दान होगा और ऊपर से बदनाम होगे। तब बिगडी हुई बनाने के लिए फिर अच्छी जमीन देनी ही पडेगी। पुण्य-कार्य मे सफलता और कार्यहानि जैसी कोई चीज है ही नही।

: ७ :

ज़मीन पानेवाले का गौरव

ज़मीन

कुछ लोगों को लगता है कि भूदान-यज्ञ-आंदोलन में दाता की प्रतिष्ठा बढ़ती है। वह जमीन देता है, इसलिए लोगों के सामने उसका नाम आता है। दूसरे लोगों से उसका अनुकरण करने के लिए कहा जाता है। लोग उसे धन्यवाद देते हैं। जो कार्यकर्ता जमीन के दान-पत्र प्राप्त करता है, उसकी भी प्रशंसा और गौरव होता है। इन दोनों को तो पुरुषार्थ और प्रतिष्ठा के लिए अवसर यह आन्दोलन देता है, लेकिन जो जमीन पाता है, वह तो केवल प्रतिग्रह करता है। उसके लिए न तो पुरुषार्थ का अवसर है और न प्रतिष्ठा का।

बल-प्रयोग में भी यही दोष

कानून की प्रक्रिया में भी वही दोष

दूसरा पर्याय यह है कि राज्य कानून बनाकर मालिको की और बडे किसानो की अतिरिक्त जमीन जब्त कर ले और उसे छोटे किसानो मे तथा खेती के मजदूरो में बाट दे। इसमे भी जो लोग जमीन पायगे, उनके पराक्रम के लिए जगह नही है। राज्य कानून से लेगा और उनको दे देगा। वे तो केवल दान-पात्र ही रह जाते है।

पानेवाले की क्या इज्जत ?

मतलब यह कि भूमिदान-यज्ञ-आन्दोलन मे जो दोष बतलाया जाता है, वही भूमि छीनने की या भूमि जब्त करने की प्रक्रिया मे भी मौजूद है। अर्थात् अगर वह दोष है तो सभी प्रक्रियाओ के लिए समान दोष है। अकेले भूमिदान-आन्दोलन-प्रक्रिया का ही वह दोष नही है। इतना फर्क जरूर है कि शस्त्र-प्रयोग की प्रक्रिया मे जमीदारो या मालिको की इज्जत नही होती, इज्जत छीननेवालो की होती है। परन्तु ये छीनने-वाले भी छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर के तो उद्धारकर्त्ता ही माने जाते है। इससे उस बेचारे का रुतबा क्या बढा ?

मूलभूत विचार-दोष

असली बात यह है कि इस आक्षेप के मूल मे एक विचार-दोष है। जिसका अधिकार छीना गया है,उसका अधिकार उसको वापस मिल जाता है, इसीमें उसका गौरव है। मेरे घर अगर चोरी हो गई और पुलिस ने तहकी-कात के बाद चोरी पकड ली, और मेरी चीज मुझे लौटा दी तो क्या यह मेरा गौरव नहीं है ? अब इससे अधिक गौरव मेरा क्या हो सकता है ? या फिर चोर ही थोडी देर के बाद होश में आ जाय और लोकलाज, पश्चात्ताप या समझदारी के कारण अथवा किसी के समझाने-बुझाने से मेरी चीज लौटा दे, तो क्या इसमे मेरी इज्जत नही है ? जिसकी चीज खो गई है या छिन गई है, उसकी चीज उसे वापस मिल जाती है, इतना ही काफी है। चीज जिसके कब्जे मे है वह अगर समझदारी से काम

लेता है और बगैर रगडे-झगडे के चीज लौटा देता है तो हम उसे बधाई जरूर देंगे। कोई शराबखोर अगर कानून के बिना और जोर-जबरदस्ती के बिना शराब पीना छोड दे, तो क्या हम उसके प्रति सतोष नही प्रकट करेंगे ?

इस प्रक्रिया की विशेषता -

भूदान-यज्ञ-आदोलन मे भी यही होता है। इसके अलावा एक बात और होती है। जिसने अनधिकृत रूप से केवल परम्परागत अर्थ-व्यवस्था के आधार पर सम्पत्ति पाई है, वह अपनी अन्यायमूलक मिलकियत के दोष को समझने लगता है और उस अन्याय का परिमार्जन करने लगता है। इस हृदय-परिवर्त्तन का मूल्य अपरिमित है।

परिश्रम का उचित गौरव

एक क्रिकेट का अच्छा खिलाडी है, एक व्यक्ति वीणावादन-पटु है और एक बहुत प्रवीण लेखक है। आपको इनमे से हरेक का गौरव करना हो तो किस प्रकार करेंगे ? जो क्रिकेट-पटु है,

निधि की हैसियत से कानून के आधार पर जब भूमि ले लेता है, तो उसी भूमि का 'राज्यकरण' होता है। वह प्रक्रिया 'राज्यस्वामित्व' की है, 'लोक-स्वामित्व' की नहीं। 'लोक-स्वामित्व' की प्रक्रिया में भूमि का संग्रह लोक-प्रतिनिधि करेंगे। जो मालिक अपनी मिलकियत का उत्सर्ग करना चाहते हैं, उनके भी प्रतिनिधि होंगे और जिन श्रमिकों को वह जमीन मिलनी है, उनके भी वे प्रतिनिधि होंगे। विनोबा इस प्रतिनिधित्व के 'प्रतीक' मात्र हैं। यह 'लोक-स्वामित्व' की स्थापना की अद्भुत कल्याणकारी प्रक्रिया है। इसमें दोनों धन्य होते हैं—देनेवाला भी, पानेवाला भी।

पानेवाले का सार्वजनिक सम्मान

हमारे आक्षेपक मित्र अगर चाहें तो प्रसंगोचित समारोह करके भूमि-हीनों को नारियल, सुपारी तथा अक्षत के साथ जमीन दे सकते हैं। उससे जो वातावरण पैदा होगा, उसके कारण जमीन पानेवाले के मन में कृतज्ञता के साथ-साथ आत्मसम्मान की भावना भी पैदा होगी।

अमरत्व की तरफ जाने की व्यवस्थित चेष्टा का नाम साधना है। अत हमारे लिए जीवन एक सिद्ध वस्तु या बनी-बनाई चीज नही है। जब हम पैदा होते है, तब अपने साथ कुछ लेकर आते है। उसके बाद हम कुछ बनने की लगातार कोशिश करते है। हम कुछ है और कुछ बनना चाहते है। जो कुछ हम बनना चाहते है उसकी तरफ कदम बढाने का नाम ही साधना है। अन्याय के प्रतिकार के क्षे में मनुष्य ने अपने मानवीय गुणो का विकास करने का जो प्रयास किया है उसी मे से सत्याग्रह का आविष्कार हुआ है।

सत्याग्रह का आविष्कार

यहा 'आविष्कार' शब्द उसके दोनो अर्थों में काम मे लाया गया है। हिन्दी मे 'आविष्कार' शब्द का चलित अर्थ है 'खोज' या 'शोध', जिसे अग्रेजी में 'डिस्कवरी' कहते है। अन्य भारतीय भाषाओ मे 'आविष्कार' का अर्थ 'प्रकट होना', 'बाहर दिखाई देना', 'अभिव्यक्त होना'। अग्रेजी में भी 'डिस्कवर' शब्द का दूसरा अर्थ है 'अपने आपको प्रकट करना', 'दृष्टि-गोचर होना'। सत्याग्रह इन दोनो अर्थों मे आविष्कार है। वह एक नया शोध भी है और उसके द्वारा हमारा जीवन अधिक भावशाली रूप मे अभि-व्यक्त भी होता है।

'प्रतिकार' का अर्थ

'प्रतिकार' शब्द के विषय मे भी हमारी बुद्धि स्पष्ट होनी चाहिए। सस्कृत भाषा में प्रतिकार का अर्थ जवाब मे या बदले मे कोई काम करना, इतना ही है। किसी ने हमारा उपकार किया हो और उसके बदले में हम उसकी कोई भलाई करे, तो वह भी प्रतिकार ही है। मतलब यह कि प्रतिकार के मूल अर्थ मे केवल विरोध का समावेश नही होता। प्रतिकार सहयोगात्मक भी होता है और विरोधात्मक भी। दूसरे के अन्याय या बुरे काम का जब हम वि ोध करते है तब भी असल मे हमारा विरोध उस व्यक्ति के लिए सहयोगात्मक होना चाहिए। विरोधात्मक सत्याग्रह का

उद्देश्य और उसकी प्रेरणा सहयोगात्मक ही होती है। इसीलिए सामुदायिक सत्याग्रह के आद्य प्रवर्त्तक गांधीजी आग्रहपूर्वक और विश्वासपूर्वक कहा करते थे कि सत्याग्रह प्रेममूलक और सेवामय होता है, इसीलिए उसमे उभय कल्याणकारिता का अद्वितीय लक्षण है।

सहयोगात्मक प्रतिकार

अब सुबुद्ध पाठको को यह समझने मे कठिनाई नही होनी चाहिए कि विनोबा भूदान-यज्ञ को सत्याग्रह का रूप क्यो कहते है। बुराई के निवारण के लिए जो-कुछ किया जाता है, वह सब प्रतिकार ही है। चाहे वह फिर सहयोगात्मक हो या विरोधात्मक। बुरा काम करनेवाला व्यक्ति जब बुराई को ही अपना स्वत्व मान लेता है, तो वह उसके प्रतिकार मे सहयोग नही देता। अपनी बुराई का ही समर्थन और परिरक्षण करने मे सारी शक्ति लगा देता है। ऐसा व्यक्ति सत्याग्रही को अपना प्रतिपक्षी भले ही माने, परन्तु सत्याग्रही उसे अपना प्रतिपक्षी नही मान सकता। वह तो अपने को उसका सहयोगी ही मानता है। जब वह विरोध करता है तब भी वस्तु-विशेष और कृति-विशेष का विरोध करता है, न कि व्यक्ति-विशेष का।

सत्याग्रह की विशेषता

चाहिए और विकसित करनी चाहिए, जिससे कि उसके दोष-निवारण के साथ-साथ उसका हृदय-परिवर्तन भी हो। और अन्त में वह हमारी सफलता को अपनी सफलता समझने लगे। सत्याग्रह की प्रक्रिया में यह अन्यतम विशेषता है कि उसमे एक की जीत और दूसरे की हार नही होती। दोनो पक्षों की विजय होनी है। अमीरी और गरीबी के निवारण मे गरीब की सफलता को अमीर भी जब अपनी सफलता समझने लगेगा तो उसका हृदय-परिवर्तन होगा और वह गरीब का सहयोगी बन जायगा।

हृदय-परिवर्तन का आरंभ

परन्तु जबतक हमारा अपना हृदय-परिवर्तन नही होता है, तबतक हमारा विरोध सत्याग्रह नही हो सकता। गरीब के हृदय-परिवर्तन के बिना उसके सत्याग्रह का परिणाम अमीर के हृदय-परिवर्तन मे कभी नही होगा। अगर गरीब का हृदय-परिवर्तन नही होगा तो गरीबी और अमीरी भी किसी हालत मे खतम नही होगी। हमें अपना दिल टटोलकर अपने आपसे यह पूछना चाहिए कि क्या हम सिर्फ अपनी गरीबी का निवारण करना चाहते है या समाज मे से गरीबी और अमीरी के भेद का याने आर्थिक विषमता का ही निवारण करना चाहते हैं? अगर हमारी नीयत सिर्फ अपनी गरीबी के निवारण की है, तो हमारी मनोवृत्ति अमीर की मनोवृत्ति से भिन्न नही है। वह धनाढ्य है और हम धनाकांक्षी है। दोनो में धनतृष्णा और लोभ समान रूप से विद्यमान है। जो खुद अमीर बनना चाहता है वह यह नहीं चाहता कि दुनिया मे गरीब कोई न रहे। वह तो इतना ही चाहता है कि मैं गरीब न रहूं। यह मनोवृत्ति क्रातिकारक भूमिका के सर्वथा प्रतिकूल है, इसलिए अमीर के हृदय-परिवर्तन की अनिवार्य शर्त यह है कि पहले गरीब का हृदय-परिवर्तन हो।

गरीब की जिम्मेदारी

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन मे इसकी योजना है। गरीबो के पास अत्यल्प परिग्रह है, उनकी मिल्कियत बहुत ही थोड़ी है, परन्तु फिर भी उन्हे अपने

परिग्रह से मोह है और अपनी मिलकियत बढ़ाने की निरन्तर चिंता है। गरीबी और अमीरी के निवारण में आखिर हमारा उद्देश्य क्या है? क्रांति के बाद भी समाज में कुछ दुष्ट व्यक्ति संभवत रहेंगे। परन्तु जो समाज हम कायम करेंगे उसकी रचना में दुष्टता के प्रयोग के लिए कम-से-कम अवसर होगा तथा गरीबी और अमीरी के लिए कोई मौका नही रहेगा। वर्गहीन समाज-व्यवस्था का यह प्रथम लक्षण है। ऐसी व्यवस्था कायम करने की आकाक्षा और आवश्यकता आज अमीरो की अपेक्षा गरीबो को ज्यादा महसूस होती है, इसलिए गरीब अपनी परिस्थिति मे परिवर्तन चाहता है और अमीर उसको अधिक-से-अधिक समय तक बनाये रखना चाहता है। अतएव क्राति की जिम्मेदारी गरीब पर आ जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि परिग्रह और कौटुबिक तथा निजी सम्पत्ति के विसर्जन मे पहला कदम गरीब को रखना चाहिए। गरीब जब अपने-आप परिग्रह और अत्यल्प परिग्रह का उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो जायगा, तो समाज मे अपरिग्रह की भूमिका का निर्माण होगा। उसके मन मे एक ऐसी अर्थ-रचना स्थापित करने की आकाक्षा होगी, जिसमे थोड़े-से मालिक और अधिकाश जनता स्वामित्वहीन मजदूर नही रह सकेगी।

मिलकियत का विसर्जन

भूदान सत्याग्रह का ही रूप है

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन क्राति की प्रक्रिया का उपक्रम है और सत्याग्रही प्रतिकार-नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यदि देश के सभी क्रातिप्रिय और क्रातिप्रवण लोग उसकी इस अर्थ-व्याप्ति को समझने की कोशिश करे, ो इस देश में एक ऐसी क्राति सिद्ध होगी, जो मानव-मात्र के लिए पदार्थ-पा उपस्थित करेगी और सत्रस्त दुनिया को आशा का सदेश देगी।

: ९ :

नये युग की स्त्री के लिए सुयोग

'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' नामक अपनी पुस्तक मे गाधीजी ने 'पैसिव रेजिस्टेस' (अप्रत्यक्ष प्रतिकार) और सत्याग्रह के फर्क का विस्तृत विवेचन किया है। पैसिव रेजिस्टेस की मिसाल के तौर पर इग्लैड के स्त्री मताधिकार-आन्दोलन का जिक्र उन्होने किया है। स्त्रिया पुरुषो के मुकाबले में कमजोर और निरशस्त्र है। वे सशस्त्र-विद्रोह या बाहुबल का प्रयोग नही कर सकती, इसलिए उन्होने अप्रत्यक्ष प्रतिकार की शरण ली। अर्थात् जहा शस्त्रबल असाध्य हो, वही पर नि शस्त्र प्रतिकार को प्रशस्त और उपादेय माना गया है। उसे शस्त्र-प्रयोग की अपेक्षा गौण समझा गया।

तुल्यबल व तुल्यसत्व के लिए

आस्वाद कभी नही मिलेगा। उसका जीवन और स्वतत्रता भी पुरुष की दी हुई होगी और दूसरे की दी हुई आजादी नकली, बनावटी और नाममात्र की होती है। अमल मे वह गुलामी ही होती है। जबतक यह हालत रहेगी, तबतक स्त्री पुरुष मे तुल्य-बल और तुल्य-सत्व-जीवन की पात्रता नही प्राप्त कर सकेगी।

सचाई यह है कि मनुष्य की वीरता और उसकी शक्ति हथियारो मे या उसके डीलडौल मे नही होती। दुनिया के सभी वीर पुरुष अपने जमाने के सबसे अधिक विशालकाय या सबसे अधिक शस्त्र-सुसज्जित नही थे। रावण से राम का कद कही छोटा था और उसके हाथ भी दो ही थे। कंस से कृष्ण का आकार कही छोटा था। तिलक, गाधी, जवाहरलाल या नेताजी सुभाषचन्द्र बोस अपने जमाने के बहुत बडे मल्ल या शस्त्रविशारद व्यक्ति नही माने गये। फिर भी उनकी वीरता और साहस के सभी लोग कायल है। स्त्रिया अगर इस तत्व को समझ ले और वह उनके दिल मे जम जाय तो उनकी कल्पित दुर्बलता एक पल मे काफूर हो जायगी।

गाधी के सत्याग्रह का स्त्रियो की दृष्टि से यहा अन्यतम महत्व है। सत्याग्रही क्राति मे स्त्री के लिए पुरुष की बराबरी से पराक्रम का अवसर है। स्त्री-जीवन की भूमिका और स्त्री के व्यक्तित्व के मूल मे सत्याग्रही प्रक्रिया से जो क्रांति हो सकती है, वह बाहुबल पर आधार रखनेवाली किसी प्रक्रिया से कतई नही हो सकती। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की भी यही विशेषता है।

स्त्री-जीवन की प्रतिष्ठा का आंदोलन

अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए लालायित रहती है। इसका सबसे बडा सबूत यह है कि जब कभी किसी पिता को अपनी कन्या के लिए वर खोजना होता है तो अक्सर वह वर के हृदय तथा बुद्धि के गुणो की अपेक्षा उसकी भौतिक सम्पत्ति का विचार अधिक करता है। जो सम्पत्तिमान होगा और काचनयुक्त होगा, वह स्त्री को अधिक सुख तथा आराम दे सकेगा। परिणाम यह हुआ कि स्त्री वैभवाकाक्षी बन गई है। यह दोष स्त्री के हृदय और भावना मे उतना नही है, जितना कि उसकी भूमिका और सामाजिक परिस्थिति मे है। और सामाजिक मूल्यो मे आमूलाग्र परिवर्तन करनेवाले आन्दोलन ही स्त्री-जीवन का मूल्य समाज मे प्रतिष्ठित कर सकते है।

जब हम लडकियो के स्कूलो तथा कालेजो मे जाते है, तो प्राय सभी लडकियो के मुह से आर्थिक क्रान्ति के गीत और आर्थिक क्रान्ति के उद्गार सुनते है। परन्तु वास्तविकता यह है कि इनमे से बहुतेरी लडकिया अपने लिए ऐसा पति-गृह पसन्द करेगी, जो काचनसम्पन्न हो। यह विरोध जबतक सामाजिक परिस्थिति मे विद्यमान है तबतक स्त्री के लिए स्वच्छ प्रतिष्ठित जीवन किसी भी सविधान से या कानून से प्रस्थापित नही हो सकता।

नारी के लिए अपूर्व सुयोग

: १० :

संपत्ति-दान का क्रांतिकारी कदम

विनोवा ने अब यह विचार प्रकट किया है कि वे सम्पत्तिमानो से उनकी सम्पत्ति का छठा हिस्सा भी मागना चाहते है। पहले-पहल यह विचार कुछ अटपटा और असगत-सा मालूम होता है। भूदान-यज्ञ मे केवल भूमि के बटवारे की कल्पना नही है। उसका मूलभूत सकेत क्राति-कारी है। जिनके पास जमीन नही है, उनको जमीन दे देना ही उसका उद्देश्य नही है। जिनके पास जमीन नही है और फिर भी जो जमीन जोतना चाहते है, जोतना जानते है या जोत रहे है, ऐसे उत्पादको को जमीन दिलाना उस आदोलन का प्रधान उद्देश्य है। किसके पास कितनी कम या अधिक जमीन हो, यह सवाल नही है। भूमिदान-यज्ञ का मूलभूत उद्देश्य यह है कि उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथो मे होना चाहिए।

कांचनमुक्ति—क्रांतिकारी संकल्प

इसलिए यह आन्दोलन पैसे की प्रतिष्ठा का अन्त करनेवाला आदोलन है और उत्पादक परिश्रम की सत्ता स्थापित करनेवाला आन्दोलन है। उसमें विनोवा किसी को उपभोग्य वस्तु नही दिलाते। उपभोग्य वस्तु खरीदने का साधन भी नही दिलाते, बल्कि उत्पादन का ही साधन दिलाते है। इसलिए जब उन्होने कहा कि मै किसी से पैसा नही लूगा और जो मेरी मदद करना चाहता है, वह उत्पादन के साधन या उत्पादन के औजार खरीद कर दे, तब उन्होने एक अद्भुत क्रान्तिकारी सकल्प किया। उप-योग की वस्तु या उपभोग की वस्तु खरीदने का साधन दूसरे से ले लेने मे हम देनेवाले का उपकार लेते है। लेनेवाले की भूमिका गौण हो जाती

है। लेकिन उत्पादन का या परिश्रम का साधन किसी को देने मे हम उसे उपकृत नही करते।

द्रव्यदान का दोष

यह न्याय सम्पत्ति के लिए लागू नही है। सम्पत्ति के उपार्जन मे शोषण अनिवार्य है। जो व्यक्ति बडे-बडे कारखाने चलाकर मजदूरो का शोषण करता है, वह यदि हमको अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा दे देता है, तो एक तरह से मौजूदा सामाजिक परिस्थिति को बनाये रखने के लिए मानो हमसे सम्मति चाहता है। वह अपने कारखाने का छठा हिस्सा तो हमे नही देता, मजदूरो का शोषण भी किसी तरह कम नही करता, मुनाफाखोरी बढाता ही चला जाता है और जितना कमाता है, उसका छठा हिस्सा हमे देता चला जाता है, तो इस प्रकार के दान मे से व्यक्तिगत पुण्य-संपादन भले ही हो, लेकिन आर्थिक विषमता का अन्त कदापि नही हो सकता।

पापमूलक दान

: १० :

संपत्ति-दान का क्रांतिकारी कदम

विनोबा ने अब यह विचार प्रकट किया है कि वे सम्पत्तिमानो से उनकी सम्पत्ति का छठा हिस्सा भी मागना चाहते हैं। पहले-पहल यह विचार कुछ अटपटा और असगत-सा मालूम होता है। भूदान-यज्ञ मे केवल भूमि के बटवारे की कल्पना नही है। उसका मूलभूत सकेत क्राति-कारी है। जिनके पास जमीन नही है, उनको जमीन दे देना ही उसका उद्देश्य नही है। जिनके पास जमीन नही है और फिर भी जो जमीन जोतना चाहते है, जोतना जानते है या जोत रहे है, ऐसे उत्पादको को जमीन दिलाना उस आदोलन का प्रधान उद्देश्य है। किसके पास कितनी कम या अधिक जमीन हो, यह सवाल नही है। भूमिदान-यज्ञ का मूलभूत उद्देश्य यह है कि उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथो मे होना चाहिए।

कांचनमुक्ति––क्रांतिकारी संकल्प

इसलिए यह आन्दोलन पैसे की प्रतिष्ठा का अन्त करनेवाला आदोलन है और उत्पादक परिश्रम की सत्ता स्थापित करनेवाला आन्दोलन है। उसमे विनोबा किसी को उपभोग्य वस्तु नही दिलाते। उपभोग्य वस्तु खरीदने का साधन भी नही दिलाते, बल्कि उत्पादन का ही साधन दिलाते है। इसलिए जब उन्होने कहा कि मै किसी से पैसा नही लूगा और जो मेरी मदद करना चाहता है, वह उत्पादन के साधन या उत्पादन के औजार खरीद कर दे, तब उन्होने एक अद्भुत क्रातिकारी सकल्प किया। उप-योग की वस्तु या उपभोग की वस्तु खरीदने का साधन दूसरे से ले लेने से हम देनेवाले का उपकार लेते है। लेनेवाले की भूमिका गौण हो जाती

है। लेकिन उत्पादन का या परिश्रम का साधन किसी को देने मे हम उसे उपकृत नही करते ।

द्रव्यदान का दोष

यह न्याय सम्पत्ति के लिए लागू नही है । सम्पत्ति के उपार्जन मे शोषण अनिवार्य है । जो व्यक्ति वडे-वडे कारखाने चलाकर मजदूरो का शोषण करता है, वह यदि हमको अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा दे देता है, तो एक तरह से मौजूदा सामाजिक परिस्थिति को वनाये रखने के लिए मानो हमसे सम्मति चाहता है। वह अपने कारखाने का छठा हिस्सा तो हमें नही देता, मजदूरो का शोषण भी किसी तरह कम नही करता, मुनाफाखोरी वढाता ही चला जाता है और जितना कमाता है, उसका छठा हिस्सा हमें देता चला जाता है, तो इस प्रकार के दान मे से व्यक्तिगत पुण्य-सपादन भले ही हो, लेकिन आर्थिक विषमता का अन्त कदापि नही हो सकता ।

पापमूलक दान

विनोवा उसकी रकम का ट्रस्टी उसीको वना देते है, इसलिए इसमे निधि की व्यवस्था का सवाल नही उठता । उसके दुरुपयोग की भी सम्भावना कम हो जाती है। परन्तु दाता की भूमिका मे कोई मूलभूत परिवर्तन नही होता। इस प्रकार का दान समाज की अर्थ-व्यवस्था वदल देने का साधन नही वन सकता। एक नर्तकी है, वेश्या है और एक शराव का दूकानदार है। वे भी अपनी कमाई का छठा हिस्सा विनोवा को दे सकते है—प्रायश्चित्त के रूप मे नही, किन्तु व्यक्तिगत पुण्य-सपादन के लिए । प्रशस्त और उपयुक्त उद्योग करनेवाले जिस प्रकार अपनी कमाई में से दान-धर्म करते है, उस तरह से ये भी करेगे। चोर भी अपने चोरी के माल मे से देवी को भोग चढाते है, शोषण करनेवाले भी मन्दिर, तालाव और धर्मशालाए वनवाकर दानवीर वन जाते है।

वास्तविक उद्देश्य

तो फिर विनोबा के इस नये संकेत का क्या अर्थ है ? वे यह कहते हैं कि इस सम्पत्ति का विनियोग उनके निर्देश के अनुसार किया जायगा। दाता की राय भी पूछी जायगी, लेकिन निर्णय विनोबा करेंगे। यदि कोई कारखानेदार उनके आदेश के अनुसार हर साल अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा देगा, तो वे उससे कह सकते हैं कि कारखाने के मजदूरों के लिए अधिक-से-अधिक स्वास्थ्य तथा सांस्कृतिक विकास के साधन इस रकम में से तैयार कर दो और धीरे-धीरे अपना कारखाना ही मुझे सौंप दो। साहूकार से वे कह सकते हैं कि जो रकम मेरे नाम की है, उसमें से उत्पादन के अमुक साधन और खेती के फलाने औजार खरीद दो। परन्तु इसके साथ-साथ उन्हें यह भी कहना होगा कि इस प्रकार का पैसा कमाना या सम्पत्ति का उपार्जन करना ही पापमय है, इसलिए धीरे-धीरे इस रोजगार को ही तुम बन्द कर दो। अगर कोई सटोरिया उन्हें छठा हिस्सा दे देता है तो वे उससे कहेंगे कि तेरा रोजगार ही पापमय है। उसके प्रायश्चित्त के लिए अगर तू मुझे छठा हिस्सा देता है, तो शीघ्र-से-शीघ्र तुझे इस पापमय व्यवसाय को ही छोड़ देना चाहिए।

अनुत्पादक व्यवसाय का ही विसर्जन

सम्पत्ति के छठे हिस्से के दान में केवल सम्पत्ति के ही विसर्जन की भावना नहीं होगी, अपितु अनुत्पादक व्यवसाय के ही विसर्जन की भावना होगी। चाहे जैसे भले-बुरे मार्ग से सम्पत्ति का उपार्जन कर लिया और उसका छठा हिस्सा भर विनोबा को देकर पुण्यात्मा की प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली, ऐसी अगर किसी की धारणा हो तो वह विनोबा के संकेत को नहीं समझा है। सम्पत्ति के अपने हिस्से के विनियोग के विषय में विनोबा जब निर्देश देने लगेंगे, उस वक्त उनके संकेत का पूरा-पूरा अर्थ इन दानियों पर और जनता पर प्रकट होगा।

अखण्डदान की प्रक्रिया

भूदान-यज्ञ के बारे में भी कुछ लोगों को यह भ्रम है कि बड़े-बड़े

जमीदार भी अपनी जमीन का छठा हिस्सा देकर आराम के साथ बचे हुए पाच हिस्सो का उपभोग करते रहेगे। जो लोग ऐसा मानते है, उनकी समझ मे भूदानयज्ञ-आन्दोलन की भमिका ही नही आई है। भूदान-यज्ञ में सम्पत्ति और स्वामित्व के विसर्जन का सकेत है। जो आज छठा हिस्सा देगा, वह कल उससे अधिक देगा और जबतक अपनी सपत्ति का विसर्जन नही करेगा, तबतक देता ही चला जायगा। अन्यथा भूदान-यज्ञ के द्वारा अहिसक प्रक्रिया से भूमि का सविभाजन कैसे हो सकता है ?

संकेत के फलितार्थ

इसी सदर्भ मे हमे विनोबा के इस नये कदम को देखना और समझना चाहिए। समाज-विघायक और नीति-विरोधी व्यवसाय करनेवाले भी अपनी आमदनी का छठा हिस्सा देकर प्रतिष्ठा प्राप्त नही कर सकते। छठे हिस्से के उस दान में यह सकेत है कि हम अनुत्पादक व्यवसायो का ही विसर्जन करना चाहते है। विनोवा के इस नये सकेत का सपूर्ण अर्थ ज्यो-ज्यो प्रकट होगा त्यो-त्यो लोग उसकी पूरी सभावनाओ से परिचित होते जायगे।

: ११ :

संपत्ति-दान-यज्ञ का सर्वस्पर्शी स्वरूप

विनोवा के आन्दोलन मे महावाक्यो की तरह दो मत्रो का बार-बार उच्चारण किया जाता है। एक है, "सबै भूमि गोपाल की" और दूसरा, "सब सम्पत्ति रघुपति कै आहि।" दान-यज्ञ-आन्दोलन का सबध पहले महावाक्य मे है। भूमि भगवान् की बनाई हुई है, वह सृष्टि की एक विभूति है, इसलिए उसपर मनुष्य का स्वामित्व नही होना चाहिए। अन्न उपजाने के लिए जो उसपर पुरुषार्थ कर सकता है, उसे उत्पादन का अधिकार मिलना चाहिए। अनुत्पादक का अधिकार जड-मूल से खतम होना चाहिए। भू-दान-यज्ञ-आन्दोलन का यह थोडे मे तात्पर्य है।

पुण्यमय आयोजन

परन्तु जो सम्पत्ति श्रम से पैदा होती है, उसपर स्वामित्व किसका हो यह प्रश्न फिर भी बाकी रह जाता है। जो जितनी सम्पत्ति का उत्पादन करता है, उस सबपर या उतनी ही पर क्या उसका अधिकार होगा? यदि ऐसा होगा तो वर्ग-निराकरण होने पर भी आर्थिक असमानता का निराकरण नही हो सकेगा। इसलिए विनोवा ने सम्पत्ति-दान-यज्ञ का पुण्यमय आयोजन किया है।

भूदान जिस प्रकार गरीब और अमीर, सबके लिए है, उसी प्रकार सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी गरीब और अमीर, सबके लिए है। जिसके पास प्रचुरता है और वैभव है, वह अपने वैभव के विसर्जन के लिए सम्पत्ति-दान करे, और जिसके पास अभाव है, वह अपने अभाव में ही सारे समाज को शामिल करे। विनोवा ने तो यहा तक कहा कि जो भूखा है, वह अपनी भूख का भी हमें दान करे। यह केवल शब्दालंकार नही है। उनकी

मह माग, उनके आन्दोलन के पीछे जो व्यापक दर्शन है, उसकी द्योतक है।

दुःख-दारिद्र्य में भी हिस्सा

विद्यार्थी-दशा मे एक पाठ्य-पुस्तक मे पढी हुई एक कहानी यहा याद आती है। एक मछुवा एक अत्यन्त दुर्लभ जाति की मछली लेकर राज-महल के महाद्वार पर पहुचा। दरवान ने उसे रोका। मछुवा गिडगिडाने लगा। दरवान ने कहा, "मछली अनोखी है। किस्मत से ही कभी मयस्सर होती है। तुम्हारे तो भाग खुल गये। जो कुछ दाम मिलेगे, उनमे से आधे मुझे दोगे तो भीतर जाने दूगा।" मछुवे ने वादा किया और भीतर गया।

मछली देखकर राजा निहायत खुश हुआ। मछुवे से कहा, "मनमाने दाम माग लो।" मछुवा बोला, "महाराज! नगी पीठ पर सौ कोडो की माग है, और कुछ मुराद नही।" राजा दग रह गया। अचरज का ठिकाना नही रहा। पूछा, "क्या यह मछुवा बौरा गया है?" मछुवे ने कहा, "महाराज! गरीब की इतनी तमन्ना पूरी हो।" राजा ने सिपाही से कहा, "इसे धीरे-धीरे सौ कोडे लगाओ।" पचास तक गिनती पहुचते ही मछुवा चिल्ला उठा, "ठहरो-ठहरो, इस सौदे मे मेरा एक हिस्सेदार भी है!"

राजा और भी ताज्जुब मे डूब गया। पूछा, "कौन तुम्हारा साझेदार है?" मछुवा बोला, "महाराज! आपके महल का पहरुआ।" मछुवे ने सारा हाल सुनाया। राजा के क्रोध का पारावार न रहा। दरवान बुलाया गया और कसकर सौ कोडे उसकी नगी पीठ पर मारे गये।

संपत्ति दान-यज्ञ : एक प्रक्रिया

विनोबा के सम्पत्ति-दान-यज्ञ का एक पहलू यह भी है। वे दलित और दरिद्री मानव के दुःख, दारिद्र्य और बेकारी में भी सह-भागी होना चाहते है। जब बेकारी बँटेगी, तभी तो काम भी बटेगा! जो बिलकुल श्रम नही करते और कौटुंबिक अधिकार से या परम्परा से साधन-सम्पन्न है, उन सबकी सम्पत्ति को विनोबा ने विपत्ति की उपाधि दी है। अनुत्पादकों की सम्पत्ति का सपूर्ण विसर्जन और अनुत्पादक व्यवसायो

का विसर्जन सम्पत्ति-दान-यज्ञ का लक्ष्य है। इसलिए उन्होने सम्पत्ति-दान-यज्ञ के लिए यह शर्त रखी है कि सम्पत्ति के जिस अंश का दान होगा, वह **'विनोबा के निर्देश के अनुसार'** खर्च किया जायगा। इस शर्त मे उनके आन्दोलन की पकड है। वे कहते है कि "इस शर्त के द्वारा सम्पत्तिवालो के जीवन मे मेरा चचु-प्रवेश होता है। पहले मै उससे सम्पत्ति-दान का सकल्प कराऊँगा और उसके पश्चात् तुरन्त साधन-शुद्धि का आग्रह रखूँगा। सम्पत्ति के उपार्जन के उसके जो साधन और मार्ग होगे, उनका भी शुद्धीकरण दाता को करना होगा।" इस तरह यह सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी एक प्रसग नही, बल्कि एक प्रक्रिया है, जो शीघ्र-से-शीघ्र सम्पत्ति के विसर्जन का वातावरण बनाने मे सफल होगी।

संग्रह पाप, संपत्ति-दान प्रायश्चित्त

आज तो वे इतना ही कहते है कि जिस किसी के पास थोडा या बहुत सग्रह है, वह उसका एक अश, यथासम्भव षष्ठाश, सम्पत्ति-दान मे देना शुरू कर दे। अभिप्राय यह है कि वह अपने आप को उस सग्रह का मालिक न समझे, सरक्षक समझे। उसके पास जो सग्रह हो गया है, वह असल मे उपयुक्त नही है। इसलिए उस सग्रह को बढाना नही है, वरन् जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी खत्म कर लेना है। सग्रह का विसर्जन अपरिग्रही समाज की स्थापना के लिए है। सम्पत्ति-दान में यदि इस मूलभूत तत्त्व का विचार न किया गया, तो क्राति की प्रक्रिया मे उसका कोई स्थान नही रह सकता।

सग्रह पाप है और सम्पत्ति-दान उस पाप का प्रायश्चित्त है। जो सग्रह अनुत्पादक और अनुपयुक्त व्यवसायो के द्वारा किया गया है, उसे यदि पापपुज कहा जाय, तो वह कोई अत्युक्ति नही होगी। अनुत्पादक व्यवसाय दो श्रेणियो मे बाटे जा सकते है। एक वे, जो मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक दोषो पर चलते है, जैसे बीमारी पर चलनेवाले, गुनाहो पर चलनेवाले और व्यसनो पर चलनेवाले व्यवसाय। दूसरी श्रेणी में वे व्यवसाय आते है, जो व्याज, किराया, ठेका और दलाली पर चलते है।

जबतक समाज मे ये व्यवसाय चलेगे, तबतक एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के सकट और दोष से लाभ उठाता रहेगा। यही शोषण की जड है, इन पेशो और रोज़गारो से जो आमदनी होती है, उसका भी एक अश विनोबा को लोग देना चाहेगे। लेकिन एक तरफ वे अपनी कमाई बढाते रहे, और दूसरी तरफ विनोबा को द्रव्य-दान देते रहे, तो उनके उस दान से न तो उनकी अपनी नैतिक उन्नति होगी और न समाज-कल्याण ही होगा। होना यह चाहिए कि इन व्यवसायो की तरफ से उनका रुख ही बदल जाय और उसकी अभिज्ञा या सहदानी के रूप मे वे सम्पत्ति-दान करे।

अर्थ-शुचित्व और साधन-शुद्धि

विनोबा ने अपने एक भाषण मे कहा था कि वे अब अपरिग्रह के व्रत को व्यक्तिगत गुण के रूप मे ही नही देखना चाहते, बल्कि उसका विकास एक सामाजिक मूल्य के रूप मे करना चाहते है। व्यक्तिगत गुण का रुपातर,अब सामाजिक मूल्य के रूप मे होता है, तब उसमे समाज-क्राति की शक्ति पैदा होती है। सम्पत्ति-दान की परिपूर्त्ति शीघ्र-से-शीघ्र समाज-विरोधी तथा अनुत्पादक व्यवसायो के निराकरण में होनी चाहिए। इसलिए विनोबा किसी से एक मुश्त द्रव्य-दान नही लेते। पाच साल से कम अवधि के लिए सम्पत्ति-दान का सकल्प-पत्र भी स्वीकार नही करते। उपयोग की वस्तुओ का दान स्वीकार करने में भी वे यह तर-तमभाव और विवेक रखते है। उदाहरण के लिए अफीम या गाजे का कोई ठेकेदार उन पदार्थो का दान करना चाहे, या अपनी आमदनी का एक हिस्सा जिदगी भर उनको देना चाहे, तो भी वे उसे लेने से इन्कार कर देंगे। उत्पादको के लिए कोई तमाखू, बीडी या सिगरेट का दान-सत्र शुरू कर दे तो वे उसका विरोध करेगे। कम-से-कम वे उसे सम्पत्ति-दान नही कहेगे। सम्पत्ति-दान में अर्थ-शुचित्व और साधन-शुद्धि का अभिप्राय मूलभूत है।

ट्रस्टीशिप का प्रत्यक्षीकरण

गाधीजी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप के सिद्धात का व्यापक विनियोग विनोबा सपत्ति-दान-यज्ञ के रूप मे कर रहे है। इसीलिए उन्होने उसे 'यज्ञ'

सज्ञा दी है। यज्ञ मे वलिदान होता है, कुर्बानी होती है। दान में और यज्ञ में एक मूलभूत अन्तर है। अपनी सारी जरूरतें पूरी तरह से और अपनी सारी इच्छाए पर्याप्त मात्रा मे पूरी करने पर जो शेप रह जाता है उसका हम अक्सर दान करते है। दान-उर्वरित या अतिरिक्त वस्तु का किया जाता है। परन्तु यज्ञ में सर्वस्व की आहुति दी जाती है। चाहे हमारी आवश्यकताए पूरी हो या न हो, हम अपनी विपन्नता में से ही यज्ञ मे आहुति डालते है। नचिकेता के पिता ने विश्वजित-यज्ञ किया। उसके पास सिर्फ क्षीण और शुष्क पयोधर वाली गाये ही रह गई थी। उनका भी उसने दान कर दिया। उसने मरी गाय ब्राह्मण को नही दी। जो कुछ था, वह दिया। सम्पन्नता नही थी, इसलिए अपनी विपन्नता का ही हविर्भाग दिया। विनोवा कहते है, श्रमिको, तुम्हारे पास श्रम-शक्ति है, तुम मुझे उसीका दान दो। अपनी शक्ति का तुम दान करोगे, तो तुम्हारी विपन्नता और तुम्हारा अभाव और तुम्हारी दरिद्रता भी लोक-व्यापी वन जायगी और वट जायगी। जो तुम्हारे पास है, वह तुम देते हो, तो तुम्हारी जरूरत सवकी जरूरत हो जाती है और तुम्हारी मुसीबत सबकी मुसीवत हो जाती है।

सर्वकश और मूलग्राही यज्ञ

इस प्रक्रिया में एक बहुत गहन और मूलगामी अभिसधि है। हमारे सामाजिक जीवन की तह तक पहुचनेवाला एक गहरा आशय है। आज समाज में जो श्रम-जीवी है और उत्पादक है, वे भी श्रमनिष्ठ नही है। उन्हे परिश्रम और उत्पादन मे अभिरुचि नही है। और जो अनुत्पादक है, वह तो श्रम से परहेज करता ही है। श्रमनिष्ठा के अभाव मे से उत्पादन की सामाजिक प्रेरणा कदापि पैदा नही हो सकती। इसलिए विनोवा श्रमिको को भी सम्पत्ति-दान की दीक्षा देते है। जो महज मजदूर है और मालिक नही है, उसे वे भूदान की प्रक्रिया की मार्फत उत्पादनो के साधनों का मालिक वनाना चाहते है, लेकिन साथ-साथ उसे यह दीक्षा भी देना चाहते है कि वह अपने परिश्रम से निर्मित वस्तुओं का या अपनी मेहनत की

कमाई का मालिक नही है। जिस प्रकार करोडपति और अरवपति, तथा लखपति और सेठ-साहूकार अपनी सम्पत्ति के परिरक्षक है, उसी प्रकार एक गरीव मजदूर भी अपनी कमाई का मालिक नही है; परन्तु परिरक्षक है, इसलिए वह भी सम्पत्ति-दान करेगा। इतना ही नही, जिस भूमिहीन को भूमि दी जायगी, वह भी जव पहली फसल काटेगा, तो दरिद्रनारायण को भोग चढायेगा। नैवेद्य समर्पण करने में प्रभूत-सम्पत्ति और अत्यल्प-सम्पत्ति का विचार नही किया जाता। लकडहारा भी अपने गाढे पसीने की कमाई में से भगवान् के चरणो पर नैवेद्य चढाता है। विनोवा का सपत्ति-दान-यज्ञ इतना सर्वकश और मूलग्राही है।

संपत्ति-दान का रूप : आज और कल

इस सम्पत्ति-दान-यज्ञ के दो पहलू है। जवतक अमीरी और गरीवी का निराकरण नही हुआ है, तवतक और तभी तक के लिए हरेक सम्पत्तिधारी अपने आपको केवल न्यासरक्षक (ट्रस्टी) समझे। किसी तरह उसके पास जनता की धरोहर इकट्ठी हो गई है। वह उसे सभाल कर शीघ्र-से-शीघ्र वर्ग-निराकरण की क्राति के काम मे लगा दे। इस प्रकार अमीरो का सम्पत्ति-दान-यज्ञ केवल सक्रमण-काल के लिए है। वह सधि-काल का परम धर्म है।

कोई यह न समझे कि हम सभी भले-वुरे उपायो से धन कमाते जायेंगे और विनोवा के सम्पत्ति-दान-यज्ञ में अपनी सहूलियत के मुताविक दान देकर इह-लोक में कीर्त्ति और पर-लोक में सद्गति भी प्राप्त कर लेंगे। पुराने सम्पत्ति-दान में मन्दिर वनवाना, घाट वनवाना, धर्मशालाए वनवाना, अस्पताल और स्कूल खोल देना इत्यादि-इत्यादि कई तरह के लोक-कल्याणकारी कामो का समावेश होता था। विनोवा का सम्पत्ति-दान-यज्ञ केवल लोक-कल्याणकारी आन्दोलन नही है। वह लोक-जीवन में क्राति करना चाहता है। इसलिए जिस दिन वह सफल होगा, उस दिन न सग्रह के लिए अवसर होगा और न उस प्रकार के दान के लिए अवकाश ही होगा। यह सम्पत्ति-दान असल में भावना और वुद्धि के दान का प्रतीक

है। यदि गहराई मे सोचा जाय, तो विनोबा जो बुद्धि-दान चाहते है, वह भी केवल बुद्धिजीवियो का समय-दान नही है, बल्कि परिग्रह की वृत्ति का विसर्जन ही वास्तव मे उसका अभीष्ट है।

सम्पत्ति-दान का दूसरा पहलू नित्यधर्म का है। परिश्रम से जो कुछ पैदा होता है, वह सब जन-जनार्दन का है। व्यक्ति के पुरुषार्थ के लिए समाज मे उसे जो सुयोग मिलता है वह समाज का दिया हुआ बहुत बडा वरदान है। इसलिए अपने पुरुषार्थ के प्रयोग मे व्यक्ति जो कुछ निर्माण करता है उसपर उसे समाज की ही सत्ता स्वीकार करनी चाहिए। उत्पादक का सम्पत्ति-दान-यज्ञ इस नित्य सामाजिक धर्म का प्रतीक है। अपनी आवश्यकता के लिए वह जो कुछ लेता है, वह समाज का प्रसाद है। इस प्रकार वह समाज को अधिक-से-अधिक देता है और उससे कम-से-कम लेता है। इस तरह के सम्पत्ति-दान-यज्ञ मे से श्रमनिष्ठा का विकास होता है। श्रमिक की बुद्धि और भावना मे परिवर्त्तन होता है। विनोबा के श्रम-दान-यज्ञ की तरह उनका सम्पत्ति-दान-यज्ञ भी बुद्धि-युक्त है।

जीवन-संशोधन का संकल्प

अस्तेय और अपरिग्रह के व्रतो की सामाजिक मूल्यो के रूप मे प्राण-प्रतिष्ठा तभी होगी, जबकि सम्पत्ति और स्वामित्व के प्रति एक बिलकुल नई वृत्ति छोटे और बडे मालिको के तथा गैर मालिक-मजदूरो के चित्त में पैदा होगी। इसके लिए सबसे पहले इस वृत्ति का आविर्भाव और विकास हमारे प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ के मन मे होना चाहिए। इस देश के निहत्थे लोगो को जब हथियारबन्द फौजो का मुकाबला करना था, तब गाधी ने उन्हे नि शस्त्र वीरता की प्रक्रिया सिखाई। इस प्रक्रिया का मूलभूत सिद्धात यह है कि हथियार का मुकाबला हथियार से न किया जाय। सामनेवाले के हाथ मे अगर हथियार हो, तो हमारे मन मे भी हथियार नही होना चाहिए। गाधी ने हमसे कहा कि "नीति के रूप मे ही क्यो न हो, अगर नि शस्त्र-प्रतिकार के मार्ग पर चलना चाहते हो, तो हथियार का उपयोग करने की इच्छा सच्चे दिल से छोड देनी चाहिए।" इसीलिए

हथियारबन्द सिक्ख और हथियार-परस्त पठान चुपचाप हथियारो का प्रहार सहते गये, परन्तु उन्होने अपने हथियारो का प्रयोग नही किया। तात्कालिक नीति के अनुसरण मे भी सचाई और ईमानदारी की जरूरत होती है।

अहिसा के लिए जो नियम लागू था, उससे कही अधिक मात्रा मे वह नियम अस्तेय और अपरिग्रह के लिए लागू है। मिलकियत का मोह और उसकी ममता सिर्फ थोडी देर के लिए या नियत अवधि के लिए छोड देने से समाज का नक्शा नही बदलेगा। स्वामित्व-भावना और सम्पत्ति का लोभ ही जडमूल से छोड देना होगा। सत्याग्रही प्रतिकार की प्रक्रिया के मार्फत गाधीजी ने शस्त्र-सत्ता के निराकरण का एक प्रभाव-शाली प्रयोग किया। भूदान और सम्पत्ति-दान की यज्ञरूप प्रक्रिया के द्वारा विनोबा धन-सत्ता के निराकरण का सफल प्रयोग कर रहे है। तात्कालिक नीति के रूप में अहिसा का स्वीकार करना उस परिस्थिति में पर्याप्त था। परन्तु यहा तो सग्रह का विसर्जन और सम्पत्ति का दान सिद्धात के रूप में और नित्य अनुष्ठेय धर्माचरण के रूप में ही स्वीकारना पडेगा। यह निष्ठा कार्यकर्ताओ में जिस मात्रा में होगी उसी मात्रा मे हमे सफलता प्राप्त होगी। मुख्य वृत्ति का है, और उस वृत्ति के अनुरूप जीवन-सशोधन के सकल्प का है।

विनोबा-साहित्य

विनोबा के विचार (दो भाग)—विनोबाजी के निबन्धो व व्याख्यानो का महत्वपूर्ण संग्रह। प्रति भाग १।।)

गीता-प्रवचन—गीता के प्रत्येक अध्याय का बडी ही सरल, सुबोध शैली मे विवेचन। अजिल्द १), सजिल्द १।।।)

शांति-यात्रा—गाधीजी के देहावसान के बाद अनेक स्थानो मे दिये गये प्रवचन। १।।)

स्थितप्रज्ञ-दर्शन—स्थितप्रज्ञ के लक्षणो की व्याख्या। १।।)

ईशावास्यवृत्ति—ईशोपनिषद् की विस्तृत टीका। ।।।)

ईशावास्योपनिषद्—मूल श्लोको सहित ईशोपनिषद् का सरल अनुवाद। =)

सर्वोदय-विचार—सर्वोदय-विषयक लेखो व प्रवचनो का संग्रह। १=)

स्वराज्य-शास्त्र—प्रश्नोत्तर के रूप में विनोबाजी द्वारा स्वराज्य की परिभाषा, अहिंसात्मक राज्य-पद्धति एव आदर्श राज्य-व्यवस्था का विवेचन। ।।।)

भूदान-यज्ञ—देश के भूमिहीनो की दुर्दशा से प्रभावित होकर भूमि के सम-वितरणार्थ दिये गए मूल्यवान प्रवचन। ।)

राजघाट की संनिधि में—भूदान-यज्ञ के सिलसिले मे दिल्ली मे दिये गए विनोबाजी के प्रवचन। ।।।)

गाधीजी को श्रद्धांजलि—गाधीजी के प्रति विनोबाजी की सर्वोत्तम श्रद्धांजलि। ।=)

जीवन और शिक्षण—युवकोपयोगी लेखो तथा भाषणो का संग्रह २)

सर्वोदय के सेवकों से—रचनात्मक कार्यकर्ताओ की विभिन्न सभाओ मे दिये गये महत्वपूर्ण भाषण। ।)

सर्वोदय का घोषणा-पत्र—चांडिल-सर्वोदय सम्मेलन मे दिये गये भाषण। ।)

विचार पोथी—विनोबाजी के चुने हुए मूल्यवान विचारो का संग्रह १)

हमारा भूदान-यज्ञ सम्बन्धी अन्य साहित्य

१ भूदान-यज्ञ

२ सर्वोदय का घोषणा-पत्र

३ राजघाट की सन्निधि में

४ सर्वोदय के सेवकों से

५ विनोबा और भूदान

६ सम्पत्ति-दान-यज्ञ

समाज
के
नव-निर्माण
संबंधी
क्रांतिमय
विचार

अखिल भारत सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

सामाजिक क्रान्ति के दस कार्यक्रम



जवाहिरलाल जैन

१९५४
अ० भा० सर्व-सेवा संघ का प्रकाशन

अ० भा० सर्व-सेवा सघ, वर्धा
की ओर से
मार्तण्ड उपाध्याय
मत्री, सस्ता साहित्य मडल
नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

पहली बार . १९५४
मूल्य
चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

भूमिका

श्रीजवाहिरलाल जैन राजस्थान के एक सुपरिचित कार्यकर्त्ता है। उन्हे विधायक विचार मे रुचि है। उनकी श्रद्धा है कि भारत का सामाजिक और आर्थिक सजीवन गाधीजी प्रणीत रचनात्मक कार्यक्रम से ही हो सकता है। इस पुस्तिका मे गाधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को दस शीर्षको मे बाट कर सामाजिक क्राति की दृष्टि से उसकी व्यावहारिक उपयोगिता बतलाई गई है। उससे उनकी अध्ययनशीलता और अन्वेषणवृत्ति का परिचय मिलता है। लेखक ने समस्या का स्वरूप बतला कर उसके समाधान के लिए प्रत्यक्ष व्यावहारिक सुझाव दिये है। इन सुझावो मे ही पुस्तिका की उपयुक्तता है। भाषा सरल है। शैली प्राजल है।

नेशनल हॉल, पटना ३
२८–४–५४

—दादा धर्माधिकारी

विषय-सूची

सामाजिक क्रान्ति के दस कार्यक्रम

१
साम्प्रदायिकता का विनाश

हमारा देश अत्यन्त विस्तृत होने के कारण प्राकृतिक रूप से ही विविधतापूर्ण है। पहले समुद्र ने इसे अन्य देशो से कुछ अलग-सा अवश्य रखा और हिमालय शैलमाला ने इस अलगाव मे समुद्र का साथ दिया, किन्तु उत्तर-पश्चिमी सीमान्त और उससे कम उत्तर-पूर्वीय सीमान्त के मार्ग से पड़ोसी देशो के निवासी और विजेता यहा आते रहे और पिछले इतिहास मे समुद्र भी इस आगमन का बाधक होने के बजाय साधन बन गया।

इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ है, इसे अच्छा माने या बुरा, कि यह देश विविध धर्मों, सम्प्रदायो और विचारधाराओ का पहले संघर्ष-स्थल और बाद मे समन्वय-भूमि ही रहता चला आया है। इससे इस देश की संस्कृति मे भी एक तरह की विशदता तथा उदारता का दृष्टिकोण विकसित हुआ है और फलतः यह विविधता आज भी किसी-न-किसी अवस्था और रूप मे बनी ही रह गई है।

कम तीव्रता मे ईसाई विचारधारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक और अपना अस्तित्व अलग-अलग रखने वाली थी। इसमे शक नही कि सैकडो वर्षों मे इस देश मे रहने के कारण हिन्दुओ और मुसलमानो के जीवन के प्रत्येक विभाग मे पारस्परिक आदान-प्रदान खूब हुआ, पर फिर भी एक स्पष्ट अलगाव उनमे रहा ही और राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रो पर अलगाव की उन ताकतो का असर रहता ही चला आया।

पर यह अलगाव हानिकारक था, और इसके लिए दोनो सस्कृतिया जिम्मेदार है। इस अलगाव का बेजा फायदा बाहर वालो ने उठाया। इसी अलगाव को बेजा तौर पर बढा कर इसी मुल्क वालो ने अपने देश-भाइयो का नाश किया। कुछ भी सही, इस मुल्क मे यह अलगाव रहा और इसी के परिणामस्वरूप यह मुल्क आजाद भी हुआ तो विभाजित होकर और वह विभाजन भी हुआ इसी साम्प्रदायिक विभिन्नता के आधार पर।

यह साम्प्रदायिकता ही मुल्क का सबसे बडा अभिशाप और कलक है। यह जरूर है कि पाकिस्तान राज्य की स्थापना के बाद इस देश मे इस का रूप बदलना-सा लगता है, किन्तु समस्या अपनी उग्रतम अवस्था मे है और साम्प्रदायिकता का विनाश इस महादेश मे सामाजिक क्राति के लिए जरूरी कदम है।

सर्वोदय के सैद्धान्तिक आधार पर तो अवश्य ही और साधारणत मानवता तथा भारत के लौकिक, सम्प्रदाय-निरपेक्ष, लोकतात्रिक राज्य होने के कारण भी इस देश के सभी नागरिक बिना किसी अपवाद के भारतीय नागरिकता की समान भूमिका पर है। यह तथ्य है कि आज भी हमारे देश के हिन्दू-मुसलमान धार्मिक और सामाजिक आचार-विचार मे अपनी अलग-अलग दुनिया-सी बसाये हुए है और उनमे निकट सपर्क की कमी चली आई है लेकिन इस कमी को दूर करना अब अनिवार्यत आवश्यक है।

हिन्दू, मुसलमानो दोनो को और इसी प्रकार ईसाई, जैनो, पारसियो और बौद्धो को आपस के धर्म-ग्रन्थो, रीति-रिवाजो, विचारो, आदर्शो आदि का अध्ययन करना चाहिए और उनके ऐतिहासिक मूल्य को समझते हुए उनके प्रति

समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए । साथ ही उनकी अच्छाइयो को ग्रहण करने और तथाकथित बुराइयो को उन्ही के लिए छोड देने की वृत्ति को भी विकसित करना वाजिब है ।

इसके लिए जरूरी है कि विभिन्न धर्मावलबियो के सम्पर्क के मौके अधिक-से-अधिक बढे । जन्म, विवाह, मृत्यु, हसी, खुशी, शोक सभी अवसरो पर सम्पर्क को सहानुभूति और सहायतापूर्वक ग्रहण किया जाय, सहभोजन को प्रोत्साहित किया जाय, ताकि मिलकर बैठने, बात करने और निकट तथा प्रत्यक्ष काम करने के अवसर अधिकाधिक मिलें । इसके बिना साम्प्रदायिकता का विनाश नही हो सकता ।

एक बात और, हिन्दू, मुसलमानो, ईसाइयो आदि मे आपस के साम्प्रदायिक भेदभाव के अलावा इनके विभिन्न उपसम्प्रदायो मे, वैष्णवो, सुन्नी, शियाओ, कैथालिक, प्रोटेस्टेंटो, श्वेताम्बरो, दिगम्बरो आदि की सकीर्णता और घृणा भी अब तक कायम है और कही-कही काफी उग्र है । दार्शनिक अथवा व्यवहार या दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण भी अलग सम्प्रदाय बनकर वे सिर-फुटौवल के कारण बन गए है । इन्हे केवल दृष्टिकोण की विभिन्नता तक ही मर्यादित रखने के लिए जनमन को जागृत करने का प्रयत्न भी इसी कार्यक्रम का एक अग है ।

साम्प्रदायिकता की इस दुहरी बेडी को हटाने के प्रयत्न की शुरुआत बालको से होनी चाहिए । सभी सम्प्रदायो के बालक साथ खेले-कूदे, पढे-लिखे, व खाये-पिये । हिन्दू स्कूल, मुस्लिम स्कूल आदि तो खुलने ही न दिये जाय और जो हो उन्हे शासन से कोई सहायता नही मिलनी चाहिये । पाठ्यक्रम सबके लिए समान हो, और सारे पाठ्यक्रम खास कर इतिहास, नागरिक शास्त्र की पूरी तरह जाच करके उन्हे गैर-साम्प्रदायिक और सर्वोदय भावना के आधार पर तैयार किया जाय । हा, विश्वविद्यालय की कक्षाओ मे इतिहास आदि के विभिन्न दृष्टिकोण, व्याख्या तथा साधन, स्रोत आदि विद्यार्थियो के सामने रक्खे जाय और उन्हे अपना स्वतन्त्र निर्णय के लिए प्रोत्साहित किया जाय ।

हमारे देश मे शिशु-शिक्षण के साथ-साथ प्रौढ-शिक्षण का कार्य भी अशिक्षितो की भारी सख्या के कारण महत्वपूर्ण है। अत इस शिक्षण-क्रम मे भी गैर-साम्प्रदायिक भावना को विकसित करने की पूरी सामग्री रक्खी जा सकती है। सारा पाठ्यक्रम गैर-साम्प्रदायिक और वर्तमान साम्प्रदायिकता के दृष्टिकोण की गल्ती बतलाने वाला हो तो हमारा उद्देश्य आसानी से पूरा हो सकता है। शिक्षण के अतिरिक्त ज्ञान-प्रसार के आधुनिक साधनो पत्र-पत्रिकाओ, पुस्तको, सिनेमा, रेडियो आदि के जरिये भी इस दिशा मे बहुत काम हो सकता है और बहुसख्यक वर्ग मे से श्रेष्ठता की जटिल भावना और अल्पसख्यक वर्ग मे से लघुता की हीन भावना को धीरे-धीरे दूर किया जा सकता है और लोकतात्रिक नागरिकता की सदभावनाओ से उन्हे ओतप्रोत किया जा सकता है।

राजनैतिक क्षेत्र मे यह जरूरी है कि चुनाव मे इस साप्रदायिकता को कोई स्थान न हो, स्थानो की सुरक्षितता, अलग चुनाव, नौकरियो का अनुपात आदि बिल्कुल न रक्खे जाय और इसका बराबर विरोध किया जाय। सब केवल भारतीय होने के नाते ही अधिकारो को भोगने के पात्र और कर्त्तव्यो की पूर्ति के लिए जिम्मेदार माने जाय।

सक्षेप मे, सामाजिक, शिक्षण-सबधी और राजनैतिक क्षेत्र मे इस साप्रदायिक अलगाव के जितने भी रूप हमे अपने विदेशी साम्राज्यवादी शासको से विरासत मे मिले है वे सब चुन-चुन कर और ढूढ-ढूढ कर जड से नष्ट कर दिये जाने चाहिए। इसके लिए यह भी वाछनीय है कि देश मे इस प्रकार की सस्थाओ की स्थापना हो, जिनका उद्देश्य ही साप्रदायिक तनावो के विभिन्न रूपो का अध्ययन करना, उनके निराकरण के सम्बन्ध मे सरकारो, सस्थाओ और जनता को सलाह देना, साम्प्रदायिक समन्वय के कार्यक्रमो का निर्माण और उनके अनुकूल वातावरण बनाना हो और इस प्रकार की सस्थाओ का पूरा सहयोग दिया जाय।

दूसरा पहलू जो देश की राजनैतिक आजादी और विभाजन के बाद ज्यादा साफ प्रकट गया है वह है बहुसख्यक वर्ग की सकुचित

भावना। हमे स्पष्ट लगता है कि पाकिस्तान के बनने के फलस्वरूप तो विशेषत और गये पचास वर्षो मे हिन्दुओ मे विकसित पराधीनता के विरोध की भावना और मुसलमानो के राष्ट्रीय आन्दोलन से अधिकाशत अलग और उनके विरोधी रहने मे उत्पन्न निराशा और क्षोभ की भावना के कारण भी अब कही-कही बहुसख्यक वर्ग मे अल्पसख्यक वर्ग के प्रति एक अजीब तरह की उच्चता की, सकुचितता की, अवहेलना तथा अन्याय की और उनकी कमजोरी का बेजा फायदा उठाने की वृत्ति बढती नजर आती है। यह हमारी सैकडो वर्षो की गुलाम मनोवृत्ति के उभार का ही चिह्न है। हिन्दू सस्कृति जैसी उदार और समन्वयवादी धरोहर के नाम पर असहिष्णुता, सकुचितता, और स्वार्थ साधन की भावना को फैलाने और उसे दूसरो पर जबर्दस्ती लाद देने की इस मनोवृत्ति के प्रति लोकतत्र और सामाजिक क्राति के समर्थक प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए सजग रहना आवश्यक है। पाकिस्तान या अन्य किसी बाहरी राष्ट्र के द्वारा की गई या की जाने वाली किसी बुराई का नाम लेकर अपनी गर्हित अन्तर्भावना के पोषण का प्रयत्न भी निन्दनीय और वर्जनीय है।

साथ ही अल्पसख्यक वर्ग मे भी पाकिस्तान से अथवा बाहर के अन्य किसी राष्ट्र से प्रेरणा और नेतृत्व प्राप्त करने या उसकी ओर देखने की मनोवृत्ति बिल्कुल अनुचित और गलत है। अल्पसख्यक वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति भारत का नागरिक है और उसे भारत का नागरिक बन कर ही रहना है। पाकिस्तान की तरफदारी या किसी भी सकट के मौके पर पाकिस्तान चले जाने की मनोभावना कभी उनके लाभदायक नही हो सकती, वह हमेशा उनके प्रति शक बढाने वाली ही होगी। पाकिस्तान के नागरिको के अधिकारो की लडाई वहा की जनता स्वय लडेगी। दोनो राष्ट्रो की जनता का भला इसी बात मे है कि वह सनसनीखेज खबरो से उत्तेजित न होकर अपने-अपने देश मे अपने-अपने कर्तव्य-पालन मे लगी रहे। यही बात अन्य देशो के सम्बन्ध मे भी लागू होती है।

सक्षेप में

१ मामाजिक क्राति और प्रगति का समर्थक प्रत्येक भारतीय नागरिक अपने दृष्टिकोण, आचरण और व्यवहार मे मावधानी पूर्वक गैर-साप्रदायिक होगा ।

२ जिन्हे इस ममस्या के ममाधान मे विशेप रुचि हो वे अपना ममय और शक्ति इस मे लगावेगे और अपने देश के किमी छोटे-मे-छोटे क्षेत्र को अयवा मामूहिक जीवन के किसी अग को साम्प्रदायिकता के जहर मे मुक्त करने और समन्वयपूर्ण दृष्टिकोण और जीवन को अग्रमर करने मे अपने-आपको खपा देंगे ।

३ आम जनता मे मे चाहे वह किमी भी धर्म को मानने वाली हो, देश के वाहर कोई कही दुर्घटना होती हो तो उसकी निन्दा, विरोध चाहे वह करे, लेकिन उमके परिणामस्वरूप या उमका वदला यहा के किमी वर्ग पर अत्याचार करके लिया जा सकता है, इम प्रकार की गलत और मूर्खतापूर्ण भावना को अपने विचार मे से बिल्कुल निकाल देने का पूरा प्रयत्न किया जायगा ।

२

सामाजिक ऊंच-नीच का अन्त

हमारे देश मे बहुसंख्यक, अल्पसंख्यक का प्रश्न ऊपर से राजनैतिक और धार्मिक लगता है, किन्तु दरअसल इसकी जड मे सामाजिक विपमता है जो इसके साथ ही अनेक समस्याओ और कठिनाइयो की जननी है ।

जातिया उस अतीत की अर्थहीन स्मृति के लिए आज भी अलग-थलग बनी हुई है, अपने अलग-अलग सामाजिक आचार-विचार को भुला सकने तथा उसी आधार पर अपनी उच्चता अथवा निम्नता की कोटियो को छोड सकने मे आज तक समर्थ नही हुई है ।

एक बडी सामाजिक विषमता छूत और अछूत वर्ग की है । हमारे देश मे एक बहुत बडा जन-समूह समाज मे ऐसा मान लिया गया, जिसे छुआ तक नही जा सकता, यद्यपि समाज के आर्थिक और सामाजिक ढाचे मे उसकी मौजूदगी अत्यन्त आवश्यक थी । उस पर कर्त्तव्य का भारी बोझ रख कर उसके अधिकार न्यूनतम रक्खे गए और उस समूह के वैवाहिक सबध और खानपान, निवास तथा पेशो को उन्ही मे सीमित करके उस वर्ग को अपने-आपमे सकुचित और बाकी के समाज से बिल्कुल अलग और नीचा बना दिया गया । इस प्रकार समस्त हिन्दू समाज ऐसे दो भागो मे बट गया, जिनमे आपस का खानपान, विवाह-सबध और पेशे का परिवर्तन तो दूर, निकट आने और छूने की भी सीमाए नियत हो गई और उनमे कोई भी सामाजिक सम्पर्क नही रहा । यही नही, अछूतो मे भी विभिन्न समूह ऐसे सकुचित बने, जिनमे खान-पान, विवाह और पेशो के बारे मे कई मर्यादाए और बधन लग गये और आपस मे अलगाव की दीवारे ऊची होती गई । यह अलगाव ऐसी मूर्खता पूर्ण हद तक बढा कि सामाजिक रूप से पूरी तरह अभिन्नता वाले जन समूहो मे भी 'सात कनौजिए नौ चूल्हे' की स्थिति पैदा हो गई ।

यह बात तो हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों की स्थिति की सामाजिक दृष्टिकोण से हुई । धार्मिक दृष्टिकोण से भी यहा सामाजिक भेदभाव की वृद्धि हुई । बौद्ध तथा जैन धर्म जो तत्कालीन याज्ञ प्रधान वैदिक धर्म के सम-कालीन तथा पूर्वकालीन योग और श्रमण परम्परा के उत्तराधिकारी थे, बाद मे सामाजिक उथल-पुथल के स्रोत बन गए और यद्यपि, बाद मे बौद्ध-धर्म इस देश से खत्म-सा हो गया और जैन धर्म सामाजिक दृष्टिकोण से हिन्दू समाज का अग-सा बन गया । फिर भी एक ओर इन धर्मों के मानने-

वाले और हिन्दू धर्म के माननेवालो मे विवाह सबंध व्यापक रूप मे न होने के कारण थोडा-बहुत अलगाव मौजूद है, दूसरी ओर इन समाजो मे भी हिन्दू समाज की भाति जात-पात, छूत-अछूत की भावनाए प्रबल हो गई यद्यपि ये धर्म हिन्दू-समाज की इन्ही तथा अन्य बुराइयो के खिलाफ विद्रोह के रूप मे उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार आर्य समाज भी एक अलग जाति-सी बनकर रह गया। प्रतीत होता है और सिख-धर्म जो हिन्दू और मुस्लिम समाजो की बुराइयो के निराकरण के रूप मे पैदा हुआ था, कट्टर हिन्दू धर्म की शाखा बन गया, और अब सिख धर्म और सिख समाज हिन्दू धर्म और समाज मे बिल्कुल अलग हो गया है। लेकिन इसमे भी हिन्दू समाज मे व्याप्त, ऊच-नीच, और खान-पान तथा ब्याह की सकुचितताए घुस कर कडी हो गई है।

यद्यपि इस्लाम धर्म के अनुयायी यहा विजेता के रूप मे आये और यहा के निवासियो पर राज करने लगे, किन्तु फिर भी हिन्दू समाज ने उन्हे बिल्कुल अलग रक्खा, नीचा माना और उनके साथ विवाह-सबंध और सहभोजन को अनुचित माना। यही नही, हिन्दू समाज के जो सदस्य एक बार भी जान बूझ कर, जोर-जबर्दस्ती या अनजाने भी इस धर्म या समाज मे शामिल हो गए उनका हिन्दू समाज ने पूर्णतया बहिष्कार किया। सभवत इस सामाजिक बहिष्कार और अपमान ने मुस्लिम लीग के द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त को जन्म दिया। सच तो यह है कि पाकिस्तान का जन्म और उसकी वर्तमान मनोवृत्ति उच्च वर्णीय हिन्दू-वर्ग की उच्चता की भावना की ही प्रतिक्रिया अथवा उसका इस्लामी सस्करण है, किन्तु गौर की बात है कि मुसलमान समाज मे और ईसाई समाज मे भी, जो सैद्धान्तिक

भेदभाव हिन्दू समाज तक ही सीमित न रह कर लगभग देशव्यापी वन गया है, यद्यपि हिन्दू समाज मे इसकी उग्रता सवसे अधिक है ।

हमारे देश के जन-समूह मे यह विभिन्न सामाजिक स्तरो का आपसी विरोध, सकुचितता और कटुता पिछले चालीस-पचास साल की राष्ट्रीय-जागृति के परिणामस्वरूप दवी हुई रही है, कुछ कम भी हुई है, विदेशी राज्य को खत्म कर देने के वडे आदोलनो और सघर्ष ने अलगाव की इस भावना पर अकुश रक्खा है और पश्चिमसे प्राप्त लौकिकता तथा धर्म के प्रति उदासीनता की भावना और लोकतत्र के विचार ने इसे पनपने से रोका है, लेकिन देश के आजाद हो जाने पर जो ताकते उस प्रयत्न मे लगी थी वह अव खाली हो गई है अथवा जो ध्यान अव तक राजनैतिक आजादी प्राप्त करने की ओर केन्द्रित था वह अव वहा से हट कर दूसरी तरफ लगने को है । अव इस ताकत का उपयोग सामाजिक क्राति और समानता की प्राप्ति के लिए होना चाहिए । यदि ऐसा न हुआ तो पूर्वोक्त भावना वढ कर भयकर रूप ले सकती है । इसके दो सकेत हमारे सामने है ।

एक ओर तो सामाजिक स्तर में नीचे लोगो मे अपने अधिकारो के सवध मे नई जागृति आने लगी है और वे इन्हे प्राप्त करने के लिए अधिक उग्र रूप से उत्सुक होने लगे है । यही नही, उनमे अपने तथाकथित अत्या-चारियो अथवा उच्च-स्तर वालो से वदला लेने या उन्हे परम्परागत अथवा समृद्ध सामाजिक और आर्थिक स्थिति के कारण प्राप्त विशेष-अधिकारो का उपभोग वलपूर्वक न करने देने की कटुतापूर्ण मनोवृत्ति पैदा हो रही है । हमारा छुआ हुआ अन्न फेक दिये जाने के काविल है या हमारा छुआ हुआ उच्च वर्णीय शरीर स्नान के विना पवित्र नही हो सकता, केवल यह दुर्भावना ही असह्य हो गई, सो वात नही, वल्कि तथाकथित उच्चवर्ण के लोगो के हाथ का छुआ तथाकथित नीचे स्तर के लोग न खाये, फेक दे, यह भावना प्रतिक्रिया के रूप मे वढ रही है । कुछ समय पूर्व उत्तर-प्रदेश मे द्विज-लोगो ने अपने-आपको सगठित कर 'ब्राह्मण, क्षत्रि, लाला, इनका हो मुह काला', यह नारा खडा किया था और दक्षिण मे द्रविड सघ द्वारा सचालित

द्राविडिस्तान का आदोलन और तथाकथित ब्राह्मण-प्रमुखता का विरोध इसी बीमारी के सकेत है। इसमे शक नही कि ये आदोलन अभी तक नगण्य है लेकिन इनके कारणो को शीघ्र और व्यापक पैमाने पर दूर नही किया गया तो ये जोर पकड सकते है।

दूसरी ओर ब्राह्मणो की सामाजिक प्रमुखता पर दो ओर से आघात हो रहा है, एक ओर राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र के विचार, विस्तार के परिणाम-स्वरूप तथा दूसरी ओर ब्राह्मणेतर लोगो मे शिक्षा और जागृति के फैलने से और इन दोनो के फलस्वरूप उन्हे जो आर्थिक तथा प्रतिष्ठा सबधी हानि हुई है, इस सबके कारण कुछ लोगो द्वारा हिन्दू धर्म और सस्कृति की रक्षा के नाम पर प्रबल फासिस्ट आदोलन का बीजारोपण किया जा रहा है, जो कभी भी जोर पकड सकता है।

इस प्रकार भारतीय समाज के विभिन्न स्तरो की सामाजिक विषमता, उनके पारस्परिक घात-प्रतिघात और वर्गगत स्वार्थों के पोषण के आदोलन देश के कल्याण और सर्वोदय की भावना के विपरीत है, क्योकि वे स्पष्ट ही सब के हित के मुकाबले मे "कुछ" के स्वार्थों को तरजीह देते है, अनुचित अधिकारो को पशु-बल से कायम रखना चाहते है या अनावश्यक कटुता और हिंसा को बढावा देकर उन्हे खत्म कर देना चाहते है। लेकिन कटुता और हिंसा तो प्रतिहिंसा और प्रतिक्रिया को उत्पन्न कर देती है, इससे क्राति और समानता की ओर बढने का काम रुक जाता है, अथवा पिछड भी जाता है, अत वास्तविक सामाजिक क्राति के समर्थक को स्वभावत इन दोनो ओर के अतिवादो और आत्मघाती तथा देशघाती आदोलनो का विचार और व्यवहार दोनो के द्वारा व्यक्तिगत रूप मे और आवश्यक हो तो सगठित रूप मे विरोध करना होगा और सामाजिक ऊच-नीच, विषमता, और उत्पीडन को योजना-बद्ध तरीके पर हटाना होगा।

आधार पर सभी सार्वजनिक कार्यों, सेवाओ, व्यापार और पेशो मे लिये जाने का समर्थन करेगा और दूसरी ओर वह किसी भी रूप मे चली आ रही सामाजिक ऊच-नीच की भावना और भेद-भाव को स्वय स्वीकार नही करेगा और उन्हे हटाने मे अपनी शक्ति का उपयोग करेगा।

सक्षेप में सामाजिक क्राति का समर्थक

१ किसी भी सच्चे-झूठे ऐतिहासिक अथवा परपरागत प्रकरण के आधार पर किसी सामाजिक द्वेप, कटुता, अपमान या विपमता को नही मानेगा, उसका समर्थन नही करेगा।

२ किसी मत, ग्रन्थ, सम्प्रदाय, रिवाज आदि के आधार पर सामाजिक कर्त्तव्य और व्यवहार की असमानता को नही मानेगा और उसका विरोध करेगा।

३ जातपात, छुआछूत और सामाजिक अधिकार की विपमता की किसी भी कोटि को अस्वीकार करेगा और उसका विरोध करेगा।

४ तथाकथित ऊची सस्कृति, वश, पद, सम्पत्ति के आधार पर सामाजिक उच्चता या विशेपाधिकार का समर्थन नहीं करेगा।

५ सफाई, स्वास्थ्य, सयम और निरामिप आहार के अलावा और किसी प्रकार का अलगाव सहभोजन मे नही मानेगा।

६ आर्थिक स्थिति, विचार-धारा, रहन-सहन, भाषा के अन्तर को भले ही वह स्वीकार करे किन्तु किसी जन्मजात सामाजिक ऊचनीच के भेदभाव को वह विवाह सबध मे बाधक नही मानेगा।

२

स्त्रियो के समान-अधिकार

स्थिति मे एक छोटा और एक वडा माना जाय, एक गुलाम और एक स्वामी माना जाय, एक के अधिकार कम और एक के अधिक हो, यह बात सीधे तौर पर ही अटपटी और अन्याय पूर्ण लगेगी, लेकिन दुनिया मे और खास कर हमारे मुल्क मे अब तक होता यही आया है।

अधिकाश दुनिया मे मानव-समाज का सगठन पितृ-प्रधान परिवार-प्रणाली पर रहा है। पिता परिवार का केवल नेता ही नही उसका मालिक भी बन बैठा है। परिवार के नेता होने के नाते लडाई-झगडे के खतरे उसने उठाये तो स्वभावत शान्तिकाल मे आर्थिक साधनो के उपयोग और नियत्रण मे भी उसकी आवाज को प्रधानता मिलने लगी और धीरे-धीरे उनकी प्रमुखता पूर्णता को पहुच गई और इस प्रकार वह परिवार का पूरी तरह स्वामी बन गया।

इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि किसी भी समाज मे औसतन तरीके पर स्त्री-वर्ग पुरुष-वर्ग से शारीरिक बल मे कम है, उन की औसतन लबाई और तोल भी पुरुष के औसत से कम है। यह ठीक है कि मानसिक और बौद्धिक शक्तियो मे ऐसा कोई निश्चित तारतम्य नही है और आवश्यकता तथा अभ्यास से स्त्री भौतिक बल मे भी पुरुष का मुकाबला कर सकती है और यह भी सभव है कि स्त्री-वर्ग की यह कमी भी गये हजारो वर्ष के अन्याय, शोषण तथा उन्हे साहस के कार्यों से अलग रखने का परिणाम भी हो, लेकिन यह तो मानना ही पडेगा कि गर्भ के विकास और शिशु के लालन-पालन के उत्तरदायित्व के कारण स्त्री को विशेष सावधानी पूर्वक रक्षा और आराम की जरूरत है और यह आवश्यकता उसके साथ प्राकृतिक रूप से जुडी हुई है। इसी आवश्यकता ने उसे बचाव अथवा आक्रमण के कई सघर्षो मे पीछे रहने को बाध्य किया होगा और घर मे रहकर घर सम्हालना उसके हिस्से मे आया होगा। इसी आवश्यकता ने उसे शान्ति-काल मे जमीन जोतने, हल चलाने, व्यापार करने जैसी मेहनत के उद्योग करने आदि ज्यादा जोखिम भरे और परिश्रम के कामो से रोका होगा और एक बार शुरुआत हो जाने पर फिर पुरुषो

और आजीविका सबधी उनकी पर-मुखापेक्षिता बढती गई और फलस्वरूप सभी तरह समाज में उनका स्थान पुरुष के मुकाबले मे गौण होता गया।

इस प्रकार सुरक्षा और आजीविका के कर्त्तव्य मे स्त्रियो को मुक्ति तो मिली, लेकिन यह मुक्ति उन्हे बहुत महगी पडी और वे राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारो मे बिल्कुल वचित हो गई। राष्ट्र के हित और अहित मे उनका योग और सलाह अनावश्यक हो गई, इसका असर धार्मिक, सामाजिक, तथा सास्कृतिक अथवा अन्य क्षेत्रो पर भी पडा, क्योकि राजनैतिक अधिकारो और जिम्मेदारियो से अलग हो कर वे घर के कार्यो मे अधिकाधिक लगती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका कार्यक्षेत्र घर की चार-दीवारी तक ही सीमित हो गया और बाहर के सघर्ष से वे रहित हो गई और आर्थिक मुखापेक्षिता के कारण वे धीरे-धीरे पुरुष-वर्ग की मित्र और सहयोगी रहने के बजाय उसका खिलौना, विलास का साधन, और अन्त मे उसकी दासी नही बल्कि सम्पत्ति बन गई। पुरुष मानवता से दूर हट कर दानव बना और स्त्री मानवता से हटकर निरीह और मूक पशु बनी। मानव दोनो ही न रहे, अत स्त्री को इस स्थिति से उठा कर समान मानवता की स्थिति पर प्रतिष्ठित करना सामाजिक-क्रांति का बडा और बहुत आवश्यक कार्यक्रम है।

की प्रगति का सूर्य उदित हुआ। उसका प्रकाश हमारे देश में भी फैला और राजा राममोहनराय के देश की नवजागृति के कार्यक्रम में स्त्रियों को समानाधिकार देना भी शामिल हुआ। तब से हमारे देश की स्त्रियों को भी जीवन के अनेक क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर अधिकार देने का विचार प्रगति करता गया और प्राचीन धर्म-शास्त्रों आदि से इसके समर्थन में प्रमाण भी सामने आये।

१९४७ तक हमारा देश राजनैतिक गुलामी में जकड़ा हुआ था और देश की समग्र विचार और कार्य-शक्ति देश की आजादी प्राप्त करने में संलग्न थी। आजादी की इस लंबी और अहिंसात्मक लड़ाई में भारतीय स्त्री-समाज का हिस्सा भी बड़ा शानदार और साहसपूर्ण रहा और फलस्वरूप राजनैतिक अधिकार देश की आजादी के साथ-साथ उन्हें अपने-आप ही प्राप्त हो गये।

लेकिन सामाजिक क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त करने में उन्हें अवश्य अधिक कठिनाई होगी। जब देश में विधुर-विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है तो विधवा विवाह पर भी कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं रह सकता। तलाक प्रथा स्त्री-पुरुष दोनों की समान सुविधा का प्रश्न है, वह भी कानूनी तौर पर निकट भविष्य में प्राप्त हो जायगी। पर्दा, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, स्त्रियों और पुरुषों के सामाजिक उत्तराधिकार के प्रश्न, जो स्त्री की सामाजिक निम्नता के चिह्न हैं, धीरे-धीरे दूर होते जा रहे हैं और कानूनी प्रतिबंध तो निकट भविष्य में हट जायगे, लेकिन कानून बनवा लेने से कहीं अधिक स्त्री-समाज में कठिन उनको व्यवहार में लाने योग्य शक्ति और क्षमता पैदा करने का प्रश्न है। इसमें भारतीय नागरिकों के प्रबल और निरन्तर प्रयत्न की आवश्यकता है। यह प्रयत्न संगठित, व्यापक और गहरा हो, तभी सामाजिक क्रांति संभव होगी।

कुछ सैद्धातिक ही रहेगी ।

लेकिन पश्चिम मे निश्चय तौर पर और पूर्व मे भी कही-कही स्त्रियो के समान अधिकार का सवाल स्त्री और पुरुष वर्गो मे अधिकारो की लडाई का सवाल वन गया है और अधिकारो की लडाई का परिणाम कभी सतोष-प्रद नही होता, क्योकि सघर्ष सदा कटुता और प्रतिक्रिया पैदा करता है । फलस्वरूप पश्चिम मे और पूर्व मे भी इस सारे सघर्ष का परिणाम अच्छा ही हुआ, सो वात नही । पारिवारिक सुख-शाति वहुत घरो मे भग हो गई है, तलाको की सख्या वहुत बढ गई है और विवाह भी स्त्री पुरुष की समृद्धि और सुख वढाने के वजाय विवाद और विग्रह के कारण वन गये है । इसका सबव यह है कि पश्चिम मे इस प्रश्न पर सर्वोदय की दृष्टि से विचार नही किया गया । स्त्री तथा पुरुष इस ससार मे दो विभिन्न और विरोधी इकाइया नही वल्कि एक दूसरे की पूरक और सहयोगी है । दोनो के आध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक आदर्श एक है और वे है सबके कल्याण मे अपना कल्याण और अपनी शुद्धि से सव की शुद्धि । ऐसी स्थिति मे अधिकारो का कोई सघर्ष नही हो सकता, हको की कोई लडाई मुमकिन नही । यहा तो केवल कर्त्तव्य-पालन की ही दौड हो सकती है और वही होनी चाहिए ।

स्त्री-पुरुष से शारीरिक शक्ति की दृष्टि से इस समय औसतन कम-जोर है, अत पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह स्त्री जाति का सरक्षण करे लेकिन स्त्री अहिसा, कोमलता, सेवा और प्रेम का प्रतीक है, वह जग जननी का रूप है, अत पुरुष का स्वाभाविक आदर उसके प्रति होना चाहिए । स्त्री, ज्ञान, वल और कर्म की दृष्टि से अधिकाधिक समुन्नत हो, पुरुष की प्रत्येक अपेक्षित और अनपेक्षित सहायता उसे मिले, यह आतरिक भावना पुरुष के मन मे सदा रहनी चाहिए ।

रूप मे उसमे प्रेम हो। पुरुष की उन्नति मे उसका हर तरह का सहयोग हो। यह भावना स्त्री मे बलवती रहे। दोनो यह माने कि एक दूसरे के प्रेम, सहयोग और विश्वास के बिना दोनो अधूरे है, दोनो एक-दूसरे मे मिलकर ही पूर्ण हो सकते है। दोनो अपने-आपको एक दूसरे के लिए उत्सर्ग करने की भावना प्रबल रक्खे। इस दृष्टि से स्त्री और पुरुष के बीच अधिकारो के लिए लडने का सवाल ही नही खडा होता।

सामाजिक क्रांति का समर्थक प्रत्येक भारतीय नागरिक

१ स्त्री-पुरुष दोनो को मानव-समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे समानाधिकारी और पूरक मानेगा।

२ कठिनाई और मुसीबत के हरेक मौके पर खुद आगे आयगा और दूसरे की सहायता करने, बचाने, कष्ट कम करने के किसी अवसर को हाथ मे न जाने देने का प्रयत्न करेगा।

३ स्त्रियो के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सभी अधिकारो की कमी को पूरा करने मे आज का पुरुष-वर्ग अपने पूर्वजो द्वारा किये गए अन्याय के प्रायश्चित्त रूप मे विशेषतया प्रयत्नशील होगा।

४ अपने आदर्श मे स्त्री-पुरुष दोनो की सर्वतोमुखी उन्नति का इच्छुक होगा। पुरुष-वर्ग के द्वारा स्त्रियो को आगे बढाने के विशेष प्रयत्न का अर्थ उन पर एहसान करना नही होगा, बल्कि समान अधिकार और कर्तव्य वाले साथियो के रूप मे कर्तव्य की दौड मे आगे बढाने का होगा। इसमे कार्यक्षेत्र की भिन्नता का ही प्रश्न नही है। जो जहा है, कर्तव्य मे आगे रहे और जो जहा आना चाहे, उसे वहा आने मे कोई रुकावट न हो।

४

हरिजनो का उत्थान

आवश्यक है और इस एक कार्यक्रम की पूर्ति से ही सामाजिक क्रांति की बहुत अगो मे सिद्धि हो जाती है।

हमारे देश के सामाजिक स्तर का सबसे निचला भाग हरिजनो का है जो समाज के लिए बहुत आवश्यक काम—गदगी दूर करने और सफाई रखने की पूर्ति करता है। मरे हुए जानवरो को उठाने, उनके चमडे रगने, हड्डिया इकट्ठी करने आदि के काम भी गदगी उठाने के काम से मिलते-जुलते है और वे सारे काम एक विशिष्ट मानव-समूह करता है, जो पीढी-दर-पीढी इसी काम को करता चला आया है, जो इसके अलावा और कोई काम प्राय नही कर सकता और इसी कारण तथा अन्य किन्ही कारणो से भी समाज मे बहुत नीचा, यहा तक अछूत मान लिया गया है। इन्ही हरिजनो की तीन समस्याए है, जिन्हे हल करना जरूरी है। (१) हरिजनो द्वारा किये जाने वाले काम वशानुगत रूप से वही वर्ग कर रहा है इस कारण से हरिजन वर्ग मे शिक्षा का, नई विचारभावना का प्रगतिशील विचार तथा रहन-सहन का लोप हो गया है और उनकी दृष्टि अत्यत सकुचित हो गई है। अगर उन्हे वास्तव मे इस अज्ञान और निम्नता से ऊपर उठाना है तो अनिवार्यत आवश्यक है कि हरिजन-वर्ग गदगी उठाने सफाई करने आदि का ही काम करे और सारे कार्यक्षेत्र उनके लिये बद हो—इस बन्धन को व्यावहारिक रूप से दूर करना होगा।

रूप मे उससे प्रेम हो। पुरुष की उन्नति मे उसका हर तरह का सहयोग हो। यह भावना स्त्री मे बलवती रहे। दोनो यह माने कि एक दूसरे के प्रेम, सहयोग और विश्वास के बिना दोनो अधूरे है, दोनो एक-दूसरे मे मिलकर ही पूर्ण हो सकते है। दोनो अपने-आपको एक दूसरे के लिए उत्सर्ग करने की भावना प्रबल रक्खे। इस दृष्टि से स्त्री और पुरुष के बीच अधिकारो के लिए लडने का सवाल ही नही खडा होता।

सामाजिक क्राति का समर्थक प्रत्येक भारतीय नागरिक

१ स्त्री-पुरुष दोनो को मानव-समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे समानाधिकारी और पूरक मानेगा।

२ कठिनाई और मुसीबत के हरेक मौके पर खुद आगे आयगा और दूसरे की सहायता करने, बचाने, कष्ट कम करने के किसी अवसर को हाथ मे न जाने देने का प्रयत्न करेगा।

३ स्त्रियो के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सभी अधिकारो की कमी को पूरा करने मे आज का पुरुष-वर्ग अपने पूर्वजो द्वारा किये गए अन्याय के प्रायश्चित्त रूप मे विशेषतया प्रयत्नशील होगा।

४ अपने आदर्श मे स्त्री-पुरुष दोनो की सर्वतोमुखी उन्नति का इच्छुक होगा। पुरुष-वर्ग के द्वारा स्त्रियो को आगे बढाने के विशेष प्रयत्न का अर्थ उन पर एहसान करना नही होगा, बल्कि समान अधिकार और कर्तव्य वाले साथियो के रूप मे कर्तव्य की दौड मे आगे बढाने का होगा। इसमे कार्यक्षेत्र की भिन्नता का ही प्रश्न नही है। जो जहा है, कर्तव्य मे आगे रहे और जो जहा आना चाहे, उसे वहा आने मे कोई रुकावट न हो।

४

हरिजनो का उत्थान

वैसे हरिजनो का उत्थान सामाजिक क्रान्ति के सामाजिक ऊच-नीच दूर करने के कार्यक्रम का ही अग है, किन्तु यह अपने-आपमे ही इतना विशाल और जटिल काम है कि इसे अलग और स्वतन्त्र कार्यक्रम ही मानना बहुत

आवश्यक है और इस एक कार्यक्रम की पूर्ति से ही सामाजिक क्रांति की बहुत अगो मे सिद्धि हो जाती है।

हमारे देश के सामाजिक स्तर का सबसे निचला भाग हरिजनो का है जो समाज के लिए बहुत आवश्यक काम—गदगी दूर करने और सफाई रखने की पूर्ति करता है। मरे हुए जानवरो को उठाने, उनके चमडे रगने, हड्डिया इकट्ठी करने आदि के काम भी गदगी उठाने के काम से मिलते-जुलते है और वे सारे काम एक विशिष्ट मानव-समूह करता है, जो पीढी-दर-पीढी इसी काम को करता चला आया है, जो इसके अलावा और कोई काम प्राय नही कर सकता और इसी कारण तथा अन्य किन्ही कारणो से भी समाज मे बहुत नीचा, यहा तक अछूत मान लिया गया है। इन्ही हरिजनो की तीन समस्याए है, जिन्हे हल करना जरूरी है। (१) हरिजनो द्वारा किये जाने वाले काम वशानुगत रूप से वही वर्ग कर रहा है, इस कारण से हरिजन वर्ग मे शिक्षा का, नई विचारभावना का प्रगतिशील विचार तथा रहन-सहन का लोप हो गया है और उनकी दृष्टि अत्यत सकुचित हो गई है। अगर उन्हे वास्तव मे इस अज्ञान और निम्नता से ऊपर उठाना है तो अनिवार्यत आवश्यक है कि हरिजन-वर्ग गदगी उठाने सफाई करने आदि का ही काम करे और सारे कार्यक्षेत्र उनके लिये बद हो—इस बन्धन को व्यावहारिक रूप से दूर करना होगा।

के उत्थान की दृष्टि से तो यह सवाल बिल्कुल निरर्थक है, पर समाज की जिम्मेदारी है कि वह अन्य कामो की तरह इस काम की भी व्यवस्था करे। लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इस सवाल पर विचार किया भी जाय, तो इसका भी सरल हल निकल सकता है। एक बात तो यह कि बडे शहरो मे फ्लश आदि तरीके के पाखानो का रिवाज व्यापक किया जाय, और गावो तथा कस्बो मे खाई के पाखानो को प्रोत्साहित किया जाय, जिसमे मैले का उपयोग पूरी तरह खाद के लिए हो सके। जहा ये दोनो सभव न हो, वहा सफाई की वर्तमान पद्धति भी रहे लेकिन उसका तरीका इतना सुधार दिया जाय और उसकी मजदूरी इतनी ज्यादा रक्खी जाय कि एक ओर तो वह काम इतना गदा न रहे और दूसरी ओर हरिजन अथवा कोई भी बेकार लोग उसे करने को राजी हो जाय। साथ ही काम से नफरत की दृष्टि भी बदली जाय। जिस तरह से आज हरिजनेतर लोग हड्डियो का ठेका लेते है, जूते का कारखाना खोल लेते है, उसी तरह पाखाने और कूडा करकट से खाद तैयार कराने, मीथेनगैस बनाने के कारखाने खोले और इसके लिए कूडा-करकट इकट्ठा करने का प्रबध करे और काम करने वालो को काफी मजदूरी दे। सरकार इन कारखानेवालो को इस काम के लिए मजदूरी देने मे अधिक आर्थिक मदद दे। जहा फ्लश के सडास न बन सकें और खाई के पाखानो की भी सुविधा न हो वहा छेद के पाखाने (Bore-hole Latrines) बनाये जाय और मामूली तरह के तहारत, जहा तक सभव हो, आगे न बनाये जाय ।

इन तरीको पर चलने से धीरे-धीरे केवल हरिजनो द्वारा मैला उठाने का काम करीब-करीब खत्म हो जायगा। ऐसी अवस्था मे हरिजन बालक आसानी से राष्ट्रीय-सेवा के अन्य कार्यों मे लग जायगे और कूडा-करकट साफ करने के कामो मे उनके अलावा अन्य जातियो के लोग भी आ जायगे। तब हरिजनो पर केवल इन्ही कामो को पीढी-दर-पीढी करने की जो जिम्मे-दारी चली आई है, वह खत्म हो जायगी। ऐसा होने पर ही उनमे हीनता का जो भाव है तथा दूसरो मे इनके प्रति जो घृणा का भाव है, वे दोनो मिट

जायगे, और हरिजनो मे शिक्षा का जो प्रचार किया जा रहा है, उसका भी ठीक-ठीक उपयोग हो सकेगा।

जब हरिजन आमतौर पर दूसरे काम भी करने लग सकेंगे अर्थात् कोई विश्वविद्यालयो मे अध्यापक बन कर ब्राह्मणो को शिक्षा देगे, सेनाधिकारी बनकर क्षत्रियो का नेतृत्व करेगे, व्यापारिक तथा औद्योगिक नेता बन कर वैश्यो को आदेश देगे और इस तरह उन क्षेत्रो मे काम करने वालो के समक्ष होकर रहेंगे तभी समाज मे अस्पृश्यता और हीनता के विरुद्ध सामाजिक क्राति सम्पन्न होगी और हरिजनो मे जो प्रतिबन्ध और हीनताए हमारे देश मे पीढियो से चली आ रही है, उनका अत होगा और यह वर्ग समानता तथा स्वाधीनता का सच्चा अनुभव करेगा।

आज की स्थिति को देखते हुए उक्त आदर्श स्थिति निश्चय ही बहुत क्रातिकारी होगी और दूर की प्रतीत होगी, लेकिन सही योजना और अविश्रात कर्मठता के जरिये यह क्राति निश्चित रूप से वास्तविक की जा सकती है।

लेकिन इस सारे कार्यक्रम मे एक बात खासतौर पर ध्यान मे रखने की यह है कि उनके लिए जो कुछ किया जाय वह उन्हे समाज मे अलग इकाई के रूप मे रखने के लिहाज से नही बल्कि उनकी हीनताओ को दूर करके उन्हे समाज मे घुलामिला लेने की दृष्टि से ही किया जाना चाहिए। इस दृष्टि मे देश मे जो जगह-जगह हरिजन छात्रावास, हरिजन मदिर, हरिजन पाठशाला, हरिजन उद्योगशाला आदि सस्थाए केवल हरिजनो के लिए बनाई जाती है, उनका समर्थन नही किया जा सकता। होना यह चाहिए कि हरिजन बहुल क्षेत्रो मे सार्वजनिक सस्थाए खोली जाय और अन्य सस्थाओ मे प्रवेश अधिकाधिक बढाया जाय। सरकारी सस्थाओ मे तो हरिजनो को आने का प्रोत्साहन मिलना ही चाहिये और उन्हे स्वय अधिकाधिक सख्या मे उसमे शामिल होना चाहिये। चूकि भारतीय सविधान मे अस्पृश्यता गैर-कानूनी करार दी जा चुकी है अत सरकार को घोपित कर देना चाहिए कि प्रत्येक सरकारी और सरकार से सहायता तथा स्वीकृति प्राप्त सस्था हरिजनो के लिए खुली होगी, हरिजनेतर लोगो मे से कुछ अगर अपनी गैर-कानूनी प्रवृत्ति के कारण उनमे फायदा न उठाना चाहे तो वह उनकी इच्छा है, लेकिन हरिजनो को तो निश्चितरूप मे उनमे प्रवेश करने की छूट, सुविधा और प्रोत्साहन होना ही चाहिये। इतनी दृढ और स्पष्ट दृष्टि तथा व्यवहार के बिना हरिजनो का सामाजिक स्तर ऊचा नही होगा और हम सामाजिक क्राति की ओर नही बढ पायगे। इसके अभाव मे हरिजनोत्थान केवल एक अवसरवादी राजनैतिक नारा बनकर रह जायगा।

सक्षेप में सामाजिक क्राति की दृष्टि से हरिजनो के उत्थान के कार्यक्रम की दिशा यह होगी

१ हरिजन-उत्थान का लक्ष्य हरिजनो का एक अलग-थलग समाज नहीं बल्कि भारतीय समाज का घुलामिला अग बना देना है।

२ हरिजन अपने पेशे के अलावा अन्य पेशो मे शामिल होने की योग्यता प्राप्त करे और व्यावहारिक रूप मे अधिकाधिक सख्या मे उनमे प्रवेश करे।

३ गदगी उठाने और सफाई करने के काम को जितना हो सके परिणाम में घटाया और सुधारा जाय जिससे वह कम-से-कम गदा और अस्वास्थ्यकर रह जाय।

४ सफाई आदि के वर्तमान पेशो की मजदूरी इतनी अधिक बढाई जाय जिससे एक ओर हरिजन सुविधापूर्वक रह सके और दूसरी ओर अन्य पेशे और जाति वाले भी इस पेशे की ओर आकर्षित हो सके ।

५ हरिजनो तथा अन्य लोगो के बीच की सामाजिक, आर्थिक, तथा शिक्षा सबधी विषमता और प्रतिबध को हटाया जा सके ।

६ हरिजनो आदि पर अब तक चले आ रहे अत्याचार, अवहेलना और अपमान के कारण होने वाली प्रतिक्रिया और प्रतिहिंसा की भावना उनमे जोर न पकडे, इसका खयाल समाज के नेताओ, सरकार और कार्यकर्ताओ तथा हरिजनो सबको रखना चाहिये । वैर से वैर नाश होने वाला नहीं है, प्रतिहिंसा प्रतिक्रिया को ही बढायगी। वैर का नाश अवैर से, अत्याचार का नाश प्रेम और कर्तव्य-पालन से ही होगा । इस सनातन सत्य को सदा ही ध्यान मे रखना आवश्यक है ।

५

विभाजन के घावो का इलाज

यहा वसे हो, या थोडी वहुत चल सम्पत्ति लेकर आये है, लेकिन उन सवको अपनी जन्मभूमि छोडनी पडी है, अपने व्यवस्थित सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक जीवन को छिन्न-भिन्न करना पडा है और अपने सारे जीवन और सवधो का पुनर्निर्माण करना पडा है।

इसमे शक नही कि जितने लोग पाकिस्तान से आकर यहा वसे है, करीव-करीव उतने ही या कुछ कम-ज्यादा जाकर पाकिस्तान मे वसे है, लेकिन यहा से पाकिस्तान जाने वाले लोगो का रहन-सहन, पेशा, विचार और कार्यशक्ति आनेवालो से भिन्न थी और एक तरफ से जो लोग चले गये है, उनके जाने से देश के सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक जीवन मे जो स्थान खाली हुआ, उसकी पूर्ति आनेवालो के जरिये पूरी तरह से नही हो सकती। इसीका परिणाम यह है कि एक ओर हमारे सामाजिक जीवन मे यहा से जानेवाले लाखो लोगो के कारण जो अव्यवस्था हुई है, उसे ठीक करना है और दूसरी ओर पाकिस्तान से आने वाले लाखो लोगो को यहा के सामाजिक जीवन मे ठीक स्थान देकर उन्हे अपनी सामाजिक और आर्थिक-व्यवस्था मे घुलामिला लेना है। यह ठीक है कि केन्द्रीय और राजकीय सरकारे इस तरफ आरभ से ही प्रयत्नशील है और हर साल करोडो रुपया इस ओर खर्च किया जा रहा है। सरकारो ने पहले इन लाखो आदमियो को भोजन, वस्त्र, और आश्रय देने का प्रयत्न किया और अव मकान और रोजगार देने का प्रयत्न चालू है और इसमे भी शक नही कि देश की जनता ने इनके साथ वहुत सहानुभूति दिखलाई है और इनकी मदद भी की है। सरकार और जनता ने जितना कुछ इनके लाभ और राहत के लिए किया है उतना ही नही किया जाता, तो आज यह कल्पना कर सकना भी कठिन है कि इनकी आज क्या हालत होती, लेकिन यह भी नही है कि जितना उन लोगो के साथ अव तक किया गया है और किया जा रहा है उससे उनकी मुसीवते खत्म नही हुई, उनका दृष्टिकोण स्वस्थ और रचनात्मक नही वना है। इस कमी को दूर करने के लिए सामाजिक क्रान्ति के समर्थक भारतीय नागरिको के सामने वहुत वडा कार्यक्षेत्र है और इसमे उनके प्रयत्नो की वडी आवश्यकता है।

बाहर से आनेवाले इन लाखो शरणार्थियो अथवा पुरुषार्थियो का एक अलग-सा वर्ग ही बन गया है। इनकी अलगाव की भावना प्रबल है। दूसरी ओर जिनमे ये आकर बसे है, उनसे सास्कृतिक रीति-रिवाज और भाषा सबधी भिन्नता होने के कारण तथा इससे भी अधिक पुराने लोगो का रोज-गार ये नवागतुक कुछ अशो मे छीनते जा रहे है, इस कारण भी इनके प्रति असतोष की और अलगाव की भावना पुराने निवासियो के हृदय मे सहानु-भूति का स्थान ले रही है। साथ ही इन बन्धुओ मे बेरोजगारी, गरीबी, बीमारी, अशिक्षा तीव्र तथा व्यापक रूप मे फैली हुई है, जिनसे निराश और दिग्विमूढ ये अपने-आपको महसूस करते है और इस निराशा और क्षोभ मे जितने क्षुभित ये कभी-कभी हो जाते है और पाकिस्तान मे इन पर हुए अत्याचारो की आग को यहा मौका पड जाने पर पुराने निवासियो, खासकर मुसलमानो के साथ झगड कर बुझा लेने की उल्टी कोशिश करते है। उसे देखते हुए सामाजिक क्राति और सतुलन की दृष्टि से यह आवश्यक लगता है कि जहा-जहा ये लोग आकर बस रहे है वहा इस प्रकार के कार्यकर्ताओ की बडी सख्या मे और काफी समय तक आवश्यकता होगी, जो उनमे फैल सके और विभाजन के कारण इनके शरीरो पर, इनके जीवन पर और इन दोनो से अधिक इनकी आत्माओ पर लगे घावो को अपनी सेवा और सहानु-भूति के मरहम द्वारा भरने की कोशिश कर सके। यह काम न केवल दान अथवा उपरी सहायता से हो सकता है

नागरिकता के स्तर पर कायम रखना है। विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान बनने पर जितने मुसलमान इस देश को छोड़ कर चले गए और जिनका पाकिस्तान के प्रति आकर्षण हो, वे चले जाय, लेकिन इस सबके बाद भी करोडो मुसलमान इस देश मे रहने वाले है। वे हमारे देश के किसी भी अन्य धर्मावलम्बी की भाति पूरे नागरिक है, और रहेगे, लेकिन हमारे देश के विदेशी शासको ने हिन्दू-मुसलमानो की फूट और द्वेष को इतना उभारा कि देश का विभाजन हुआ और देश के विभाजन के समय और बाद म भी इन दोनो धर्मावलबियो के आपसी तथा भारत-पाकिस्तान के सबध इतने कटुता-पूर्ण रहे है कि मुसलिम-विरोधी प्रतिक्रिया इस देश मे प्रबल राष्ट्रीय भावना के होते हुए भी काफी बलवान है। इसके अलावा यह भावना हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू सस्कृति के उत्थान के नाम पर किसी भी सकट-कालीन अवसर पर क्या अवाछनीय रूप धारण कर सकती है, यह कहना मुश्किल है। इसके साथ एक बात और है और वह यह कि विभाजन के बाद भारत के मुसलमानो मे एक अजीब तरह की आशका, भय, निरुत्साह और निराशा की भावना घर कर रही है, जिससे इतनी बडी जनशक्ति के निरुपयोगी या निष्क्रिय हो जाने या गलत दिशा पकड लेने का खतरा है। ऐसी स्थिति मे यह भी बहुत जरूरी है कि भारतीय मुसलमानो मे नया जीवन और नया उत्साह लाया जाय, उनमे राष्ट्रीयता की गौरवपूर्ण दृष्टि का विकास किया जाय जिससे वे भारत के सामान्य और पूरे नागरिक की भाति शाति तथा सुखपूर्वक रह सके और यहा के राजनैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक जीवन मे यथोचित भाग ले सके और इसकी समृद्धि मे योगदान दे सके। आज वे इस सामूहिक जीवन मे अलग से पड गये लगते है। उनके इस अलगाव को दूर करना उनकी और देश की, दोनो की समृद्धि के लिए आवश्यक है।

सामाजिक क्राति के समर्थक प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्त्तव्य है कि

१ वह सिंध, पश्चिमी पजाब, सीमान्त और पूर्वी बगाल से आने वाले लोगो को भारत के सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक जीवन मे पूरी तरह

घुलमिल जाने मे मदद करे।

२ वह उनकी निराशा, क्षोभ, और प्रतिहिसा की भावनाओ को सहानुभूतिपूर्वक समझे और उन्हे अपने प्रयत्नो द्वारा शातकर उनमे आशा, सामान्य नागरिकता और न्याय भावना का सचार करे तथा उनके साम्प्रदायिक क्षोभ को राष्ट्रीयता की भावना मे बदलने की कोशिश करे।

३ वह भारतीय मुसलमानो मे व्याप्त भय, आशका, निराशा और निरुत्साह को दूर करे और अपने धर्मपालन की पूरी स्वतन्त्रता और सुविधा के साथ-साथ भारतीय सामाजिक और सास्कृतिक जीवन का अभिन्न अग बनने मे उनको मदद दे।

६

प्रांतीय संकीर्णता-निवारण

हमारे देश मे और वर्तमान परिस्थितियो मे भारत के एक राष्ट्र के रूप मे सगठित होने और रहने की बहुत बडी आवश्यकता है क्योकि इसकी कमी या अभाव ही देश की राजनैतिक गुलामी का बहुत बडा कारण रहा है और राजनैतिक आजादी के अभाव मे किसी भी मानव-समूह की उन्नति और कल्याण असभव है, अत सामाजिक क्रान्ति की भावना के जागने और साकार होने के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता सबसे पहली और जरूरी शर्त है और उसे हमारे देश मे कायम रखना हमारा प्रधान कर्तव्य है।

व्याप्त प्रातीय पक्षपात और अन्तर्प्रातीय विरोध तथा अनुदारता की है। वैसे स्वाभाविक रूप से इतने विस्तृत भूखड मे अलग-अलग भाषाओ, रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, धर्म आदि के समर्थक लोगो का होना स्वाभाविक है और भाषा, धर्म या जाति के आधार पर लोगो मे एक भाषा-भाषियो, सहधर्मियो, सजातीयो मे निकटता की भावना का होना अस्वाभाविक और अनुचित भी नही कहा जा सकता। जहा तक यह भावना विधेयात्मक रूप मे मानव-समूह को निकट लाती है, उनमे सहयोग और सपर्क स्थापित करती है, वहा तक वह उचित और स्वागत योग्य है, लेकिन जब वह अन्य भाषा-भाषियो, अन्य धर्मावलबियो अथवा अन्य प्रात वालो के प्रति विद्वेष और विरोध पैदा करने वाली हो जाती है, तब यह हानिकारक हो जाती है इस पर अकुश कर देना जरूरी हो जाता है।

पर खेदपूर्ण तथ्य यह है कि हमारे देश मे प्रातीयता अथवा क्षेत्रीयता की यह सकीर्ण भावना सदियो से प्रबल रही है, आजादी की लबी लडाई के समय मे राष्ट्रीयता के ज्वर ने इसे अवश्य दबा दिया था, लेकिन राजनैतिक आजादी के बाद अब वह फिर अधिक प्रबल दिखाई देती है। पूर्वी भारत मे बगाली, बिहारी या मारवाडी, दक्षिण भारत मे महाराष्ट्री, गैर-महाराष्ट्री, आध्र, तामिल, पश्चिमी भारत मे महाराष्ट्री, गुजराती, राजस्थानी आदि के आपस के द्वेष, प्रतिस्पर्धा और पक्षपात काफी बढ गये है। भाषावार राज्यो के लिए जोर पकडती जाने वाली माग की पूर्ति के लिए वर्तमान प्रातो, रियासती सघो अथवा रियासतो को टुकडे-टुकडे करने, एक भाग को इधर रखने या उधर देने के बारे मे खीचातानी होने लगी है और इसके फलस्वरूप एक ही राज्य के विविधक्षेत्रीय निवासियो मे या पडोसी राज्यो के निवासियो मे मनमुटाव बढता जा रहा है। इस प्रकार एक राष्ट्र की जो भावना हमारे देश मे पनपी और बढी, जिसने इस देश को आजाद किया, जिसके बलवान रहने की आवश्यकता देश को आजाद और समृद्ध रखने के लिए स्पष्ट है, उसके स्थान पर प्रातीयता, राष्ट्र विरोध और द्वेष की भावना बढ रही है, जो इस राष्ट्र के मानव-समूह के समग्रहित के लिए बाधक है।

ऐसी दशा में सामाजिक क्रांति के समर्थक नागरिकों के सामने आज भारत में संकुचित प्रांतीयता के निराकरण का बहुत जरूरी और महत्व-पूर्ण कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम के दो रूप हैं—एक तो सारे राष्ट्र के प्रति एकता, अविभाज्यता और देश-प्रेम की भावना को बलवान बनाना और दूसरा विभिन्न राज्यों और प्रदेशों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, राजनैतिक परिस्थितियों और विशेषताओं की जानकारी रखना और इस विविधता के अन्तर्गत भारत की एकता का दर्शन जनता को देना। यह कार्यक्रम अपने दोनों रूपों में प्रांतीय विद्वेष और कटुता को दूर करने में सहायक हो सकता है।

इस कार्यक्रम के पहले अंग में अखिल भारतीय संस्थाओं, आन्दोलनों और कार्यों में अधिकाधिक योग देना और इसमें विभिन्न राज्यों के लोगों का अधिकाधिक सहयोग लेना है। इससे राज्यों के रहने वाले लोग अखिल भारतीय पैमाने पर मिलजुल कर अधिकाधिक काम करें तो एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं। इसमें एक राष्ट्र भाषा का विकास, शिक्षा और प्रसार बहुत सहायक होगा। इससे प्रांतीयता की संकीर्ण भावना कम होगी। एक तरह की सामान्य वेश-भूषा, राजनैतिक [illegible], देशव्यापी त्यौहार और पर्व एकराष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाने वाले होंगे। अखिलभारतीय संस्थाओं से संबद्ध लोग विभिन्न राज्यों में [illegible] तो उनकी दृष्टि में विशदता आयगी और विभिन्न राज्यों की जनता को भी उनसे लाभ होगा।

राज्यो के रहने वालो के सपर्क अधिक निकट और गहरे होने चाहिए। इसके लिए खासकर राज्यो के सीमा वाले क्षेत्रो मे सद्भावना मडल कायम होने चाहिएँ जो दोनो ओर के नागरिको के बारे मे अधिक जानकारी दे, एक दूसरे के सबध मे गलतफहमी दूर करे, एक दूसरे को सहानुभूतिपूर्वक समझने के प्रयत्न करे और इस तरह के साहित्य, पत्र-पत्रिकाओ का अधिक प्रकाशन और प्रचार करे । इन कार्यक्रमो मे पडौसी राज्यो के राज्यपालो, मत्रियो, नेताओ, आदि को एक दूसरे राज्यो मे अधिकाधिक आने और मिलने-जुलने के मौके दिये जाने चाहिएँ, खेल-कूद तथा वाद-विवाद की प्रतियोगिताए, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर विचार-विवेचन आदि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और इनमे खिलाडी की भावना से भाग लिया जाना चाहिए । एक दूसरे की खुशी और विपत्ति के मौको पर और खासकर विपत्ति के अवसर पर पडौसी राज्यो की सहायता के काम अधिक तत्परता और सहानुभूतिपूर्वक किये जाने चाहिएँ । सामाजिक क्रांति के इच्छुक कार्यकर्त्ता इस प्रकार के कार्यों को अधिक बल दे, उनमे अधिकाधिक भाग ले तो निश्चय ही भारतीय समाज मे से प्रांतीयता की सकीर्णता का निराकरण किया जा सकता है ।

सक्षेप में

१ भारत मे सामाजिक क्रांति की पहली शर्त राजनैतिक आजादी और लोकतत्र की सुरक्षा है । इसके बिना सामाजिक तथा आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का कोई कार्यक्रम सभव नही है ।

२ राजनैतिक आजादी की सुरक्षा मे सबसे बडा विघ्न इस देश के निवासियो मे एकराष्ट्रीयता की प्रबल भावना का अभाव ही रहा है, अत भारतीय समाज मे प्रांतीय सकीर्णता की भावना का निराकरण और राष्ट्रीयता की भावना को बलवान बनाना सामाजिक क्रांति का आवश्यक और अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्रम है ।

३ इसके लिए अखिल भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ, आन्दोलनो, कार्यक्रमो मे सक्रिय रूप से सहयोग देना, पडौसी राज्यो से

पारस्परिक सपर्क की वृद्धि करना और एक दूसरे की विपत्ति मे विशेष रूप से सहायक होना तथा एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा और एक राष्ट्रीय झडे के प्रति निष्ठा मे वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है।

७

आदिम जातियो की सेवा

हमारे देश मे करोडो की तादाद मे ऐसे लोग रहते है जो साधारणतया शहरो और गावो से दूर जगलो और पहाडो मे अपने छोटे-छोटे झुड बना कर रहते है। वे लोग थोडी-बहुत खेती करते है, लेकिन अधिकतर जगल की पैदावार लकडी, शहद, मोम आदि इकट्ठा करके बेचते है, गावो और शहरो मे कभी-कभी लुहारी का काम करते हुए घूमते है, शिकार करके जीवन-पालन करते है, कुछ लोग चोरी लूटमारी आदि भी करते है। इन लोगो का हमारे गावो और शहरो की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था मे कोई हाथ नही है और न अधिकाश मे उनसे कोई सबध है। वे एक तरह से हमारी सभ्यता की सीमा से बाहर पडे हुए अलग समूह है, जो गाववासी या नगरवासी लोगो के मुकाबले मे वास्तव मे वनवासी है।

सावन आदि मे वचे रहे जो पूजीवादी अर्थव्यवस्था और वर्ण, जाति पर आधारित सामतवादी ममाज व्यवस्था मे अनिवार्य है। इम दृष्टि मे उनका नैतिक स्तर आधुनिक मम्यता मपन्न लोगो मे काफी ऊचा रहा है, लेकिन शरावखोरी, छूत की बीमारियाँ आदि उनमे गरीवी और अज्ञान के कारण पिछले दिनो मे अधिकाधिक घर करती जा रही है और फलस्वरूप अन्य वुराइया भी उनमे वढती जा रही है। इम प्रकार उनकी मामाजिक स्थिति अधिकाधिक सकटपूर्ण होती जा रही है। यही नही, उनमे मे कुछ जातिया ऐसी भी है, जिन्हे मभवत पुरानी राजनैतिक या मामाजिक शत्रुता के कारण जरायमपेशा या अपराध करने वाली मान लिया गया था और उन जातियो के साथ सामूहिक रूप से मानवता का नही बल्कि अपरावी का-मा हिंस्र पशु के प्रति किये जाने वाला व्यवहार भी किया जाता रहा है। वह इम तथाकथित सभ्य समाज के लिए न केवल असम्यता की पराकाष्ठा बल्कि कलक स्वरूप ही माना जाना चाहिये। स्वाभाविक था कि इम सामूहिक दुर्व्यवहार, अत्याचार और शोपण ने उन्हे कभी नही उठने दिया, बल्कि उन्हे जानवरो की-मी जिन्दगी बिताने और जानवर वन जाने पर मजबूर किया।

हमारे देश मे जो राजनैतिक आजादी १९४७ मे आई है, वह केवल गाव और शहरवालो तथाकथित सभ्य भारतीय नागरिको की ही नही है, बल्कि वह भारत भूमि के निवासी जगलो और पहाडो मे रहने वाले इन लाखो लोगो की भी है जिन्हे हम आदिवासी या आदिम जातिया कहते है। इन्हे भी इम आजाद मुल्क मे स्वतन्त्र नागरिको की भाति बराबरी का स्थान प्राप्त करना और मानवता के अधिकारो के उपभोग तथा उमके कर्त्तव्यो के पालन के उपयुक्त वनना है।

मतोष की बात है कि अब इम देश मे जरायमपेशा कानून खतम हो गये है या होते जा रहे है, फिर भी आदिवामियो की ममम्याए वहुत बडी है। एक ओर आज जनता के मन मे मे और मरकारी अधिकारियो और कर्मचारियो के मन मे मे उनके प्रति अविश्वाम और दुर्भावना दूर करनी है,

दूसरी ओर उन्हे व्यवस्थित ग्राम या नगर जीवन के लिए अपने-आपको तैयार करके पूरे नागरिक बनना है और अपने देश-भाइयो के बराबर आने मे कई मंजिले अधिक तै करनी है। सामाजिक क्राति के कार्यकर्ताओ पर इन पिछडे बंधुओ को आगे लाने का, अन्त्योदय का बहुत बडा कर्त्तव्य-भार है, जिसे उन्हे धीरज, लगन और सूझबूझ के साथ संपन्न करना है।

इस कार्यक्रम को हाथ मे लेने वालो को सबसे पहले इस तथ्य को स्वीकार कर लेने और तदनुसार आचरण करने की बडी जरूरत है कि आदि-वासी मात्र न असभ्य है, न गवार है और न दुराचारी और न वे उनके उद्धार का कोई बडा काम करके उन पर अहसान कर रहे है। इसके विपरीत सामाजिक क्राति के समर्थको मे आदिवासियो के सद्‌गुणो, जैसे सरलता, निस्पृहता, ईमानदारी, फक्कडपन अपरिग्रह आदि के प्रति प्रेम और श्रद्धा होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त आदिवासियो की संस्कृति मे जो विशेष-ताए है, उनके लोकनृत्य-गीत, धार्मिक मान्यता, रीति-रिवाज आदि मे जो अच्छाइया है, सौंदर्य है, उनके प्रति गुणग्राहकता और सहानुभूतिपूर्ण आदर होना चाहिये, परन्तु शराबखोरी, अपव्यय आदि जो बुराइया और कुरू-ढिया हो, उन्हे विवेकपूर्वक और सेवा-भाव से दूर करने की भी कोशिश होनी चाहिये। इसमे सुधार का आडम्बर या अहकार न होकर सेवा की भावना ही हो।

मावन आदि मे वचे रहे जो पूजीवादी अर्थव्यवस्था और वर्ण, जाति पर आधारित मामतवादी ममाज व्यवस्था मे अनिवार्य है। इम दृष्टि मे उनका नैतिक स्तर आधुनिक सभ्यता सपन्न लोगो मे काफी ऊचा रहा है, लेकिन शराबखोरी, छूत की बीमारियाँ आदि उनमे गरीबी और अज्ञान के कारण पिछले दिनो मे अधिकाधिक घर करती जा रही है और फलस्वरूप अन्य बुराइया भी उनमे बढती जा रही है। इस प्रकार उनकी सामाजिक स्थिति अधिकाधिक सकटपूर्ण होती जा रही है। यही नही, उनमे से कुछ जातिया ऐसी भी है, जिन्हे सभवत पुरानी राजनैतिक या सामाजिक शत्रुता के कारण जरायमपेशा या अपराध करने वाली मान लिया गया था और उन जातियो के साथ सामूहिक रूप से मानवता का नही बल्कि अपराधी का-सा हिंस्र पशु के प्रति किये जाने वाला व्यवहार भी किया जाता रहा है। वह इस तथा-कथित सभ्य समाज के लिए न केवल असभ्यता की पराकाष्ठा बल्कि कलक स्वरूप ही माना जाना चाहिये। स्वाभाविक था कि इस सामूहिक दुर्व्यवहार, अत्याचार और शोषण ने उन्हे कभी नही उठने दिया, बल्कि उन्हे जानवरो की-सी जिन्दगी बिताने और जानवर बन जाने पर मजबूर किया।

हमारे देश मे जो राजनैतिक आजादी १९४७ मे आई है, वह केवल गाव और शहरवाले तथाकथित सभ्य भारतीय नागरिको की ही नही है, बल्कि वह भारत भूमि के निवासी जगलो और पहाडो मे रहने वाले इन लाखो लोगो की भी है जिन्हे हम आदिवासी या आदिम जातिया कहते है। इन्हे भी इस आजाद मुल्क मे स्वतन्त्र नागरिको की भाति बराबरी का स्थान प्राप्त करना और मानवता के अधिकारो के उपभोग तथा उसके कर्त्तव्यो के पालन के उपयुक्त बनना है।

सतोष की बात है कि अब इस देश मे जरायमपेशा कानून खत्म हो गये है या होने जा रहे है, फिर भी आदिवासियो की समस्याए बहुत बडी है। एक ओर आम जनता के मन मे से और सरकारी अधिकारियो और कर्मचारियो के मन मे से उनके प्रति अविश्वास और दुर्भावना दूर करनी है,

दूसरी ओर उन्हें व्यवस्थित ग्राम या नगर जीवन के लिए अपने-आपको तैयार करके पूरे नागरिक बनना है और अपने देश-भाइयों के बराबर आने में कई मंजिलें अभिक तै करनी है। सामाजिक क्रांति के कार्यकर्ताओं पर इन पिछड़े बंधुओं को आगे लाने का, अन्त्योदय का बहुत बडा कर्त्तव्य-भार है, जिसे उन्हें धीरज, लगन और सूझबूझ के साथ संपन्न करना है।

इस कार्यक्रम को हाथ में लेने वालों को सबसे पहले इस तथ्य को स्वीकार कर लेने और तदनुसार आचरण करने की बडी जरूरत है कि आदि-वासी मात्र न असभ्य है, न गंवार है और न दुराचारी और न वे उनके उद्धार का कोई बड़ा काम करके उन पर अहसान कर रहे हैं। इसके विपरीत सामाजिक क्रांति के समर्थकों में आदिवासियों के सद्गुणों, जैसे सरलता, निस्पृहता, ईमानदारी, फक्कडपन अपरिग्रह आदि के प्रति प्रेम और श्रद्धा होनी चाहिये। इनके अतिरिक्त आदिवासियों की संस्कृति में जो विशेष-ताएं हैं, उनके लोकनृत्य-गीत, धार्मिक मान्यता, रीति-रिवाज आदि में जो अच्छाइयां हैं, सौंदर्य है, उनके प्रति गुणग्राहकता और सहानुभूतिपूर्ण आदर होना चाहिये, परन्तु शराबखोरी, अपव्यय आदि जो बुराइयां और कुरू-ढियां हों, उन्हें विवेकपूर्वक और सेवा-भाव से दूर करने की भी कोशिश होनी चाहिये। इसमें सुधार का आडम्बर या अहंकार न होकर सेवा की भावना ही हो।

आदिवासियों के जीवन में प्रवेश करके उनमें सामाजिक क्रांति लाने के तीन मार्ग हो सकते हैं और वे तीनों ही अपनाये जाने चाहियें। सबसे पहला मार्ग रोगोपचार और स्वास्थ्यसुधार का है। उनमें औषधालयों की स्थापना हो, कुछ केंद्रों में शल्योपचार की व्यवस्था भी हो, लेकिन इससे जरूरी चीज उनमें स्वास्थ्य संबंधी नियमों की जानकारी देने और स्वस्थ रहन-सहन अपनाने में मदद देने तथा रोगियों की सेवा तथा परिचर्या की है। कठिन पीडा के समय की गई निस्वार्थ और सहानुभूति पूर्ण सेवा उनके साथ संपर्क करने और उनके हृदय तक पहुंच जाने का सबसे अच्छा जरिया है। ईसाई पादरी बंधुओं ने इसे पहचाना और इसका प्रयोग किया है।

आदिवासी वर्गों मे सेवा करने के इच्छुको को इसकी योजना बना कर सारे क्षेत्र मे रोगी-सेवा-केंद्र खोलने चाहिये, रहन-सहन के गदे तरीको की बुराइया उन केंद्रो के जरिये उन्हे बताई जानी चाहिये और वैयक्तिक तथा सामूहिक सफाई उनकी परिस्थितियो में जितनी और जिस प्रकार हो सकती हो, उसका प्रचार भी इन केंद्रो के जरिये होना चाहिये।

दूसरा मार्ग शिक्षा-प्रसार का है। बालक-बालिकाओ की शिक्षा में साक्षरता के साथ-साथ उनमे चालू खेलकूद, लोकगीत, नृत्य, सगीत को प्रोत्साहित करना चाहिये, साथ ही बुनियादी उद्योग-धधे भी उन्हे सिखाने चाहिये, ताकि वे उनके सहारे धीरे-धीरे अपनी इच्छानुसार गावो में भी बस सकें और जगल के पुराने पेशो के अलावा नये पेशो को भी अपना सके। बालको का सपर्क अपने राज्य तथा अपने देश की प्रगतियो से कायम करना चाहिये ताकि वे अपने देश के अन्य नागरिको की भाति आगे आ सके। भारतीय नागरिकता के अधिकारो और कर्त्तव्यो का ज्ञान भी उनके लिए लाभदायक होगा।

तीसरा मार्ग आदिवासियो मे चालू तथा नये उद्योगधधो को सही और लाभदायक तरीके पर सगठित करने का है। बडी उम्र के लोगो मे उद्योग-धधो के मार्ग से ही प्रवेश सभव है। उनकी गरीबी को कम करके ही उनकी सेवा की जा सकती है और उनका विश्वास प्राप्त किया जा सकता है। जगल की चीजो को शुद्धतापूर्वक इकट्ठा करना, शुद्धतापूर्वक रखना, अनिवार्यत आवश्यक और यथासभव केवल उत्पादन कार्य के लिए कर्ज की व्यवस्था करना, सहयोग समितियो का लाभ उन्हे प्रत्यक्ष दिखलाना, यह सब उनके उद्योग-धधो को चालू रखने और बढाने के लिए जरूरी है। साथ ही उनके क्षेत्र में खेती और पीने के पानी की सुविधा के लिए कुए आदि भी बनाये जाय। इससे जहा वे एक ओर बडे-बडे समूहो मे एकत्र रह सकेंगे, वहा दूसरी ओर उनमे सेवा और शिक्षा के केंद्र भी आसानी से स्थापित हो सकेंगे और धीरे-धीरे वे ग्रामीण बनकर नागरिको के स्तर पर आ सकेंगे।

आदिवासियो के जीवन और दृष्टि मे सामाजिक क्रान्ति लाने का

कार्य बहुत कठिन है। उनमे क्राति के इच्छुको को स्वय आदिवासी नही तो कम-से-कम वनवासी तो बनना ही पडेगा। यह कार्य जितना कठिन है, उतना ही आवश्यक और पवित्र भी। शुद्ध सेवा-भावना, निरहकारिता, सतत तथा अडिग सहानुभूति और उनकी सस्कृति के प्रति विवेकपूर्ण प्रेम, यही इस कार्यक्रम के सबल है जो कार्यकर्त्ता को अपने मार्ग पर कायम रख सकते हैं।

८

शिशुओ को सम्माननीय मानव समझें

शिशु केवल पति-पत्नी के प्रेम का श्रेष्ठतम उपहार या परिवार की धारावाहिकता का स्वाभाविक साधन मात्र ही नही है, वह केवल समाज की अच्छाई-बुराई का सक्षिप्त और केंद्रीभूत रूप भी नही है, न वह केवल समाज की प्रगति का सतत सदेश और उसके अमरत्व की सूचना है, बल्कि वह इन सब के अतिरिक्त पूर्णता के निकटतम पहुच सकने की वैयक्तिक और सामाजिक शक्ति सपन्न मानव है, जिसे उस ऊचाई तक पहुच सकने के उपयुक्त वातावरण प्रदान करना परिवार और समाज दोनो का कर्त्तव्य है। हममे जो कुछ श्रेष्ठतम है वह उसे प्राप्त हो, आगे-से-आगे हम जहा तक पहुच पाये है, वहा आगे-से-आगे की पक्ति पर उसे ले जाकर खडा कर देने का प्रयत्न समाज का होना चाहिये, क्योकि समाज के बडे-बूढे नेताओ के पैर जब डगमगायगे, हाथ कमजोर पडेगे तो उनके हाथ की मशाल आज के शिशुओ के हाथ मे होगी और वे ही अपने-आपको और समाज को असत् से सत् की ओर, अधकार से आलोक की ओर, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलेगे।

इस महान आदर्श की ओर हमारी सतान बढे, यही क्रातिकारी शिक्षा का ध्येय है। शिक्षा शिशु के जन्म से आरम्भ होनी चाहिये और उसके जीवन के अन्तिम क्षण तक चलनी चाहिये। यह ठीक है कि उसके प्रकार बदलते जाते है, दूसरो की सहायता और प्रेरणा अधिकाधिक सूक्ष्म होती

जाती है, अपनी प्रत्यक्ष और परोक्ष जिम्मेदारियां उत्तरोत्तर बढती जाती है, लेकिन वह शिक्षण और तैयारी चलती ही जाती है। शिक्षा सतत साधना है, स्वय क्रांति की भांति गतिशील है जो मानव जीवन के साथ बढती ही जाती है।

लेकिन आज हमारे देश मे शिक्षा के प्रति उदासीनता तो व्यापक है ही, किन्तु शिशु के समुचित शिक्षण की ओर जो अज्ञान है वह तो अकथनीय ही है। सामाजिक क्रांति के शिक्षण के बीज बालक मे उसी समय मे जमाये जा सकते है जब से वह जन्म ग्रहण करता है, उसकी आख खुलती है तथा माता का दूध वह पीने लगता है। माता-पिता, भाई-बहन, और आसपास के वातावरण और क्रिया का चित्र उसके दिमाग पर तभी से बनने लगता है। ज्यो-ज्यो वह बढता है, शिक्षण प्राप्त करने की, सस्कार ग्रहण करने की शक्ति भी बढती जाती है और उसके मन पर बनने वाले सस्कार भी अधिकाधिक गहरे होते जाते है।

बालक के सस्कार सही हो, बालक की शक्ति का अधिकाधिक उपयोग हो, उसमे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार और निर्णय करने की क्षमता का विकास हो, शिशु के सबध मे इन बातो का आरम्भ से ही ध्यान रखने की आवश्यकता है, किन्तु हमारे देश मे इन बातो की सामान्यतया पूरी-पूरी अवहेलना की जाती है। शिशु को परिवार मे आमतौर पर डराया और डाटा जाता है, उसे अपमानित करना, पीटना, तो परिवार के सभी बड़े अपना दैनिक और मामूली काम तथा हक ही समझते है। इससे शिशु मे भय, झूठ, और ज़िद के दुर्गुण पैदा हो जाते हैं। उसको खिलाने-पिलाने का कोई समय और नियम नही होता, फलत शिशु आरम्भ से ही भोजन मे अनियमित हो जाता है और हानिकारिक खाने की चीजे रुचि बना लेता है। उसकी अपनी रुचि और आवश्यकता का खयाल रखने की कोई चिन्ता नही करता। माता-पिता और अभिभावक अपने दुर्गुण और आदते उस पर लादने की कोशिश करते है, या झूठी शान या गौरव गाठने का प्रयत्न होता है। इन सबसे शिशु मे चिड़चिड़ापन और दब्बूपन बढ जाता है, जीवन की स्वा-

भाविक जिज्ञासा और आनन्द खत्म हो जाता है । इस प्रकार हमारे देश मे जो संस्कार प्राय शिशु के मानस पर जमते है, वे बुरे होते है और उनकी शक्तियो का विकास जैसा हो सकता है और होना चाहिये, वह बिलकुल नही हो पाता ।

यह नुकसान शिशु का खुद का नुकसान नही है, वह केवल परिवार की ही हानि नही है, वह केवल समाज और देश की भी बहुत बडी क्षति नही है, बल्कि यह बहुत बडा सामाजिक अपव्यय है, यह बहुत बडी मानवीय हानि है जो हमारे देश के करोडो परिवारो मे प्रति दिन की जा रही है, अगर हमे सामाजिक क्राति करनी है, अगर हमे प्रत्येक मानव का अधिकतम विकास करना है तो हमे इस विराट अपव्यय को रोकना होगा और सामाजिक क्राति का आरम्भ शिशुओ के पालन और उनके समग्र जीवन के निर्माण के आधार पर होगा ।

इसमे शक नही कि शिशु के लिए माता के प्रेम, पिता के मार्गदर्शन, भाई-बहन के स्नेह और उनके अनुकरण से बढकर प्रभावपूर्ण शाला दूसरी नही हो सकती, किन्तु आज के शिक्षित माने जाने वाले भारतीय परिवारो मे भी इस सबध मे जैसा अज्ञान और अवहेलना है और वैसे भी जहा नव्वे प्रतिशत लोग अशिक्षित और रूढिग्रस्त है, वहा सामाजिक क्राति के लिए तैयारी का यह कार्य केवल माता-पिता और परिवारो पर ही नही छोडा जाना चाहिये ।

इसमे शक नही कि इस महादेश मे प्रौढ शिक्षण के काम को बहुत बडे परिमाण पर किये जाने की जरूरत है और वह भी साथ ही शुरू होना चाहिये, लेकिन फिर भी कम-से कम इस पीढी के लिए तो यह बहुत लाजमी है कि शिशु-पालन के आदर्श, शिशु-मनोवृत्तियो और शिशु-पालन के सम्बध में भारतीय परिवार मे व्याप्त अज्ञान और दोषो को दूर करने के उपायो के सबध मे विस्तृत प्रचार किया जाय और आरम्भिक शिक्षा के आरम्भ के पूर्व, जो आमतौर से ५ या ६ वर्ष की अवस्था से की जाती है, शिशु-शिक्षा का आरम्भ किया जाय, जिसमे तीन वर्ष की अवस्था से शिशुगण शामिल

हो जाय। इस प्रकार की शिशु-शालाए आरम्भिक पाठशालाओ मे किसी भी अवस्था मे कम जरूरी और कम लाभदायक नही है। हर गाव, कस्बे और शहर मे इनकी व्यवस्था किया जाना आवश्यक है। वहा शिशुओ पर पढाई का भार बिल्कुल न हो। उन्हे खेलने, कोई चीज बनाने और साथ रहने की शिक्षा ही दी जाय। उनमे निडर रहने, सच बोलने और दूसरो की मदद करने की वृत्तियो को ही विकसित किया जाय। उनके जीवन मे उत्साह और आनन्द की धारा बहनी चाहिये। प्राकृतिक सस्कारो मे पालित बालको की तरह उनमे तेरे-मेरे की दुष्प्रवृत्ति, जिससे बाद मे स्वार्थ-साधन और परिग्रह की तीव्र भावना बलवती होती है, न पनपने दी जाय।

इन शिशु-शालाओ मे तकली चलाना, छोटी खुरपियो मे खोदना, पौधो को पानी देना, फूल चुनना, माला बनाना, तिनको मे पर्दे बनाना, ऐसे सरल उद्योगो की शुरुआत खेल के तरीके पर ४-५ वर्ष तक के बच्चो मे हो सकती है, लेकिन बुनियादी तालीम के मदरसो की तरह यहा न कोई आधारभूत उद्योग होने की आवश्यकता है और न उद्योग के आधार पर व्यय का कोई अश विद्यार्थियो के श्रम से प्राप्त करने का विचार किया जा सकता है। इन शिशु-शालाओ मे यह जाना जा सकता है कि शिशुओ की रुचि किस ओर है, यह ज्ञान आगे काम का हो सकता है। बाकी शिशुशालाओ का उद्देश्य तो शिशुओ मे सत्प्रवृत्तियो को विकसित करने, उनकी विशाल जिज्ञासा और कार्यशक्ति का सुरुचिपूर्ण तथा सरल उपयोग करने मे ही है और यह स्थान जितना प्रकृति के निकट और आनन्द तथा प्रेरणा का केंद्र बन सकेगा, उतना ही शिशुओ मे उत्साह और सहयोग भावना को विकसित करने के आदर्श की पूर्ति मे सहायता मिलेगी। सघर्ष के स्थान पर सहयोग, व्यक्ति के स्वार्थ के स्थान पर समाज का हित, यही तो सामाजिक क्रान्ति का मौलिक आधार है।

सक्षेप

१ सामाजिक क्रान्ति की सिद्धि के लिए क्रान्तिकारी शिक्षण अनिवार्यत आवश्यक है और उसकी शुरुआत शिशुओ से की जानी चाहिये।

२ आदर्श स्थिति मे परिवार से बढकर शिक्षण तथा सस्कार का स्थान अन्य कोई नही हो सकता। लेकिन आज की स्थिति मे शिशुओ के पालन के आदर्श और व्यवहार दोनो की दृष्टि से जितना व्यापक अज्ञान, मूढता और असावधानी है उसे देखते हुए शिशुशालाओ की आवश्यकता अत्यधिक है।

३ शिशु-पालन का उद्देश्य शिशुओ की जिज्ञासा और कार्यशक्ति का सभी दिशाओ मे और सरलतापूर्वक अधिकतम उपयोग है, जिससे उनमे निर्भयता, सचाई, सहयोग, और नियमितता की भावना का विकास हो और उनके उत्साह तथा आनन्द की कमी न होने पाय। इस कार्य को शिशु-शालाए आगे बढकर हाथ मे ले और माता, पिता तथा सरक्षको मे तत्सबधी जिम्मेदारी भी धीरे-धीरे जागृत करती जाय।

४ शिशुशालाए एक ओर आगे आने वाली बुनियादी तालीम की बुनियाद बने और दूसरी ओर वे सघर्ष और प्रतिद्वद्विता के बजाय सहयोग और प्रेम को वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का माप-दड बनाने का व्यावहारिक प्रारम्भ-स्थल भी बने।

२

बुनियादी तालीम का प्रसार

मानव की मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक, सभी सुषुप्त सत्प्रवृतियो को जागृत और सबल करने और व्यक्ति को मानव तथा समाज दोनो के अधिक-से-अधिक उपयोग के लायक बनाने वाली शिक्षा उस समय से आरम्भ होती है जब शिशु पैदा होकर पहली बार अपनी आखें खोलता है और जब-तक वृद्ध होकर अपनी पुतलिया नही फेर देता, तबतक वह चलती ही रहती है। निश्चय ही शिक्षा समग्र जीवन की साधना है, किन्तु जीवन का कुछ भाग विशेष रूप से इसके लिए नियत कर लिया गया है और वह समय मनुष्य के बालिग होने तक का है, जब वह शारीरिक दृष्टि से परिपूर्ण होकर अलग घर बना सकने योग्य हो जाता है और एक ओर वह विवाह करके घर बसा

लेता है, तथा दूसरी ओर काम-धधा शुरू करके आर्थिक दृष्टि से अपने पैरो पर खडा होने का प्रयत्न करता है। यह अवधि १८ से २१ वर्ष के आसपास की मानी जा सकती है। इस अवस्था तक पहुचने के पहले मानव को वैयक्तिक और सामाजिक, दोनो दृष्टियो से अपनी जिम्मेदारिया निभा सकने योग्य बन जाना तो आवश्यक है ही,इसके साथ ही यह भी वाछनीय है कि वह शिक्षा उसे प्रगतिशील समाज की अग्रिम पक्ति मे खडे होने और बढने की क्षमता भी प्रदान करदे।

लेकिन जो शिक्षा आमतौर पर हमारे देश मे आज दी जाती है वह उक्त दोनो दृष्टिकोणो से दोषपूर्ण है। इस शिक्षा की शुरुआत मैकाले के जमाने मे कम्पनी के लिए अग्रेजी जानने वाले क्लर्क तैयार करने के लिए हुई थी और उसका ध्येय ऐसे भारतीय घडना था जो सिवा अपने काले चमडे के, जिसे बदलना उनके लिए भी अशक्य था, और सब बातो मे वेश-भूषा, खानपान-रहनसहन, विचार, आदर्श, सब मे अग्रेज हो, जो अग्रेजो की नकल और उनकी गुलामी को ही सफलता की चरम-सीमा माने। वे हमे ऐसे पक्षी बनाना चाहते थे जो पिजरे की खूबसूरती और वहा डाले गये दाने पर ही मुग्ध रहे, लेकिन सौभाग्य की बात है कि राजा राममोहन राय से लेकर गाधीजी तक कुछ ऐसी विभूतिया इस गुलामी की शिक्षा के बावजूद और इसी मे से समय-समय पर प्रकट हुई, जिन्होने देश मे जागृति और स्वतत्रता के झडे को ऊचा किया और इस पिजरे को अग्रेजो से ही खुलवा कर इस देश के निवासियो को आजाद कर दिया।

लेकिन शिक्षा का जो क्रम अग्रेजो ने चालू किया था, वह आज भी चल रहा है। वह गुलामी की शिक्षा जो हमे अपने देशवासियो से, धरती के लालो से जुदा कर देने वाली थी, भौतिक रूप से हमे शहरो मे केद्रित करनी जाती थी और बौद्धिक रूप से हमे अपने करोडो देशवासी ग्रामनिवासियो से, उनकी आवश्यकताओ, आदर्शों और सहानुभूति से अलग कर देती थी, हमारी सस्कृति और परम्परा से हमे दूर फेक देती थी, वह आज भी चल रही है। उसे अनिवार्य और नि शुल्क बनाना देश की आर्थिक शक्ति के बाहर

है, वह विदेशी भाषा में और विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाने के कारण विद्यार्थियो की शक्ति और समय का अपव्यय करनेवाली है तथा केवल साहित्यिक होने के कारण देश के आर्थिक और सामाजिक ढाचे मे ठीक नही बैठती । सक्षेप मे वह शिक्षा स्वतन्त्र भारत के बिल्कुल उपयुक्त नही है। सामाजिक क्रान्ति के उपयुक्त प्रेरणा युवको को वह दे सके, इसका तो प्रश्न ही नही।

गाधीजी वास्तव मे मनु की भाति समग्र द्रष्टा समाज-व्यवस्थापक ऋषि थे । यह केवल समय की गति थी कि वे गुलाम भारत मे पैदा हुए और उन्हे अपनी सारी जिन्दगी भारत की राजनैतिक गुलामी से जूझने मे लगानी पडी, किन्तु इसके बावजूद उन्होने भारत की सामाजिक और आर्थिक क्राति के सिद्धात, उसके स्वरूप और कार्यक्रमो पर समय-समय पर विचार और प्रेरणाए दी । उन्होने इस बात को स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि वर्तमान शिक्षा को हमे बदलना होगा । यद्यपि वे स्वय प्रचलित अर्थ मे शिक्षाशास्त्री नही थे, किन्तु भारतीय मानव और सामान्य मानव स्वभाव के अपने समय के अद्वितीय पारखी होने के कारण उन्होने यह भी निश्चित किया था कि भावी शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये । इस सबध मे उन्होने अपने विचार प्रगट किये, शिक्षाशास्त्रियो को वर्धा मे एकत्रित किया और काफी लम्बे विवेचन, परीक्षण, अनुभव तथा फिर विवेचन के बाद उन्होने भारतीय बालको की शिक्षा के कुछ आदर्श क्रम निश्चित किये, जिसे उन्होने बुनियादी तालीम का नाम दिया और हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की स्थापना कर उसे इसके विचार, परीक्षण, सशोधन, और प्रसार का भार सौंपा ।

गाधीजी क्राति के जरिये सत्य पर आधारित अहिसक समाज-रचना के प्रतिपादक थे । बुनियादी तालीम उस क्राति का आवश्यक कार्यक्रम है, क्योंकि वही हमारे समाज की आधार-शिला—बालको को सर्वोदय सिद्धात और व्यवहार की ओर अग्रसर करती है। नये समाज के आधारभूत सिद्धात, शरीरश्रम की प्रतिष्ठा, मानव मात्र की समानता और शोषणहीनता, सहयोग और अधिकार के बजाय कर्त्तव्य पर बल, ये सब बुनियादी तालीम मे भी

आधारभूत है। बुनियादी तालीम किसी चुने हुए उद्योग की धुरी पर घूमती है। कोई-न-कोई उद्योग हरेक के लिए लाजमी है और सारी शिक्षा उसी के सहारे दी जाती है। वह शिक्षा नि शुल्क होगी और हरेक बालक के लिए अनिवार्य होनी चाहिये। इस गरीब मुल्क मे ऐसा होना तभी सभव है जब यह केवल शासन पर भी निर्भर न रहे, इसीलिए उत्पादक श्रम इसकी आधार शिला है। इसमे जहा सबकी समानता और शिक्षा की व्यापकता का प्रतिपादन होता है, वहा शिक्षको और विद्यार्थियो मे स्वावलम्बन, आत्म-सम्मान और मितव्ययिता का भान भी जागृत होता है और शिक्षको और विद्यार्थियो मे ऐसी आत्मीयता भी पैदा होती है जो केवल एक-दो घटे पढ लेने और पढा लेनेवाले अध्यापको और शिक्षार्थियो मे सभव नही है। बालक स्वभावत क्रियाशील और जिज्ञासु होते है, उन्हे केवल पढ लेने या सुन लेने के बजाय स्वय प्रत्यक्ष देखने और करने मे अधिक रुचि रहती है, इसलिये उद्योग द्वारा शिक्षा उनकी शक्तियो को अधिक विकसित करने वाली, उन्हे अधिक प्रसन्न, उत्साह पूर्ण और सक्रिय रखनेवाली होगी। इससे उनकी जिज्ञासा और स्वतन्त्र चिन्तन को अधिक बल मिलेगा।

यह शिक्षा उद्योग और शरीर-श्रम के सहारे चलती है, अत इस शिक्षा को पानेवाले विद्यार्थी कभी आजकल की तरह अपने देश के गरीब ग्रामीणो मे अलग बाबू-समाज नही बनायगे। वे एक तो स्वय शारीरिक-श्रम करने के अभ्यासी होगे और दूसरे अपने माता-पिताओ और परिवार के लोगो मे, जिनमे अधिकतर खेती अथवा अन्य उद्योग-धधो मे लगे हुए है, अलग और दूर नही जायगे, बल्कि प्राय उन्ही धधो को अधिक कुशलता-पूर्वक कर सकने लायक बन जायगे।

एक बात यह भी है कि यह आजकल की शिक्षा से अधिक सस्ती होगी। इसके लिए आलीशान भवनो की आवश्यकता नही है। स्वावलम्बन की ओर गतिशील होने के कारण भी इसका प्रसार पश्चिमी पद्धति के अग्रेजी स्कूलो के मुकाबले कही अधिक होगा। सारा वातावरण सरल और कम खर्चीला होगा और इसे गाव-गाव मे फैलाना आसान होगा।

बुनियादी तालीम मातृभाषा के द्वारा दी जाती है, इसलिये जितनी शक्ति और समय आजकल विद्यार्थियो का अपनी भाषा सीखने मे लगाना पडता है वह बच जायगा और उसे अध्ययन और काम मे लग सकेगा।

सामान्यत बुनियादी तालीम का आरम्भ लगभग ६ साल की उम्र से होगा और १३ वर्ष की उम्र पर उसकी समाप्ति हो जायगी और इसके बाद अधिकाश विद्यार्थी अपने पेशो मे लगने की तैयारी करेगे और उसमे जुट जायगे। जिनकी आगे बढने की रुचि होगी और इसकी अनुकूलता होगी वे किशोर अपना उत्तर बुनियादी तथा विश्व-विद्यालय का शिक्षा-क्रम चालू रखेगे।

बुनियादी तालीम का क्षेत्र बडा व्यापक है और सामाजिक क्राति की सिद्धि हमारे सारे देश की शिक्षा को बुनियादी तालीम के सिद्धातो पर ढाले बिना नही हो सकती। इसमे लाखो शिक्षको की आवश्यकता है और दरअसल इस कार्यक्रम की सफलता का बहुत अधिक भार शिक्षक पर ही है। वुनियादी शिक्षक की दृष्टि अपने लक्ष्य और उस तक पहुचने के रास्ते के बारे मे बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिये, उसका जीवन सादा और आदर्शपूर्ण होना चाहिये। उसे वुनियादी तालीम की समग्र भावना को धारण करना होगा, उसे अनिवार्य और निशुल्क बनाने के साथ-साथ स्वावलम्बी की ओर बढने का भी प्रयत्न करते रहना होगा। वुनियादी तालीम का रथ शिक्षक और उद्योग के दो पहियो पर चलता है। वुनियादी तालीम ही व्यक्ति और समाज दोनो की सर्वोत्तम भावना, बुद्धि और क्रियाशीलता का समन्वय और विकास कर सकती है और वुनियादी शाला ही वर्ग-हीन समाज के व्यावहारिक आरम्भ का केद्र बन सकती है।

सक्षेप में

१ वुनियादी तालीम सामाजिक क्राति के लिए आवश्यक कार्यक्रम है, क्योंकि बालको को आरम्भ से ही वर्ग-हीन और शोपणहीन समाज के एक छोटे नमूने के रूप मे अपनी शाला मे विकसित होने का अवसर मिलता है। यह तैयारी ही उन्हें भविष्य मे इस अहिंसक क्राति की सिद्धि मे अग्रसर होने

की प्रेरणा और वल दे सकती है।

२ वुनियादी तालीम का लक्ष्य वालक का मानसिक, वौद्धिक, और शारीरिक विकास और उसका व्यक्ति और समाज के समग्र हित मे उपयोग है। यह शिक्षा किसी-न-किसी मूलभूत उद्योग पर आधारित होती है। इसमे ज्ञान शुष्क और अकेला न होकर कार्य के साथ और उसका सहयोगी रहता है।

३ वुनियादी तालीम को नि शुल्क, व्यापक और यथासभव स्वावलम्बी वनाने के लिए समाज द्वारा सभी आवश्यक सुविधाए देना जरूरी है।

४ इसमे वालक-वालिकाओ की शिक्षा मे कोई अन्तर नही होगा। दोनो की शिक्षा एक ही प्रकार की, एक ही प्रकार से और यथासभव एक साथ ही दी जायगी।

१०

प्रौढ़-शिक्षा जीवन के साथ संबंधित हो

हमारे देश मे नव्वे फीसदी लोग अशिक्षित और अनपढ है। अत इनमे सामाजिक क्राति की भावना जागृत करने के लिए शिक्षा का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। इसकी आवश्यकता आज की स्थिति मे और भी अधिक है जव देश मे प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन प्रणाली चालू है और राष्ट्र का आदर्श लोकतत्रीय शासन और लोकतत्रीय समाज की स्थापना है। इस आदर्श की पूर्त्ति तभी सभव है जव समग्र जनता सवके कल्याण की भावना को कर्त्तव्य-पालन मे सवसे पहले और अधिकार की पूर्त्ति मे सवसे पीछे, सैद्धानिक और व्यावहारिक रूप मे समझने और उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होगी। अत व्यक्तिगत और नागरिक सुधार की दृष्टि से, लोकतत्रीय शासन और समाज व्यवस्था की सफलता की दृष्टि से, सामाजिक क्राति और नव-समाज रचना की दृष्टि से हमारे देश मे प्रौढ शिक्षा को एक निश्चित कार्यक्रम के रूप मे ग्रहण करना बहुत जरूरी है। केवल प्रारम्भिक शिक्षा तो

अनिवाय कर देने मे हमारे उद्देश्य की पूर्ति नही हो सकती ।

मामूली तौर पर लोग यह समझते है कि अगर हम अपने गावो और शहरो के अनपढ लोगो को अगूठा लगाने के बजाय हस्ताक्षर करना सिखा दे या उन्हे अक्षर-ज्ञान कराकर टूटे-फूटे अक्षर जोडना सिखा दे तो बहुत काफी होगा । इस तरह के आन्दोलन इस देश मे चलते है, लेकिन केवल अक्षरज्ञान से देश की जनता का कुछ भला होने वाला नही है, किन्तु यह मान कर चलना भी गलत होगा कि अक्षरज्ञान उन्हे दिया ही न जाय । अक्षरज्ञान के द्वारा नागरिको को मातृभाषा के सारे ज्ञानभडार की कुजी सौप दी जाती है, जिससे वे मनचाहा लाभ-अवसर और योग्यता के अनुसार उठा सकते है । अत प्रौढ-शिक्षा मे अक्षरज्ञान के अलावा वैयक्तिक जीवन के सुधार, सामाजिक और नागरिक शिक्षण का समावेश अन्य साधनो द्वारा भी हो जाना चाहिये । इनमे प्रदर्शिनी, चित्र, गायन, कीर्तन, कथा, नाटक, रेडियो, सिनेमा का भी उपयोग हो सकता है । साथ ही दगल-प्रतियोगिता, मेले आदि का सावधानी पूर्वक आयोजन भी लाभदायक हो सकता है ।

इन साधनो के जरिये ग्राम तथा नगर-निवासी प्रौढो को अपने-अपने पेशो और कामो को अधिक होशियारी, सफाई और जल्दी से करने की प्रेरणा मिल सकती है, जिससे वे अपने चालू कामो को ज्यादा अच्छी तरह करके आमदनी बढा सकते है अथवा अन्य छोटे-छोटे काम करके अपनी आमदनी में कुछ थोडी-सी वृद्धि कर सकते है । उनमें आमतौर पर जमीन के सहारे कुछ-न-कुछ, खासकर शाक-भाजी पैदा करने की वृत्ति जागृत की जा सकती है जिससे उनका भोजन अधिक सतुलित और पौष्टिक हो सके, तथा नये पेड उगाने, बागीचे लगाने की रुचि हो । कताई का रिवाज सब लोगो में बढाया जा सकता है जिससे स्वावलम्बन की ओर बिना अतिरिक्त व्यय के प्रगति हो सके । इस प्रकार अन्न तथा वस्त्र-स्वावलम्बन प्रौढ-शिक्षण का एक व्यावहारिक पहलू बन सकता है और इस शिक्षण-क्रम से लाभ उठाने वाले नागरिक अपने परिवार और समाज दोनो की श्रीवृद्धि कर सकते है।

गायन, कीर्तन, कथा, नाटक आदि द्वारा गावो और कस्बो के लोगो

मे प्रौढ शिक्षा के प्रति आमतौर पर पाई जाने वाली उदासीनता और विरोध को दूर किया जा सकता है। उनमे प्रौढ-शिक्षण केद्रो के प्रति सक्रिय आकर्षण और उनके कार्यक्रमो मे व्यावहारिक रुचि उत्पन्न की जा सकती है। उनमे धार्मिक तथा अन्य कथा-नाटको आदि के जरिये नैतिकता, सामाजिक सेवा पारस्परिक सहयोग और राष्ट्रीय एकता की भावनाओ को जागृत किया और रखा जा सकता है और शीघ्रतापूर्वक लुप्त होते जाने वाले लोक-गीतो, लोक-कथाओ और लोक कथाओ के सौदर्य और उपादेय अशो को जीवित रखा जा सकता है और उन्हे उन्नत किया जा सकता है।

प्रौढ-शिक्षा के अक्षर-ज्ञान का पाठ्यक्रम मामूली तौर पर ६ महीने से अधिक का नही होना चाहिये। इस अवधि मे प्रौढो को मामूली तौर पर पढना-लिखना, कम-से कम हिन्दी जैसी सरल भाषा और नागरी जैसी सरल लिपि का, तो आ ही सकता है। इतना न्यूनतम ज्ञान तो प्रौढो को दिया ही जाना चाहिये। फिर उस ज्ञान को कायम रखने और बढाने, अन्य सामाजिक, सामूहिक और सास्कृतिक-प्रवृत्तियो को चलाने और प्रौढो को इस कार्यक्रम के प्रति आकर्षित करने, उनके उत्साह और रुचि को कायम रखने के लिए स्थायी प्रौढ-शिक्षण केद्र होने चाहिये, जो इस सारे कार्यक्रम को चलाते रहे।

प्रौढो के लिए सारा साहित्य विशेषतौर पर तैयार किया जाना चाहिये, क्योंकि अनपढ शिशु तथा बालक मे और अपनपढ प्रौढ के बौद्धिक स्तर और उनकी आवश्यकताओ मे बहुत अन्तर होता है और प्रौढो को उनके उपयोग की बाते उनके मर्यादित अक्षर-ज्ञान के उपयुक्त भाषा मे ही बनाई जानी चाहिए।

इन सारे कामो को निश्चित आदर्श के अनुकूल व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए एक प्रौढ-शिक्षण सगठन होना चाहिये जो सामान्य नीति-निर्देश करे, जो अखिल भारतीय उपयोग के साधनो, केंद्रीय रेडियो, कार्यक्रमो तथा तत्सबधी विशेष फिल्मो के निर्माण की योजना और मार्ग-दर्शन करे। यह सगठन भारत के विभिन्न राज्यो मे किये जाने वाले और उनम

होने वाले प्रयोगो की जानकारी और अनुभव का लाभ राज्यो के नीति-निर्देशक सगठनो और कार्यकर्त्ताओ को दे सकते है और एक-दूसरे की सफलता और असफलताओ से लाभ उठा सकते है तथा सावधान रह सकते है।

हरेक राज्य मे एक-एक प्रौढ शिक्षण सस्था का होना आवश्यक है, जो अपने प्रदेश मे अपनी प्रादेशिक भाषाओ मे प्रौढ-शिक्षण की योजनाओ का सचालन करे साहित्य का प्रकाशन करे, परीक्षाओ का आयोजन करे, लेकिन इस प्रादेशिक सस्था का काम भी अधिकतर नीति-निर्देश, प्रेरणा तथा समन्वय का ही होगा, प्रौढ-शिक्षण का व्यावहारिक काम तो गावो, कस्बो और शहरो की उन प्रौढ शिक्षण सस्थाओ का होगा, जो प्रौढ कक्षाओ, शिक्षण, सामाजिक तथा सास्कृतिक केद्रो को चलायगी, प्रौढो के दैनिक सपर्क मे आयगी, उनकी कठिनाइयो और समस्याओ को समझेगी तथा उन्हे हल करेगी।

प्रौढ शिक्षण के इस विस्तृत और महत्वपूर्ण काम को करने के लिए लाखो की सख्या मे शिक्षको की आवश्यकता होगी जो अपने समय का कुछ भाग दैनिक रूप मे देगे और हजारो की तादाद मे व्यवस्थापको की जरूरत पडेगी, जो अपने-अपने क्षेत्र मे इस कार्य की व्यवस्था करेगे। चाहे यह दोनो काम पूर्णत अवैतनिक रूप से किये जाय या थोडा बहुत पारिश्रमिक परिस्थिति-वश स्वीकार किया जाय, पर सारा काम सामाजिक क्राति की भावना और उत्साह से ही सपन्न किया जा सकता है।

इस काम में लगने वालो के लिए आवश्यक है कि वे सामाजिक क्राति के समग्र आदर्श को समझे और प्रौढ-शिक्षण का महत्व नव-समाज रचना के एक आवश्यक और अनिवार्य अग के रूप मे जाने। प्रौढो को इस शिक्षण के जरिये जो प्रकाश दिया जा रहा है, अभी नव ज्ञान भडार की जो नई कुजी दी जा रही है, उसके साथ सबके समग्र कल्याण की, सर्वोदय की विचार-धारा भी उन्हे दी जानी चाहिये। बालको को शिक्षण देने और उनकी शक्तियो का सही दिशा मे विकसित करने का काम अधिक लम्बा है और जब तक बालको के माता-पिता और अभिभावक इस दृष्टिकोण को न समझे तथा

इसका विरोध करते हो, तो बुनियादी तालीम का असर बालकों पर कम और अस्थायी भी हो सकता है। इसके विपरीत प्रौढ शिक्षण के जरिये सामाजिक क्राति और, अहिंसक समाज रचना का दृष्टिकोण प्रौढो को देने में योग्यता, परिश्रम और धीरज की अधिक आवश्यकता है, किन्तु उन्हें दिया गया मार्ग-दर्शन सारे परिवार को उस दिशा मे मोड सकता है, इसलिये सामाजिक क्राति के कार्यक्रम के रूप मे प्रौढ शिक्षण का कार्य अत्यन्त विशाल और आशापूर्ण है और सेवा और परिश्रम के बीज का सुफल निश्चित है।

सक्षेप में .

१ प्रौढ-शिक्षण अहिसक नव-समाज रचना का आवश्यक अग है और शिशु-शिक्षा तथा बुनियादी तालीम की तरह ही इसे महत्वपर्ण मानना चाहिये।

२ प्रौढ-शिक्षण का अर्थ केवल अक्षर-ज्ञान नही और साक्षरता का बहिष्कार भी नही, बल्कि साक्षरता के साथ वैयक्तिक उन्नति और सामाजिक सहयोग के लिए आवश्यक सभी प्रकार का भावनात्मक, बौद्धिक और शारीरिक शिक्षण इसमे शामिल है।

३ हमारी विशाल और विविधतापूर्ण लोक-सस्कृति और लोक-कला के सौंदर्यपूर्ण तथा उपयोगी अशो का सरक्षण और सवर्धन इसके द्वारा होगा।

४ श्रम-प्रतिष्ठा, सर्वधर्म-सम्मान सामाजिक समता और नागरिकता के आरम्भिक और आवश्यक ज्ञान और अभ्यास के लिए इसका साधन के रूप मे उपयोग किया जायगा।



अखिल भारत सर्व-सेवा संघ

प्रकाशन विभाग

रचनात्मक साहित्य

अ भा चरखा सघ का इतिहास	श्री श्रीकृष्णदास जाजू	३॥)	।≡)
क्रातिकारी चरखा	श्री धीरेन्द्रभाई मजूमदार	।)	–)
ग्राम स्वावलवन की ओर	श्री वालकोवा	।)	–)
चरखे की तात्त्विक मीमासा	,	१)	=)॥
कताई	, दत्तोवा दास्ताने	५)	।≡)॥
वापू की खादी	, धीरेंद्रभाई मजूमदार	॥)	–)॥
स्वराज्य की असली लडाई		॥)	–)॥
गोसेवा	,, गाधीजी	१॥)	=)॥
गोला अगाईचे सवर्धन (मराठी)	,, य म पारनेरकर	॥)	–)
धान की खेती की जापानी पद्धति		।)	–)
सिद्ध वनौषधि चिकित्सा		१)	=)
गो-सेवा सघ की विचार-धारा		॥)	–)॥
गाव आन्दोलन क्यो ?	,, जे सी कुमारप्पा	३॥)	।)
गाधी अर्थ-विचार	,, ,,	१)	–)॥
स्थायी समाज व्यवस्था (भाग २)	,, ,,	४)	।)
स्त्रिया और ग्रामोद्योग	,, ,,	।)	–)
हमें क्या खाना चाहिये	,, झवेर भाई पटेल	३)	≡)॥
तेल घानी	,, ,, ,,	१॥)	=)
हाथ कागज वनाना		४)	।–)
शिक्षा में अहिंसक क्राति	,, गाधीजी	१॥)	=)
वुनियादी शिक्षा	,, ,,	१॥)	≡)

प्रौढ शिक्षा का उद्देश्य	शांताबहन मार्जरी साइक्स	।।।)	=)
बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त		१॥=)	=)॥
जीवन शिक्षा का प्रारंभ	श्री शांता बहन	१।)	=)
सफाई विज्ञान	,, धीरेंद्रभाई मजमदार	॥=)	-)
वस्त्र पूर्ण (मराठी)	श्री कुंदर दिवाण	२)	।)
नयी तालीम और समाज का नवनिर्माण	धीरेंद्र मज़ुमदार	≡)	-)
Vinoba and His Mission	S Rambhai	३॥)	॥)॥
Economics of Peace		॥=)	।।।≡)

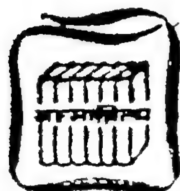
बड़े सूची पत्र के लिए लिखिये—

अखिल भारत सर्व-सेवा संघ,

प्रकाशन विभाग, वर्धा।

नई क्रांतिमाला की पुस्तकें

1. सर्वोदय का घोषणापत्र
2. सर्वोदय के सेवकों से
3. मानवीय क्रान्ति
4. धर्मचक्र प्रवर्तन
5. हमारी भूमि समस्या का हल
6. संपत्तिदान यज्ञ
7. दंड निरपेक्ष समाज रचना
8. नई क्रांति
9. नई क्रांति के गीत
10. भूदान दीपिका
11. सामाजिक क्रान्ति और भूदान
12. व्यवहार शुद्धि
13. सर्वोदय की ओर
14. सामाजिक क्रांति के दस कार्यक्रम
15. नई तालीम के विचार (प्रेस में)
16. नई तालीम और समाज का नव निर्माण



मूल्य चार आना

सर्वोदय

की

कार्यकर्ताओं को
प्रेरणा
दिशा-दर्शन और
आवाहन

सर्व-सेवा-सघ-प्रकाशन

सर्वोदय के सेवकों से

चाडिल-सम्मेलन मे रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ की
विभिन्न सभाओ मे दिये गए विनोबाजी
के आठ महत्वपूर्ण भाषण





१९५३

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार १९५३
मूल्य
चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
देहली

प्रस्तावना

भूदान-यज्ञ आन्दोलन ज्यो-ज्यो व्यापक और गहरा होता जा रहा है, जनता मे सर्वोदय साहित्य की रुचि बढ रही है और उसकी माग बहुत हो रही है। अभी तक फुटकर रूप मे अलग-अलग लोगो और संस्थाओ के द्वारा ऐसे प्रकाशन होते रहे है, पर अब 'सर्व सेवा सघ' ने यह तय किया है कि ऐसा सर्वोदय और भूदान-साहित्य वह खुद सपादित और प्रकाशित करेगा ।

सर्वोदय कार्यकर्ताओ के साथ विनोबाजी की जो महत्त्वपूर्ण चर्चाए और भाषण चाडिल के सर्वोदय सम्मेलन मे हुए थे, वे सब प्रस्तुत पुस्तक मे सग्रहीत किये गए है । विनोबाजी के चाडिल के ता० ७ और ९ के तीन महत्त्वपूर्ण भाषण 'सर्वोदय का घोषणा-पत्र' नामक पुस्तिका मे, जो 'मण्डल' द्वारा प्रकाशित हुई है, छप चुके है । इन दोनो पुस्तको से कार्यकर्ताओ को पूरा वैचारिक मार्गदर्शन, प्रेरणा और उत्साह मिल जाता है ।

'सर्वोदय के घोषणा-पत्र' के बाद जल्दी ही यह किताब पाठको को मिल जानी चाहिए थी और इसमे विनोबाजी के भाषण और चर्चाये होने के कारण सपादन करने के लिए बहुत बाकी नही रहता । सम्पादन-समिति को विधिवत् अपना काम शुरू करने मे कुछ देर लगेगी इसलिए समिति के कुछ सदस्यो के इस पुस्तक को न देख पाने पर भी सपादन मे उचित सावधानी रखकर यह प्रकाशित की जा रही है।

आशा है, सब लोग इसका अधिक-से-अधिक लाभ उठावेगे ।

सर्व सेवा सघ, —वल्लभस्वामी
सेवाग्राम, २०-५-५३ सहमन्त्री

दो शब्द

बहुत-से रचनात्मक कार्यकर्त्ता छोटे-मोटे कामों में लगे हुए हैं और अपनी शक्ति भर काम करते रहे हैं। भूदान-यज्ञ का एक नया काम आया और उनके कामों में एक काम की वृद्धि हो गई। इतना ही कार्यकर्त्ता अक्सर समझे थे। लेकिन अब यह बात स्पष्ट हो गई कि हमारे चालू कामों में से जितने काम हम समेट सकते हैं, उतने समेट कर भूदान-यज्ञ में कूदना पड़ेगा। अनेक कामों में सिर्फ एक काम की वृद्धि नहीं हुई है, बल्कि अनेक कामों को उदर में सम्भालने वाला काम उपस्थित हुआ है।

पुराने अनुभवी कार्यकर्त्ताओं की संख्या सीमित है। उनकी मदद से सैकड़ों नये कार्यकर्त्ताओं को काम करने का मौका मिलेगा। आज देश में इस काम के लिए जो उत्साह है, उसे देखते हुए मुझे उम्मीद है कि नये कार्यकर्त्ता पर्याप्त संख्या में मिलेंगे। उनको कुछ तालीम भी देनी होगी, जिसका इन्तजाम 'सर्व-सेवा-संघ' को करना होगा।

भूदान-यज्ञ और उसके आगे के काम सम्पत्ति-दान-यज्ञ के बिना पूर्ण नही हो सकते। इसलिए सम्पत्ति-दान-यज्ञ का विचार भी सामूहिक जीवन-निष्ठा के तौर पर लोगों को समझाना होगा।

यह सारा काम जितना विशाल और व्यापक है, उतना ही गहरा और ठोस है। इसीका नाम सर्वोदय है। भूमि इसका अधिष्ठान है। सेवक-गण कर्त्ता है। सम्पत्ति-दान-यज्ञ करण है। अन्न-वस्त्र-स्वावलंबन आदि इसमे करने की विविध क्रियाये है और लोक-मानस अनुकूल बनाना ही इसका देवता है। मै आशा करता हू कि सर्वोदय-प्रेमी सब भाई-बहन अपनी पूरी शक्ति एकसाथ इसमे लगायगे और इस विराट यज्ञ को सफल बनायगे।

—विनोबा

दो शब्द

बहुत-से रचनात्मक कार्यकर्त्ता छोटे-मोटे कामो मे लगे हुए है और अपनी शक्ति भर काम करते रहे है। भूदान-यज्ञ का एक नया काम आया और उनके कामो मे एक काम की वृद्धि हो गई। इतना ही कार्यकर्त्ता अक्सर समझे थे। लेकिन अब यह बात स्पष्ट हो गई कि हमारे चालू कामो मे से जितने काम हम समेट सकते है, उतने समेट कर भूदान-यज्ञ मे कूदना पडेगा। अनेक कामो मे सिर्फ एक काम की वृद्धि नही हुई है, बल्कि अनेक कामो को उदर मे सम्भालने वाला काम उपस्थित हुआ है।

पुराने अनुभवी कार्यकर्त्ताओ की सख्या सीमित है। उनकी मदद से सैकडो नये कार्यकर्ताओ को काम करने का मौका मिलेगा। आज देश में इस काम के लिए जो उत्साह है, उसे देखते हुए मुझे उम्मीद है कि नये कार्यकर्त्ता पर्याप्त सख्या मे मिलेगे। उनको कुछ तालीम भी देनी होगी, जिसका इन्तजाम 'सर्व-सेवा-सघ' को करना होगा।

छठा हिस्सा जमीन प्राप्त करना भूदान-यज्ञ का सबसे छोटा अश है। प्राप्त की हुई जमीन की तकसीम भी करनी होगी। जिन्हे जमीन दी जायगी, उन्हे काम के लिए साधन-सामग्री भी दिलानी होगी। उन्हे जमीन पर स्थिर करना होगा। जिन गावो मे जमीन मिलेगी, उन गावो मे खादी, ग्रामोद्योग, नई तालीम आदि के जरिये ग्रामराज्य की स्थापना करनी होगी। मुख्य अश तो आगे करने के काम का है। जहा काश्त के काबिल परती जमीन बडे टुकडो मे मिली है और मिलेगी, वहा नये सिरे से गाव को बसाना होगा और ग्राम-रचना करनी होगी। इस काम के लिए सबका सहयोग हासिल करना होगा, जन-शक्ति जाग्रत करनी होगी और सरकार से भी जो मदद मिल सके, हासिल करनी होगी। उसे अपने कर्तव्य का भान कराना होगा।

भूदान-यज्ञ और इसके आगे के काम सम्पत्ति-दान-यज्ञ के बिना पूर्ण नहीं हो सकते। इसलिए सम्पत्ति-दान-यज्ञ का विचार भी सामूहिक जीवन-निष्ठा के नाम पर लोगों को समझाना होगा।

यह सारा काम जितना विशाल और व्यापक है, उतना ही गहरा और ठोस है। इसीका नाम सर्वोदय है। भूमि इसका अधिष्ठान है। सेवक-गण कर्त्ता हैं। सम्पत्ति-दान-यज्ञ करण है। अन्न-वस्त्र-स्वावलंबन आदि इसमें करने की विविध क्रियाएँ हैं और लोक-मानस अनुकूल बनाना ही इसका देवता है। मैं आशा करता हूँ कि सर्वोदय-प्रेमी सब भाई-बहन अपनी पूरी शक्ति एकसाथ इसमें लगायेंगे और इस विराट यज्ञ को सफल बनायेंगे।

—विनोबा

विषय-सूची

१

सर्वोदय के सेवकों से

गीता कहती है कि कर्मयोग का आरम्भ ही बुद्धि के निश्चय के बिना नही हो मकता। मूय के अस्त के वाद असख्य तारिकाए प्रकाशित होती है और उनका अपना-अपना अलग प्रकाश होता है। वैसे ही गाधीजी के जाने के वाद लोगो ने किया, यह ठीक ही है, इसमे किसी को दोष देने की जरूरत नही है, लेकिन अव इतने से हमारा काम नही होने वाला है।

जव वम्बई मे मरकारी सर्वोदय-योजना शुरू हुई, तो उसके पहले कुछ लोग, जो कि इम योजना मे शरीक होना चाहते थे, मुझसे मिलने आए थे। आज के जो मेरे विचार है, वे वहुत पुराने है। मैने उसी समय उनमे कहा था कि अगर दूसरा कुछ भी नही बन सकता है, तभी इस काम मे पडो। पर हमारे लिए वह एक मोह-जाल है। असली चीज जो हमे करनी है, हम नही कर रहे है। आज काग्रेम की सत्ता है, पर अगर कल दूसरे किसी पक्ष की सत्ता हो जाय, यहा तक कि कम्यूनिस्टो की भी सत्ता आये, तो भी हर मरकार आप जैमे लोगो की थोडी-बहुत मदद चाहेगी। कम्यूनिस्ट मरकार भी खादी को कुछ थोडी मदद देगी, क्योकि इस तरह के पुण्य का आधार हर मरकार चाहती है। आज की हमारी सरकार इतनी बुरी भी नही है कि हम उममे असहयोग करे। परन्तु उससे सहयोग करके मुक्त रहना, उममे वध न जाना, यह हमे करना होगा। रामदासस्वामी ने कहा कि 'परम्परेची उभारावे भक्ति-मार्गाशी'—कोई भी जिम्मेदारी अपने ऊपर मत लो। मव लोगो के सहयोग से करो। रामदास ने यह भक्तिमार्ग के लिए कहा था। जहा आसक्ति और मोह से वध जाने का मौका सवसे कम है, ऐमे भक्ति-मार्ग मे भी जव यह कहना पडता है, तो जिस कर्म-मार्ग

मे वैसा मोह अधिक है, वहा तो सोच-विचार करके ही काम करना चाहिए।

अपनी सरकार को जरूर मदद पहुचानी चाहिए, लेकिन जो कोई दूसरा काम नही कर पाते है, वे ही वहा जाय। इसमे कोई ऊच-नीच का भाव नही है। लेकिन मेरी तो सलाह यह है कि अगर हिम्मत करो, इन मोहो को दूर रखो, तो अच्छा होगा। योग के मार्ग की उपासना मे बाधक विद्या आती है, विघ्न आते है। वे आक्रमण नही करते, पर मोहित करते है, ताकि हम मुक्ति-मार्ग से हट जाय, उनमें बध जाय। समाज मे भी कुछ अच्छा काम तो चलता ही है, परन्तु दूरदृष्टि नही होती। लोग उसीमे फसते है, सरकार वाले दूरदृष्टि वाले नही होते। अगर वैसे होते, तो वे सोचते कि हमारे जैसे लोगो के बाहर रहने मे ही उनके लिए अच्छा है।

अनुष्ठान के लिए संगठित शक्ति

आज काग्रेस के लोगो से सम्पर्क रखने के लिए उत्तम पुरुष नही मिलते, जैसे कि आज की तालीम मे बच्चो को पढाने के लिए सबसे कम ज्ञानवान शिक्षक ही दिये जाते है, जिनका कि चरित्र भी कम हो और जो कम तनख्वाह मे ही निभ जाते हो। इस तरह राष्ट्र की जो सपत्ति याने बच्चे है, उनकी दृष्टि मे कोई महत्व नही रखते। इसी तरह आज काग्रेस के सब अच्छे लोग सरकार मे चले गये है। वे जनता के पास बहुत कम जाते है और जाते है तो क्या वे ऐसे स्पर्शमणि (पारस) होते है कि उनके स्पर्शमात्र मे जनता सोना बने? उलटे जनता का रग उनपर चढता है, उनका जनता पर नही। वे खुद को सेवक कहलाते है, तो इतने सारे जो किसान है, वे सेवा ही तो करते है। ट्रेन को लाल-हरी झडी बतानेवाला भी तो सेवा ही करता है। पर वह ऐसी सेवा नही करता, जो समाज की रचना मे ही परिवर्तन ला सके। शेरनी ने सियार से कहा कि "शूरोऽसि, कृतविद्योऽसि, धन्योऽसि यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते"—तू शूर, धन्य और विद्वान है, पर जिस कुल में हाथी का शिकार होता है, उस कुल मे तू नही पैदा हुआ है। इसमें तेरा कोई दोष नही है। हम लोग मामूली सेवा-कार्य करके

सतुष्ट रह जाय, इसमे कुछ होनेवाला नही है।

मुझे ऐसे कई वेदान्ती मिलते है, जो सतुष्ट है, खाते-पीते है, सभी तो चलता है। पुरुषार्थ की शून्यता को मोक्ष कहा जाय तो वे मुक्त ही होते है। वे ढोगी नही है, पर अल्प कल्पना कर लेते है और कहते है कि हमे भगवान् का दर्शन हो गया है। बाकी सारे व्यवहार हो रहे है, लेकिन और कुछ करने की प्रेरणा उन्हे नही होती है, क्योंकि उन्हे भगवान् का दर्शन हुआ है। यह तो ढोग है। ऐसे जीवो को असमाधानी बनाना भी एक पुरुषार्थ है।

अगर हम इस मामूली सेवा-कार्य मे लगेगे तो चन्द दिनो में हमारी ओर कोई ध्यान नही देगा। लोग हमे पिछडे हुए समझेगे, इसलिए आज हमें मौका है, तो हमे जाग जाना चाहिए। जब कोई बडा पत्थर उठाना होता है, तो एक-दो-तीन कहकर एकसाथ अगर सब लोग जोर लगाते हैं, तो ही वह पत्थर हटता है। एक के बाद एक ताकत लगाई तो ताकत उतनी ही लगेगी, पर पत्थर नही हटेगा। यह भूदान का एक बडा काम है। हमे थोडी-सी जमीन ही हासिल नही करनी है। जहा आपके मन में निश्चित मुद्दत में सारी समाज-रचना बदलने की बात है, गरीब को मालिक बनाने की बात है, यह आपका उसूल है, तो उसके लिए आप आयोजन करते है। वह इसी समय होगा। आज नही, फिर करेगे, ऐसा करने से कुछ नही होगा।

भगवान् ने कहा है कि "सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज"—सब धर्मो को छोडकर मेरे पास आओ। आज हिन्दुस्तान में भगवान् की पूजा क्या कम चलती है? पर वह पूजा दिन मे आध घटे चलती है और बाकी के साढे तेईस घटे दूसरे काम चलते है, जो उस पूजा के विरुद्ध होते है। जब सुबह उठते है तो थोडा-बहुत सत्त्वगुण चलता है। फिर भूख लगने पर रजोगुण और भोजन के बाद तमोगुण चलता है। थोडा सत्त्वगुण और फिर दूसरे गुण होने पर भी ऐसा मन में सन्तोष मान लिया कि हमने मेल बैठा लिया तो कैसे होगा? इसी तरह विनोबा के काम को दस-पाच दिन दिये तो कुछ तो मदद मिलती है। परतु हम जो चाहते है, वह नही होगा। अगर हम सिर्फ गरीबो को थोडी मदद देना चाहते है, यही हमारा उद्देश्य है, तो हमें नमूने के तौर

पर कही थोडा काम कर लेना चाहिए।

मैं आग लगाना जानता हू। सारी बस्ती मे प्लेग हो तो सारे गाव को आग लगानी ही होगी। पहले उसको जलाकर खाक करेगे और फिर बाद मे मकान बनायेगे। जिस गाव मे आग लगानी है, उसी गाव मे थोडी आग लगाकर एक मकान बाधना शुरू करना गलत है। हमें पहले जमीन का पूरा कोटा हासिल कर लेना चाहिए। थोडा-सा काम करने मे यह नही होगा। यह सबका काम है। इस काम को हम इस ढग से करेंगे कि हरेक को यह महसूस हो कि उसके बगैर चारा नही है। यह हम कर सकते है। अभी तक हमने बहुत काम किया है, परतु अब अपना बहुत सारा काम समेट कर इसमे कूद पडो। अब लोगो का मानस तैयार है। लोग तैयार है, पर हम तैयार नही है। ऐसा लगता है कि उलटा हुआ है। उलटा नही हुआ है। जो असली बात है, वही प्रकट हुई है। हम ही गाफिल थे और हम अपनी गफलत का आरोप लोगो पर लगाते थे। बिहार में हवा बन गई है। मैंने सुना है कि कही-कही जमीन की बिक्री बन्द हुई और जमीन खरीदने वाले भी नही मिलते है। लोग कहते है कि अब तो हमे जमीन मिलनेवाली है तो खरीद कर क्या करेंगे। इसीलिए अब इस साल गये साल के जैसा काम नही चलेगा।

घोषणाएं नहीं, कर्म

हम घोषणाए तो बडी-बडी करते है कि यह काम ऐसा है कि जो इतिहास में नही हुआ, आदि-आदि, परन्तु हम उसे यदि पूरा नही करते है, तो वह बडा हास्यास्पद होगा और हिन्दुस्तान के लिए यह बात खतरनाक होगी। फिर तो प्रतिक्रियावादी शक्तिया देश मे आयेगी। लोग कहेगे कि आपकी पद्धति से काम नही हुआ, तो अब हम दूसरी पद्धति आजमायगे। इसलिए अगर हम काम न करे, तो आज हिन्दुस्तान की जो आशा है, उससे भिन्न दिशा में भी हिंदुस्तान जा सकता है।

क्रिया से बढकर क्रिया का क्रम महत्व का है। जब जनता में ऐसी शक्ति

आयेगी कि वह खुद होकर यह काम उठायेगी तभी हम सहयोग की वात कर सकते है । आज वीच मे अन्य मैनेजमेट (व्यवस्थापक) रखेगे तो जनता मे शकाशीलता आयेगी, क्योकि आजतक विना मतलव के कोई भी उसके पास नही पहुचा है और हम ही वैसे पहुच रहे है, ऐसा उसको विश्वास होना चाहिए। चीन मे पहले जमीन गरीवो मे वाट दी गई। उससे लोगो मे विश्वास पैदा हुआ। पहले से ही सहयोग की शर्त लगाओ तो काम नही होगा ।

सरकार के लॉ-आर्डर का काम

भूदान-यज्ञ का आरम्भ तो हुआ है सामूहिक माग से, परन्तु मुझे लगा कि सामूहिक खेती की शर्त लगाने मे खतरा है। अगर ऐसा होगा तो दाता लोग इसीलिए जमीन देने को राजी होगे कि मैनेजमेट के रूप मे मजदूरो पर उनका अकुश रहेगा। यहा भी कुछ मुझसे कह रहे थे कि हम अपने ही मजदूरो मे जमीन वाटना चाहते है । लेकिन इसके पीछे वह दृष्टि थी। इन दिनो मजदूरो पर ऐसी सत्ता रखना छोटी वात नही है, क्योकि मजदूर अव समझ गये है। इसलिए दूरदृष्टि वाले सोचते है कि मतलव से खैरात करो। लेकिन इस तरह मजदूरो कोथोडी जमीन देकर उनपर सत्ता चलाना गलत है । इसलिए इस समय हमे सिर्फ जमीन प्राप्त करना ही मुख्य काम करना होगा। आप सरकार की फिक्र क्यो करते हो ? आखिर मै सरकार का ही तो 'लॉ एण्ड आर्डर' का काम कर रहा हू। इसलिए उनका 'लॉ एण्ड आर्डर' पर जो खर्चा होता है, वह सव मुझे मिलना चाहिए। उत्तर प्रदेश में मैंने एक जिलाधीश से यह वात की थी, तो उसने कवूल किया कि आपके काम मे यहाँ शाति रहती है। इसलिए वितरण के काम का सरकार को भी सोचना होगा।

संस्थाओ की कसौटी

हम तो मिट्टी वहाना चाहते है, पानी की तरह। हम चाहते है कि मिट्टी वहे तो सही, फिर वह कही भी जाय, परवाह नही । हम अपनी शक्ति के

अनुसार उसका इन्तजाम करेंगे। पीलीभीत में हमें जो जमीन मिली है उसमें हम शरणार्थियों को बसानेवाले हैं। इसलिए सरकार का उस खाते पर जो खर्चा होता है, उससे हम मदद माग सकते हैं और अपने तरीकों से शरणार्थियों को बसा सकते हैं। इसमें हम श्री टंडनजी की योजना अमल में लायेंगे। ऐसे गाव के कामों में चरखा-संघ और तालीमी संघ की जैसी संस्थाओं को फौरन लगना चाहिए, अन्यथा वे संस्थाएं किसलिए हैं? यह भी कोई आपका धंधा है कि आप दूसरे कामों में व्यस्त हों और जो काम करना चाहिए उसके लिए आपके पास समय न हो?

बापू ने मुझे १९४० में बुलाया था और पूछा था, "तू व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए तैयार है या नहीं? तुझे बहुत काम है। क्या तुझे समय मिलेगा?" मैंने कहा, "मुझे समय तो नहीं है, परन्तु मैं मुक्त हूं। कोई भी काम मुझे बांध नहीं सकता है।" आज भी मैं वही कर रहा हूं और अगर बुरी भाषा में कहूं तो मैं "ऐस्केपिस्ट" हूं—मैं भाग जाना चाहता हूं। कहीं आग लगी है, तो उससे भाग जाना ही अच्छा है। इसलिए मैंने कहा कि मैं मुक्त हूं। अगर उस समय मैं कहता कि मुझे काम है तो क्या होता, आप जरा सोचिए? मुख्य-मुख्य मनुष्यों को तो चक्र का या यंत्र का हिस्सा नहीं बनाना चाहिए। अगर ये भिन्न-भिन्न संघों वाले हमसे कहेंगे कि हम काम में व्यस्त हैं तो ऐसा कहना होगा कि 'वेट एण्ड फाउण्ड वांटिंग'—"तौलने पर पता चला कि पूरा वजन नहीं है।" ऐन मौके पर हम खरे न उतरे तो आजतक हमने जो काम किया है, उसकी कीमत कम होगी।

जब हम लड़ाई के लिए सिपाही चाहते हैं तो सबसे कहते हैं कि आओ। परंतु जो गोला-बारूद या शस्त्र बनाने का काम करते हैं, उनसे आने के लिए नहीं कहते, क्योंकि वे तो हमारी लड़ाई के ही हिस्से हैं। इसलिए उनको वहां से नहीं हटाना चाहिए। हम संस्थाओं से भी मनुष्य को चाहते हैं, पर ऐसे मनुष्य नहीं, जिनके हटने से संस्था गिर जाय। वे अगर संस्था छोड़ेंगे तो वह अदूरदर्शिता होगी। लेकिन अगर संस्था के संचालकों को कुछ मोह है और वे आसक्ति से कहते हैं कि संस्था छोड़कर मत जाओ तो यह गलत है।

संपत्ति-दान

हमें यह बता देना चाहिए कि जिस तरह भूदान-यज्ञ चला, उसी तरह सपत्ति-दान भी चलेगा। उसमे बेजमीन को और मदद मिलेगी। बेजमीन को जिस मदद की जरूरत है, वह उस-उस गाव मे हासिल करनी है और इसके अलावा शहरो से भी हासिल करनी है। शहरो ने आज तक भर-भर के पाया है। इसलिए अब उनको देना चाहिए। पहला रास्ता यह है कि शहर वाले ग्रामोद्योग की चीजे खरीदे। आज तो उलटा हो रहा है। पर हमे वह करना है। दूसरा मार्ग है, सपत्ति-दान।

जहा हमे बीच की एजेन्सी खडी करनी है, वहा वह शुद्ध होनी चाहिए। 'तुकाराम' के हाथ मे दूकान सौपी तो खतरा है और होशियार को सौपे तो भी खतरा है। इसलिए हमे ऐसा तुकाराम ढूढना चाहिए, जो भगवत्-भक्ति भी रखता हो। व्यवहार-कुशल भी हो।

एक-एक जमाना होता है। श्रावस्ती मे बुद्ध भगवान् के लिए मोहरे बिछा कर जमीन लेनी पडी और वही पर मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति को सौ एकड जमीन मिली। आज का जमाना कौरव-पाण्डवो का जमाना नही है। वे बडे थे, पर भीष्म, द्रोण भी जवाब नही दे सके कि द्रौपदी पर किसका हक है। आज तो कोई बच्चा भी यह बता देगा कि आज जमाना बदला है। नदी के प्रवाह के साथ हम तैरते है तो अपनी ही ताकत से नही तैरते, बल्कि प्रवाह की ताकत से भी तैरते है। आज काल-प्रवाह हमारे अनुकूल है। सत की बात प्रवाह के अनुकूल होती है तभी लोग उसे मानते है, नही तो सिर्फ सुनते है। हम गरीबो से इसलिए जमीन लेते है कि हमे सेना तैयार करनी है। उस सेना को बिना लडे ही यश मिलेगा। "हुकारेणैव धनुष"—'धनुष के हुकार से ही' शत्रु खत्म हो जायगे। तीर छोडने की जरूरत नही रहेगी।

गगा से यमुना छोटी तो होती है, पर वह गगा में मिलती है। वैसे ही आज सम्पत्ति-दान-यज्ञ यमुना है। पैसा उत्पादन का अनिवार्य साधन नही है, जैसे जमीन है। पैसा तो मोहमय साधन है। पैसे की कोईकीमत नही है।

वह तो नागिक के प्रेम मे पैदा होता है। लेकिन जमीन को कोई प्रेम नही पैदा करता है। इसलिए पैसे की तुलना हम जमीन से नही कर सकते। पैसे वालो का पैसा हम बेकार साबित कर सकते है। जमीन के हिसाब मे सम्पत्ति बहुत गौण है। जमीन बुनियादी है। यही सोच करके हमने जमीन का मसला हाथ मे लिया। सम्पत्ति-दान-यज्ञ पर मैं इस समय इसलिए जोर नही दे रहा हू कि वह ऐसा पौधा है, जो जल्दी उगेगा तो जल्दी सूख भी जायगा। एक कम्यूनिस्ट ने टीका की थी कि बाबा को न जमीन चाहिए, न सम्पत्ति, उन्हे तो कागज, वचन-पत्र चाहिए। यह टीका सही है। हम लोग जहा सपत्ति-दान का सोचते है, वहा हमारी नजर सबसे पहले कुबेर की तरफ जाती है। बीच की सीढिया हम भूल जाते है। हमें तो सबसे लेना है। कोई भी धर्म-कार्य सिर्फ कुछ व्यक्तियो को ही नही लागू होता है। धर्म-कार्य तो सबके लिए होता है। लेकिन मैं चाहता हू कि जो सम्पत्ति-दान देगा, वह पक्का रहेगा।

दक्षिण भारत के कार्यकर्ताओं से

आज आपने सुना है कि गया मे अडतालीस हजार एकड जमीन मिली और साढे नौ हजार लोगो ने दान दिया। इसका मतलब यह है कि बिल्कुल छोटे-छोटे लोगो के पास कार्यकर्ता पहुचे है और फिर भी वे कार्यकर्ता गया के एक-चौथाई गावो मे भी न जा सके है। तीन-चौथाई गावो तक अभी पहुचना ही है। गया मे तीन लाख मिले तो कहना होगा कि वहा पर बिना कानून के भूमि का बटवारा हुआ। इसीलिए जयप्रकाशजी ने कहा कि यह क्रान्ति का आन्दोलन है। जयप्रकाशजी ने कहा कि अगर हम गया मे यह काम कर सके तो फिर हिंदुस्तान के दूसरे सब जिलो मे यह काम हो सकता है। फिर तो सिर्फ काम करने की ही बात रही।

हमारा राज हमारे हाथ में

पाच पाण्डव एक थे, इसलिए उनकी जीत हुई। तेलगाना मे हमने भूदान की जो समिति बनाई, उसमे एकाध काम नहीं करता है, तो एकाध असन्तुष्ट है। उधर कोई शिकायत करता है, तो एकाध ही बटवारे

का काम करना है और एकाध प्राप्ति का। इसी तरह होगा, तो क्या हम रचनात्मक काम करनेवाले दुनिया मे टिकनेवाले है ? मै प्रोपैगेण्डिस्ट (पेशेवर प्रचारक) नही हू। मैने रचनात्मक काम मे ही जिन्दगी बिताई है, इसलिए मै उनकी कीमत जानता हू। फिर भी मै कहता हू कि आज मेहरबानी करके वे सारे काम एक साल के लिए मुल्तवी रखो। फिर आगे आपको पेट भर समय मिलेगा, रचनात्मक काम करने के लिए हमे गाव-के-गाव मिल रहे है। अब वहा पर सब काम करना होगा। अगर हम लोगो से यह वायदा करेगे कि सारा गाव दे दो तो वहा हम रचनात्मक काम भी करेगे। तब कई गाव मिलेगे और फिर रचनात्मक काम करने का बहुत मौका भी मिलेगा। परन्तु आज इस भूदान के काम मे आप सब लोग एक ही समय जोर लगायगे तो यह काम होगा। यह मै भूदान-यज्ञ के हित मे ही नही कहता हू, बल्कि सारे रचनात्मक कामो के हित मे कहता हू कि काम के टुकडे-टुकडे मत होने दो। अपनी-अपनी जिम्मेदारिया होती है, परन्तु उनको जहा तक हो सके, कम करके अपनी सारी शक्ति और बुद्धि भू-दान मे लगाओ। तभी यह पहाड उठेगा और फिर हम इस गोवर्धन की छाया मे सारे काम कर सकेंगे। फिर तो राज ही हमारा होगा।

आसक्ति छोड़िये

तेलगाना मे क्या हुआ ? हम गये तो काम हुआ, उसके बाद फिर से बन्द ! फिर शकरराव गये, तो काम हुआ और फिर से बन्द ! यह देखकर आश्चर्य होता है कि हमारी जो बुद्धिहीनता है, वह कितनी गहरी है और सार्वजनिक सस्थाओ की हममे कितनी आसक्ति है। मै कहता हू कि और सब काम छोड कर इस काम मे आओ। जैसे समुद्र-स्नान से सब नदियो के स्नान का पुण्य मिलता है, वैसे ही भूदान के काम मे सब काम होनेवाला है। इसलिए आप सब इसमे आवें। आखिर मनुष्य सब छोडकर चला ही तो जाता है, और बिना नोटिस के चला जाता है, बेजिम्मेदारी के साथ चला जाता है। इसलिए हममें वह शक्ति होनी चाहिए कि जब एक काम के लिए दूसरा काम छोडना

होता है, तब उसे छोड सके। इसी को त्याग कहते है। परित्याग की यह शक्ति हममें होनी चाहिए, अन्यथा आसक्ति रहेगी। आखिर आप क्या काम करते है? जहा काम करते हो, वहा दस-पद्रह चरखे चलते होगे, दो-चार गज कपडा बनता होगा, दस-पाच गाये अच्छी होती होगी और दो-चार पेड बढते होगे। इसमे क्या फायदा होनेवाला है? ये सब बेकार की बाते है। इसमे तो कुछ न करना ही अच्छा है। वहा बैठकर आप सूत कातते हो, तो किस घर मे आप है, इसका चिडिया तक को पता नही होता है। इस तरह कैसे चलेगा? गाधीजी के बाद पाच साल मे हमने कुल मिलाकर क्या किया? जरा सोचो तो? कुछ है सतोष आपके दिल को?

काग्रेस मे आज जन-शक्ति नही है। ईर्ष्या भी है और बोगस मेम्बर-शिप भी चलती है। यदि आप चाहते है कि लोग आपके पीछे आवे तो स्व-तत्र मार्ग अपनाओ। आज तो किसी को अपने रचनात्मक काम की आसक्ति, किसी को काग्रेस की आसक्ति, किसी को गाय की आसक्ति और किसी को बैल की आसक्ति है। और उस गाय-बैल के काम को भी ये लोग सार्वजनिक काम कहते है। इस तरह बुद्धि की जो जडता है, उसको छोडना होगा।

दूसरी एक बात है। आप चाहते है कि कोई बडा नेता आयेगा, तभी काम होगा। ऐसी इच्छा मेढको को भी एक बार हुई थी। उन्होने परमेश्वर से कहा कि हमे राजा चाहिए। फिर परमेश्वर ने एक पत्थर फेका, जिसके नीचे दबकर सारे मर गये। इसलिए आप लोग नेता की जो माग करते है, उसमें कोई सार नही है। यह नया-नया काम है, इसलिए नये लोग चाहिए। बडो का आशीर्वाद इस काम को मिला है, यही बस है। काग्रेस ने प्रस्ताव किया है और उसमे काग्रेस का आशीर्वाद मिला है, यही काफी है। आखिर नेता क्या है? जो काम करता है, वही आगे चलकर नेता बनता है। कोई जन्म से तो नेता नही होता है। इसलिए हम सब छोटे है, ऐसा ख्याल छोड दो। सम्मिलित होकर काम करो। धीरे-धीरे बल बढेगा तो फिर सारी दुनिया मदद मे आयगी। यह दुनिया ऐसी है कि जिसमे निर्बल की कोई मदद नही करता, इसलिए पहले बल बढाओ।

कुछ लोग तो मेरी ही आशा करते है। कहते है कि विनोवा के आने पर काम होगा। लेकिन अव तो हम विहार मे गिरफ्तार हो गये है। हमारा काम करने का एक ढग है। पहले व्यापक प्रचार करना था, इसलिए इधर-उधर घूम लिया और कही दस हजार और वीस हजार, ऐसी जमीन प्राप्त करते हुए तीन-चार लाख एकड जमीन प्राप्त की। उससे हवा फैल गई, लेकिन अगर आज मै उसी तरह काम करता चला जाऊँ तो पाच-छ साल लगेगे और उसमे भी कुल पद्रह-वीस लाख एकड जमीन ही मिलेगी। पर आखिर इतने से क्या होगा ? हमे तो पाच करोड एकड हासिल करना है। उनमे कम अव मै नही वोलूगा। लेकिन कही पर गहरा भी जाना पडता है, इसलिए मैने विहार चुना है, और विहार मे भी गया जिला चुना है।

मैने आपको तीन वाते वताई — १ आप अपना पूरा समय भूदान मे दे दो। २ नेता की आशा मत करो। ३ मै यहा जो बिहार में अधिक समय रहने वाला हू, उसमे आप कुछ भी खोते नही, वल्कि बहुत पाते है।

(प्रश्न विहार राज्य का मामला हल होने पर भी वाकी राज्यो का काम तो वाकी ही रहेगा। तव उसके लिए क्या करना होगा?)

यह हालत असह्य

विहार राज्य का मसला हल होने पर भी दूसरे राज्यो के लोग चुप वैठेगे, यह सोचना ही गलत है। या तो वहा की सरकार कानून करेगी, नही तो कार्यकर्त्ता लोग काम करेगे और नही तो वहा के लोग वलवा करेगे। वहा रक्त-रजित राज्य-क्रान्ति होगी। अगर वैसी क्रान्ति हुई तो मै उससे सुखी ही होऊगा। आज की हालत असह्य हुई, और इसलिए वहा क्रान्ति हुई तो उसे रोकने वाला मै कौन हू। आज की हालत मै किसी भी हालत मे सहन करने को तैयार नही हू।

दुनिया की आज की हालत ऐसी है कि दुनिया के किसी एक कोने में भी कुछ हुआ तो दुनिया भर मे वह वात फैलती है। जहा काश्मीर का राजा खतम हुआ, वहा सव राजाओ की गद्दी हिलने लगती है। जहा आन्ध्र

स्टेट बना, वहा सारे देश पर उसका असर होगा। अब पुराने जमाने के जैसी हालत नही रही। अब तो एक का असर दूसरे पर हुए बगैर नही रहेगा और अगर हमारी यहा की सेना को यश मिला तो फिर वही सेना बाहर जायगी। वह तो ऐसी सेना होगी, जिसे विजय मिलेगी ही।

इसलिए आप लोग प्रान्त भर मे सर्वसामान्य वातावरण तैयार करो। फिर 'स्ट्रेटेजिक प्वाइन्ट' का सवाल आता है। वैसा प्वाइन्ट चुनकर लोगो ने जहा उसपर हमला किया कि सारा प्रान्त हिलेगा, वैसे ही मैने गया चुना है। गया बुद्ध भगवान् की भूमि है। वहा सारे हिन्दुस्तान के लोग श्राद्ध करने के लिए आते है। फिर वहा काग्रेस के अलावा समाजवादियो की भी कुछ ताकत है और वह बिहार का बीच का जिला है। इसलिए मैने गया चुना है।

गांधी की सूर्य-शक्ति

तामिलनाड के लोग क्या कम पराक्रमी है ? उनके पास तो दो हजार साल का साहित्य पडा है। उनको सिखाने लायक हमारे पास कुछ भी नही है। उनके बडे-बडे चार साम्राज्य चले। अशोक की सारे हिन्दुस्तान पर सत्ता थी, परतु वह उनपर नही चली। वे आज बहुत कर सकते है। परतु उसके लिए सस्था को फेकने की, तोडने की शक्ति चाहिए। गाधीजी मे वह शक्ति थी। वे बडी-बडी सस्थाए खडी करते थे और तोड देते थे। साबरमती-आश्रम खडा किया, गाधी-सेवा-सघ जैसी बडी सस्था खडी की, लेकिन एक क्षण मे सब तोड डाला और वहा के सब आश्रमवासी बाहर काम के लिए निकले। गाधी-सेवा-सघ तो इतनी बडी सस्था बनी कि लोगो का यह ख्याल हुआ कि वह काग्रेस से स्पर्धा करने लगी है। पर उन्होने वह भी खतम की। वर्धा छोडकर वे जब गये तो हमेशा के लिए गये। अगर वे रहते तो भी वहा वापस नही आने वाले थे।

वेदो मे सूर्य की महिमा बताई है। सारी किरण फैली होने पर भी

वह एक क्षण मे सबको खीच लेता है। खीचने की यह कितनी महान् शक्ति उसमे है। ऐसी ही शक्ति गाधीजी मे थी। बारडोली का महान् आन्दोलन एक क्षण मे उन्होने बन्द किया। तब सारे हिन्दुस्तान भर मे उसपर टीका हुई, पर उन्होने उसकी परवाह नही की।

अगर पेड लगाया तो पेड को पानी देने के लिए क्या हमको पेड बनना चाहिए? अगर हम उसके लिए स्थिर बनना पडता है, और इस तरह हम आसक्त बनते है, तो कैसे काम होगा? आज तो सस्था बनी, तो इसका मतलब होता है कि हम 'फसीले' बने। इस काम मे अधिक समय देना जरूरी है, इस तरह क्या तौल कर चलते हो? एक क्षण मे सस्थाओ को फेक दो। सारा राज्य आपकी इच्छा के अनुसार चलेगा, तो सारी सस्थाए आपकी बनी है। जब सारी स्टेट हमारे रग की होगी तो घर-घर चरखे चलेंगे। आज भी हमारे ही भाई वहा पर बैठे है, जिनके हाथ मे सरकार है, परन्तु हमारे विचार के मुताबिक काम करना उनसे नही होता है। वे चरखे को कुछ उत्तेजन तो देते है, पर मिले बन्द नही कर सकते।

राजाजी ने बुनकरो के लिए जो माग की थी वह शासन के दृष्टिकोण से की थी, लेकिन उनके लिए भी उनको कितना लडना पडा? उन्होने पहले कट्रोल उठाया। उससे लोगो मे कुछ विश्वास उत्पन्न हुआ। मद्रास मे दूसरी महत्व की जमात बुनकरो की है। वहा पर दस मे से एक बुनकर है। उनको काम नही मिल रहा है, इसलिए राजाजी ने वह बात उठाई। एक बार उन्होने कहा था कि अगर मेरा जीवन-चरित्र लिखना है, तो इतना ही लिखो कि इसने कट्रोल उठाया! यह राज-कारोबार चलाने की कुशलता है। वहा पर राजाजी के कारण बुनकरो का कुछ बना। परन्तु सरकार इससे अधिक नही कर सकती है। लेकिन आपको तो सारा हिंदुस्तान खादीमय बनाना है। आप चाहते है कि कोई भी भगी न हो, सब लोग भगी का काम करे, देश मे सेना न हो तो। यह सारा करने के लिए जन-शक्ति चाहिए।

गाधी-निधि पर निर्भरता न हो

गाधीजी के नाम पर एक फड इकट्ठा किया गया। वह एक प्रकार से

गाधीजी की श्राद्धनिधि है और शास्त्रो ने कहा है कि श्राद्वान्न मत खाओ। तो क्या उसी निधि के आधार पर हम अपनी सस्थाए खडी करें ? हम सरकार का ही पैसा लेकर अपशकुन करना नही चाहते। कम्युनिटी प्रोजेक्ट मे अमेरिका से मदद लेकर अपशकुन किया है। और मदद ली भी तो कितनी ? बीस प्रतिशत ! मैंने कहा, इससे तो बेहतर यह होता कि बीस प्रतिशत प्रोजेक्ट ही कम कर देते। मदद लो, पर देहात के काम के लिए नही लेनी चाहिए। मेहमान को हम बाहर बिठाते है, रसोई-घर मे नही ले जाते है। हैदराबाद मे इस काम का आरम्भ ही था, इसलिए मैंने सरकार से मदद ली। परन्तु उत्तर प्रदेश मे सरकार से मदद नही मागी। गाधी-निधि से मदद मागने का हमे हर हालत मे हक है, क्योंकि वह पैसा वहा पडा ही है। परन्तु वह पैसा न मिले तो भी हमारा काम चलेगा, इस दृष्टि से मैंने उत्तर प्रदेश मे मुआवजे का भी दान मागा। अगर बटवारे के लिए कही से भी पैसा नही आया तो इस मुआवजे के पैसे मे हम बटवारा करेंगे, ऐसी योजना मैंने कर रखी थी, जिससे कि बाहर से कुछ भी मदद न मिले, तो भी हम अपने पैरो पर खडे रह सके। उसके बाद मावलकरजी का मेरे पास पत्र आया और मैंने जवाब दिया कि भूदान मे मदद देना गाधी-निधि के लिए शोभादायक है, इसमे उसकी इज्जत बढती है। फिर उन्होंने पैसा मजूर किया। पर हम गाधी-निधि के आधार पर ही अपनी सस्थाए चलाते है तो वे सस्थाए निर्जीव बनती है।

तेलंगाना का कार्य

तेलगाना के लिए मै कहता हू कि आज मै वहा जाऊ तो एक महीने मे एक लाख एकड ला सकूगा। वहा वातावरण बिलकुल तैयार है। एक साधारण रसोई बनानेवाली स्त्री को भी अक्ल है कि रोटी बनानी है तो चूल्हा गरम किये रखो। लेकिन यह अक्ल तेलगाना के कार्यकर्ताओ को नही है। हमने वहा चूल्हा गरम किया था, पर उन्होंने ठडा करके रखा है। काम मे सातत्य चाहिए। महादेव पर बूद-बूद अभिषेक होना है, तभी महादेव प्रसन्न होते

है। सतत धारा चाहिए। एक लोटा पानी उसपर फेक दिया, और फिर चले, तो इससे महादेव प्रसन्न होनेवाले नही है।

भाषावार प्रान्त-रचना पाच मिनिट में

नीचे वालो ने और ऊपर वालो ने भाषावार प्रान्त-रचना का यह मसला नाहक जटिल बना दिया है। यह तो सादा-सा मसला है। लेकिन जैसे पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सीमाए बनाने मे कमीशन बैठा, वैसे इसमे भी होना चाहिए, ऐसा ये लोग कहते है। कर्नाटक वाले कहते है कि कावेरी से गोदावरी तक का प्रदेश हमे चाहिए, यानी पास के दोनो प्रातो मे वे अपना पैर डालना चाहते है। इसी तरह आध्र वाले भी बस्तर से लेकर मद्रास तक चाहते है। तमिलवाले कहते है कि व्यकटगिरि से कन्याकुमारी तक का प्रदेश हमे चाहिए। लेकिन आपकी भाषा बोलनेवाले दस-पाच हजार लोग दूसरी भाषा के प्रात मे गये तो क्या बिगडेगा? अगर आप मुझे अधिकार दे तो मै पाच मिनिट मे भाषावार प्रात-रचना कर दूगा। आपमे कोई भारतीय भावना भी मौजूद है? अगर आप एक केन्द्र को कबूल करते है तो नाहक झगडे क्यो करते हो? ऐसे झगडो मे मै नही साथ दूगा। एक भाषा बोलने वाला जिला या तालुका यूनिट मान कर प्रात बनाने के लिए आप तैयार है, तो काम जल्दी हो सकता है। बम्बई-मद्रास के लिए भी झगडे हो रहे है। हम भाषावार झगडो को नही मानते है, परतु प्रात बनने मे भाषा एक होनी चाहिए और जनता की भाषा मे सरकार का काम चलना चाहिए, इस उसूल को हम मानते है। मद्रास-बम्बई जैसे के लिए तो मै कहूगा कि 'टॉस' करके मसला तय करो। क्या आपका प्रात बन जाने के बाद भी आपके लोग प्रात के बाहर नही जायगे? सारा हिन्दुस्तान आपका है। आप बाहर जाने वाले है और बाहर के लोग आपके प्रान्त मे आनेवाले है।

मेरा आपको यही सदेश है कि हिम्मत करके सारी सस्थाए तोड डालो।

२

उदय की मंगल वेला

मुझे ऐसा लगता है कि दुनिया को तो क्या, हिंदुस्तान का भी दर्शन हमे ठीक नही हुआ है, और इसलिए जो छोटे-छोटे काम हम करते है, वे निस्तेज बनते है। इसलिए नही कि वे छोटे-छोटे है, बल्कि इसलिए कि जमाने की पहचान उनमे नही होती। एक कालपुरुष भी होता है और उसके अनुसार युग-धर्म होता है। नित्यधर्म के साथ जब युग-धर्म जोड दिया जाता है, तो दोनो मिलकर ही पूर्ण साधन बनता है। अगर हम एक छोटी-सी चीज हिंदुस्तान भर मे फैला दे तो उसमे से महान शक्ति का निर्माण हो सकता है। पर बावजूद इसके कि हम नही चाहते, अलग-अलग दिशाओ मे प्रयत्न हो रहे है। यदि हम अपनी प्रवृत्तियो की गिनती करने जाय तो अपार गिनती होती है और हरएक के लिए हम योजना तो अखिल भारतीय ही बनाते है। जितना सारे हिंदुस्तान मे हुआ है, उतना किसी एक जिले मे हुआ होता तो अच्छा आरभ हुआ है, ऐसा मै कह सकता था।

गलत काम करना जैसे एक दोष होता है, वैसे ही समय पर ठीक काम न करना भी एक बडा दोष होता है और दिशा समझे बगैर काम करना तो व्यर्थ ही होता है।

भूदान मे गया जिले मे ४०-४५ हजार एकड जमीन तो हो ही गई है। उन्होने एक लाख का सकल्प किया था। वह मियाद मे पूरा नही हुआ। फिर भी उसे वे पूरा करेगे, इसमे सदेह नही। और यह उम्मीद भी मै उस जिले से करता हू कि वह भूमि के मसले को हल करने की राह सबको दिखायेगा। जहा इतनी जागृति हो, वहा हम यह नही कह सकते कि कार्यकर्त्ता और लोग काम के लिए प्रेरित या प्रवृत्त नही किये जा सकते, पर कताई-

मडल तो वहा कुल तीन ही है। भूमि-दान का काम वहा होता है और कताई-मडल का नही होता। यह सोचने की बहुत जरूरत है कि हम जो भी काम करे, वह सब मिलकर करे, सबकी शक्ति उसमे लगा करके करे। हम इस बात के महत्व को समझे।

समग्र दृष्टि का अभाव

पिछले पाच-छ सालो मे हमने 'समग्र दृष्टि' शब्द का इस्तेमाल तो बहुत किया, लेकिन काम टुकडो-टुकडो मे ही हो रहा है। शक्ति हमारे पास बहुत ज्यादा नही है, यह तो हम जानते है, फिर भी जो शक्ति है, उसे हम एकाग्र नही कर पा रहे है। पहाड पर जो पानी गिरता है, वह चाहे थोडा ही हो, लेकिन अगर वह एकाग्र हो जाय तो उसमे से नदी पैदा हो जाती है और यदि बहुत भी हो, पर एकाग्र न हो, तो उसकी नदी नही बनती। छोटे-छोटे नाले उसमें से बहते है, जो आगे जाकर सूख भी जाते है। नदी का दर्शन उसमे नही होता। यह बुनियादी बात मै बोल रहा हू। तो मेरे मन में आया कि पहले 'सर्व-सेवा-सघ' पूरा बनना चाहिए था, वह नही बन सका। यानी उसका जो स्वरूप मेरे मन मे था, वह हम नही बना सके। वैसे ही ग्रामोद्योग की हालत है। मगनवाडी (वर्धा) मे उनका काम चलता है, पर वर्धा शहर मे या आसपास उसका दर्शन नही होता। एकाध प्रान्त मे कही एकाध दूकान चल रही होगी।

श्री रामेश्वरी नेहरू ने मुझे लिखा था कि वे सर्व-सेवा-सघ से क्यो न हट जाये? कारण यह था कि वे ग्रामोद्योग की चीजे इस्तेमाल नही कर पा रही है और सघ मे प्रस्ताव तो ग्रामोद्योग के व्यवहार का हुआ है। मैंने उन्हे समझाया कि दिल्ली मे इस तरह के विचार को माननेवाले तो कई लोग है, हजार-पाच सौ तो होगे ही। क्या उनकी दृष्टि से ऐसा इतजाम वहा नही हो सकता कि हाथ के चावल, शक्कर आदि वही मिलें? उन्हे लगा कि हा, ऐसा हो सकता है। दिल्ली में तो अखिल भारत से आये हुए लोग रहते है। उनमें बहुत सारे विचारक भी है। किन्तु ग्रामोद्योग का कोई दर्शन वहा नही है। हम यह कहें कि सिर्फ शहरो मे ही ग्रामोद्योगो का दर्शन नही है और ग्रामो

मे वह है, सो भी वात नही है। लेकिन मिसाल मै शहरो की दे रहा हू। कलकत्ते मे भी इस विचार के हजार-पाच मौ लोग तो होगे ही। वे इमका इनजाम कर सकते है, पर नही करते। ऐमे काम चल रहा है। उमकी जड मे जो दोप है वह यही कि हम अलग-अलग योजनाए वनाते है, अलग-अलग शक्ति लगाते है।

शक्ति-क्षीणता का सामान

सारे कामो को मिलाने की वात जव आती है तव हमारे कार्यकर्त्ताओ के मन मे लाभ और हानि का विचार पैदा होता है। कई लोगो ने मुझसे इमकी चर्चा की। अलग-अलग काम करने से हरएक काम ज्यादा अच्छी तरह होगा और सव कामो को मिला देने से सभी काम थोडे-थोडे होगे, किमी काम की विशेप प्रगति नही होगी, इस तरह नफा-नुकसान का हिमाव वे लगाते है। फिर भी मेरे मन में आता है कि यह सारा नफा-नुकसान गौण हो जाता है, जवकि हम देखते है कि हमारा समाज 'विकेद्रित' नही, वल्कि 'विकीर्ण' है। 'विकेद्रित' होना तो मै अच्छा मानता हू, उसमे स्वतत्र वुद्धि मव जगह लगेगी। पर हमारा काम तो 'विकीर्ण' है, 'विकेद्रित' नही। कई वार मैने देखा है कि एक काम मे जव हम हार जाते है तो दूसरा उठाते है। कई वार यह जानते हुए कि फलाना काम हमसे नही होगा, केवल इसी विचार से उसमे लगे रहते है कि अव तो अपना जीवन हमने उसमे दे दिया, तो हम पीछे कदम उठानेवाले नही है। यश की निश्चितता न होते हुए भी केवल अपना जन्म (जीवन) उस काम मे दे दिया इसलिए उसे नही छोडते। जीवन तो दे दिया होता है, लेकिन काम मे विश्वास नही होता। इमका नतीजा उत्तरोत्तर निराशा मे होता है, ताकत या उत्साह की वृद्धि मे नही होता।

जनता के मन की वात

देश मे नई-नई ताकते पैदा हो रही है। इतना होने पर भी मैने अनुभव किया कि वेचारे लोग भूखे है, प्यासे है, लेकिन सर्वोदय-विचार की इज्जत करते है। यह एक आश्चर्य की वात है। हमने उनकी श्रद्धा के लायक वहुत काम

किया हो, ऐसी बात नही है। इसपर भी वे बेचारे हमारे विचार मे श्रद्धा रखते है। यह चीज उन्हे जचती है। मै मानता हू कि उन्हे इस बात का सहज भान है कि यह विचार उनके लिए बहुत अनुकूल है, इसीलिए उनका स्वाभाविक आकर्षण इस ओर है। वैसे ही इस विचार के सुनने मे लोग कितने सतुष्ट होते है, यह भी मैने देखा। जैसे चद्रमा के दर्शन से समुद्र प्रसन्न होता है, वैसे जनता इस विचार मे प्रसन्न होती है। विहार मे इसका प्रत्यक्ष रूप मैने देखा।

कार्यकर्ताओ की भ्रातमति

विहार मे मुझे एक विशेष दर्शन भी हुआ है। मेरी मीटिंगो में विचार सुनने के लिए बीस-बीस, पचीस-पचीस हजार लोग आते थे। पर दान मिलता था कभी पचास एकड, कभी सौ एकड! तो मैने सोचा कि इसका कारण क्या है? इसलिए मैने गया मे बुद्ध भगवान् का नाम लेकर एक लाख एकड का सकल्प कर लिया और दामोदर को वहा छोड दिया। अनुभव पर से मुझे विश्वास था कि अगर हम अपना विशेष मनुष्य वहा न रखे, तो बावजूद इसके कि जनता इसे चाहती है, काम आगे बढेगा नही। नतीजा यह है कि काम हो रहा है। काम तो वहा के लोग ही करते है, पर उनको प्रेरणा देने वाला, जगानेवाला मनुष्य उनके पास पडा है। इसलिए लोग काम मे बराबर लगे है। तो जनता बिलकुल तैयार बैठी है और कार्यकर्त्ता भी है, परतु उनकी मति भ्रात है। और यह भी उनके ध्यान मे नही आ रहा है कि दूरदृष्टि से जनशक्ति निर्माण करने मे हमे लग जाना चाहिए। गीता मे लिखा है कि 'एकस्मिन् कार्ये सक्तम्' (एक ही फुटकर काम में आसक्त हो जाता है।) 'सर्व-सेवा-सघ' के पास जितने रचनात्मक कार्यकर्त्ता है, उतने और कही नही है, लेकिन उनमें हरएक छोटे-छोटे काम की आसक्ति पैदा हो जाती है। लोग मुझसे पूछते है कि 'हम चरखे का काम करे या अकाल-निवारण का? या इसी तरह का दूसरा काम करे? पर आप मुझसे पूछिये तो मै तो यही कहूगा कि 'मेरे तो राम नाम, दूसरो न कोई।' मुझे दूसरे नाम लेने ही

नही है। इस नाम मे दूसरे नाम आ जाते है, तो आ जाते है और अगर नही आते तो दूसरे नाम लेने की मुझे जरूरत नही है।

सर्वोदय-समाज से जनता की अपेक्षा

मुझे यह विश्वास हो गया है कि अगर हम अपने कामो को समग्र दृष्टि से करे तो उन कामो के लिए प्रतिकूल परिस्थिति हिन्दुस्तान मे कही भी नही है। यह बात मै अनुभव मे निश्चयपूर्वक कहता हू, बल्कि मै तो यह भी कहता हू कि सर्वोदय-समाज से लोगो की जो अपेक्षा दिन-ब-दिन बढ रही है, उसमें कोई घटाव नही है। बापू के जाने के बाद १९४८ में फौरन यह शब्द चला। तब सर्वोदय से लोगो को जितनी आशा थी, उससे आज कम नही, ज्यादा ही है, ऐसा मेरा अनुभव है। कुछ भोले लोग तो यहा तक मानने वाले है कि अगर कुछ काम होगा तो इसी कार्यक्रम से होगा। उसका नतीजा यह है कि दूसरे लोग जो कुछ जन-सेवा करना चाहते है, और उसे बढावा देना चाहते है वे भी सर्वोदय का नाम ले लेते है। कम-से-कम सर्वोदय से उनका विरोध नही है, यह तो वे बतलाते ही है। यह सब उनको इसलिए करना पडता है कि जनता मे सर्वोदय के लिए श्रद्धा है, आशा है। जिस शब्द के लिए इतनी श्रद्धा है, उसका अनुष्ठान हम श्रद्धा और आशा से करे और ठीक-ठीक ढग से तथा निष्ठापूर्वक करे तो काम क्यो नही होगा?

हमारा काम अगर छोटा है, तो भी अगर वह शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल रहा तो शक्तिशाली होगा, अन्यथा नाममात्र की सख्या बढती है और काम कुछ नही होता। इसलिए हमे जो भी काम करना हो वह सर्वोदय और समग्रता को सामने रखकर करना चाहिए और उसके दोषो को दूर करना चाहिए। ये दोष छोटे कार्यकर्त्ताओ के नही है, बल्कि हम लोगो के है जो कि सचालक माने जाते है। हम लोग इतने विकीर्ण है कि एक-दूसरे के काम की जानकारी भी हमे नही है। एक-दूसरे के साथ हमारा कोई सम्पर्क नही होता। जहा जानकारी भी नही वहा एक-दूसरे के काम मे लाभ उठाने का सवाल ही नही उठता। यह विकीर्णता हमारे काम को क्षीण कर रही है और हममे जो

शक्ति है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव हमे नही आता।

'दर्शन' के बिना 'प्रदर्शन'

जनता मानती है कि हमपर उसका बहुत हक है। हमपर मार्गे बहुत है। कोई हमे बुलाता है भारत सेवक समाज मे, कोई कम्यूनिटी प्रोजेक्ट मे। कोई कही बुलाता है, कोई कही बुलाता है। हैदराबाद मे काग्रेस ने हमे बुलाया, ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी के लिए। वह बुलाती है तो कुछ तो श्रद्धा भी रखती है और कुछ शोभा के लिए भी बुलाती है, लेकिन प्रदर्शनी से शोभा मात्र होती है। उसमे ताकत भी हमारी काफी लगती है। हमे यह आशा होती है कि उससे हमारा काम आगे बढेगा, लेकिन हमारा काम प्रदर्शनी से नही बढेगा, बल्कि 'दर्शन' मे बढेगा जो हममे नही है। वह दर्शन अगर हमे हो जाय और उसको ध्यान मे रखकर हम अपना काम करें तो सारी चीजे एक-दूसरे के साथ जुड जाती है। देश मे कई तरह के केन्द्र है—तालीमी-सघ के केद्र है, कस्तूरबा वालो के कुछ केद्र है, खादी-समिति के कुछ केद्र है और फिर कुछ सरकारी केद्र है और कुछ गैर-सरकारी के भी है। ये सब अलग-अलग केद्र क्यो है, समझ मे नही आता। हमे इस विचार के मूल में जाना चाहिए, इसका सशोधन करना चाहिए और 'सर्व-सेवा-सघ' को एकरस बनाना चाहिए। वही सारा दोष है। कई प्रकार की कमजोरियो के रूप में उसका दर्शन होता है। जड मे अगर एकाग्रता रही, तो सारे काम ठीक ढग से होगे और छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता शक्तिशाली सिद्ध होगे।

विचार-स्रोत सूख रहा है

ये छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता बहुत बडी शक्ति प्रकट कर सकते है, यदि उन्हें एकाग्र मार्ग-दर्शन मिले। गाधीजी को लिखी हुई 'गीताबोध' या 'अनासक्ति योग' पुस्तक—मुझे ठीक याद नही है कौनसी—आध्र में अनुवादित हुई थी। उसका तेलुगु अनुवाद कोई बीस साल पहले निकला, पर तबसे अबतक उसका दूसरा सस्करण भी नही निकला है। इसपर से आप सोच सकते है कि वहा के कताई-मडलो का काम कैसा होता होगा? यह जो मूल

विचार है, उसकी यह हालत है। आन्ध्र तो वेचारा पहले ही से बिल्कुल जर्जर है। वहा अनेक पक्ष-विपक्ष है। सर्वोदय वालो के भी अनेक पथ-उपपथ चलते है। कोई किसी की नही सुनता। यह भी नही कि तेलुगु भाषा मे पुस्तकें कम बिकती है। बल्कि गौरवपूर्वक कहना चाहिए कि तेलुगु में जितना कम्यूनिस्ट साहित्य खपा है, उतना दूसरी किसी भाषा में नही खपा है। वह साहित्य स्त्रियो और बच्चो तक पहुचा है। गाने भी उस भाषा में वने है। तो साहित्य लोग पढने है। नही पढते, ऐसी बात नही है। लेकिन हमारे साहित्य की यह दुर्दशा है। जहा विचार-स्रोत ही सूख रहा है, वहा बाहरी कामो से कितना जोर आ सकता है? हमारी इतनी सस्थाए है, इतनी शक्ति है, यदि वे सब ठीक ढग से काम करे तो बहुत काम होगा।

मै नही जानता कि मुझे कबतक विहार मे रहना पडेगा, लेकिन यदि विहार के कामो मे एकरसता आई, तो भूमि के मसले के साथ-साथ बाकी की सारी चीजे प्रफुल्लित होगी। यह हालत सिर्फ विहार की ही नही है। हिंदुस्तान के सभी सूबो की यही हालत है।

साधना का अवसर

शेक्सपीयर ने लिखा था—There is a tide in the affairs of Man—'मनुष्य के जीवन मे एक उन्नत क्षण आता है।' यदि हम समय को पहचानेगे तो कृतकार्य होगे, नही तो गये-बीते होगे। हमारी साधना के लिए यह बहुत अच्छा मौका है। यदि आप सब योग देगे तो परमेश्वर की कृपा से हिंदुस्तान का उदय शीघ्र होगा, ऐसे सब लक्षण है।

विहार-राज्य-कताई-मण्डल-सम्मेलन
में भाषण।
चाडिल, ४ मार्च '१९५२

३

लोक-शक्ति की आराधना

मैंने अपने व्याख्यानो मे दो बाते बार-बार दुहराई है। एक यह, कि गरीब लोग जो समर्पण करते है, वह यज्ञ है और उससे वातावरण की शुद्धि होती है। इस काम की क्रातिकारी शक्ति उसमे से पैदा होती है। बहुत-से लोग इस बात को समझते नही है। कम्यूनिस्ट भाई पूछते है कि आप गरीबो से दान क्यो ले लेते है ? वे कहते है कि "आप कम-से-कम गरीबो को तो मत लूटो !" मै कहता हू कि 'आप जिस तरह से सोचते है, वह वैज्ञानिक ढग नही है। यह व्याकुल बुद्धि है। अगर आप वैज्ञानिक ढग से सोचेंगे तो ध्यान मे आयेगा कि गरीबो के यज्ञ मे, उनके समर्पण मे ही इस कार्य की मुख्य शक्ति है। लेकिन अहिंसा की रीति से आप यह काम करने की बात सोचेगे तब यह चीज आपके ध्यान मे आयेगी, नही तो नही आयेगी।"

दूसरी चीज है दान। दान का अर्थ है, अपने पास जो है उसका सविभाजन। इस प्रकार दान के देनेवाले का हृदय-परिवर्तन होता है। इसके लिए इन दोनो के अलावा तप की जरूरत होती है। तप करने की जिम्मेदारी कार्यकर्त्ताओ पर है। आप सारे जो यहा आये है, वे तपस्वी है और आपने तप का व्रत लिया है। यज्ञ, दान और तप के अलावा एक चौथी वस्तु भी है, जो मैंने खास अपने लिए रख छोडी है। मेरे पास मेरी मालकियत की कोई वस्तु नही है। इसलिए मेरे पास न तो यज्ञ की शक्ति है, न दान की। तप थोडा बहुत कर लेता हू, लेकिन अपनी मर्यादा में, क्योकि शरीर कमजोर हो गया है। इसलिए मेरे पास सिर्फ जप ही रह जाता है। दो साल से मैंने लगातार जप चलाया है। सागर मे दो साल पहले गाधी-जयती के रोज, जब कि हमको सिर्फ बीस हजार एकड भूमि मिली थी,

उसी समय पाच करोड की माग मैंने देश के सामने रखी। कहा वीस हजार और कहा पाच करोड! पर मेरी ऐसी श्रद्धा थी कि सत्यवस्तु के जप से जो कार्य-शक्ति पैदा होती है, उसका नाप हम नही कर सकते। इसलिए पाच करोड की भाषा का आरभ मैंने जप के तौर पर कर दिया।

उत्तर प्रदेश मे जब मैंने प्रवेश किया तो वही भाषा मेरी चली। उसी माग को बराबर दुहराता रहा हू। परतु जब उत्तर प्रदेश के लोग सकल्प करने लगे और दस लाख की बात निकली तो मैंने कहा, "हमारे लिए दस लाख कम है। हमारी माग तो एक करोड एकड की है। सकल्प एक करोड का करना होगा। लेकिन अभी तो पाच लाख का ही करो।" एक तरफ से हम पाच लाख का सकल्प करे और दूसरी तरफ से एक करोड की माग मन मे रखें, ये दोनो बाते परस्पर-विरोधी नही है। हमारा रास्ता एक यश मे से दूसरे यश मे प्रवेश करने का होना चाहिए। अपयश में से यश की ओर जाने की बजाय छोटे यश में से बडे यश मे जाना, यह मार्ग विशेष श्रेयस्कर है।

उत्तर प्रदेश का पराक्रम

प्रस्ताव और सकल्प मे फर्क है। हम प्रस्ताव करते है। प्रस्ताव हो जाता है। उसमे हम अपनी इच्छा प्रकट करते है। लेकिन सकल्प में मनुष्य कृतनिश्चय होता है। तो उत्तर प्रदेश में हमने पाच लाख का सकल्प किया। हमने उम्मीद यह रखी थी कि इस सम्मेलन से पहले पाच लाख पूरे हो जायगे और आज मुझे यह कहने मे खुशी होती है कि पौने पाच लाख पूरे हो गये है। पच्चीस हजार की कमी रह गई है। पर उसे वे पूरा करके रहेगे। जब मैंने उत्तर प्रदेश छोडा था तब तीन लाख दस हजार हो गये थे। अब छ महीने में डेढ लाख से भी ज्यादा जमीन ये लोग वहा हासिल कर सके। इसका अर्थ यह है कि वहा जो बद्धप्रतिज्ञ लोग थे, वे अपनी प्रतिज्ञा को नही भूले है। वे अपना काम करते रहे—बावजूद इसके कि कार्यकर्त्ताओं की सख्या बहुत कम थी प्रात के विस्तार और जनसख्या के मुकाबले में। जनसख्या की दृष्टि मे वह एक देश होना है, प्रात काहे का? लेकिन उन्होने

बहुत जोरो से काम किया और बहुत तकलीफ उठाई। दस-बारह महीनो का मेरा उनका परिचय है। उनमे अधिक लगन वाले कार्यकर्त्ता पाने की अपेक्षा हम नही रख सकते। यह खुशी की बात है कि उन्होने अपना सकल्प करीब-करीब पूरा कर लिया है।

महान् शब्द जब सहज मुख मे निकलते है, तो जीवन भी महान् हो जाता है। पर महान् शब्द जबर्दस्ती मुह मे न निकले। यश देने-दिलाने वाला भगवान् पडा है। उसकी फिक्र करना हमारा काम नही है।

तप : लोक-शक्ति का स्रोत

यहा बिहार मे जब हमने कदम रखा, तो सारा जमीन का मसला ही हल करने की भाषा शुरू कर दी। गया मे बुद्ध भगवान् के नाम से सकल्प किया और लोगो ने उसे बुद्ध भगवान् के नाम से उठा लिया। गया जिले का मसला हल करने के लिए तीन लाख एकड जमीन चाहिए। उसकी पहली किस्त के तौर पर मैने एक लाख के कोटे की बात कही। उसी बात को मै दुहराता गया। और उसे भी लोगो ने उत्साह के साथ उठा लिया। मै तो आखिर आपका प्रतिनिधि हू। आपके मन की बात मै बोलता हू। मै जो बोलता हू, उसकी सिद्धि के लिए तप आपको करना पडेगा। अगर आप यह सोचे कि मेरे ही जप-तप से काम होगा, तो वह बात गलत है। और यदि हो भी गया तो भी वह निकम्मा होगा, क्योकि उसमे से लोक-शक्ति प्रकट नही होगी। और उसका होना एक चमत्कार माना जायगा। पर भगवान् की कृपा से वह चमत्कार होने वाला नही है। तो मेरा जप मेरे पास रहने दीजिए और तप में आप लग जाइये—काया-वाचा-मन से। मै भगवान् से प्रार्थना करता हू कि वह आपको तप की शक्ति दे।

नाता पार्टी का नही, व्यक्ति का

काग्रेस वालो ने इस काम मे इतनी मदद दी और प्रजा-समाजवादियो ने इतनी मदद दी, इस तरह अनुभवो का वर्गीकरण और विश्लेषण करना

गलत है। हमे तो मानव-स्वभाव को देखना चाहिए, उसकी गहराई में जाना चाहिए। अगर हम गहराई मे देखे तो मालूम होगा कि कांग्रेस वाले, प्रजा-समाजवादी, रचनात्मक सघो के कार्यकर्त्ता इत्यादि सबके बारे में करीब-करीब समान ही अनुभव आये है। जहा तक इस तरह के काम का ताल्लुक है, वर्गीकरण निकम्मा है। कुछ लोग इसे समझे है और कुछ नही समझे है। कुछ समझने पर भी मोहवश त्याग नही कर पाते है। हमे अपने मन में से वर्गीकरण की बात निकाल देनी चाहिए। यही विचार मन मे रखना चाहिए कि जो काम करता है, वह व्यक्ति के नाते काम करता है। फिर चाहे वह किसी भी पार्टी का हो। पार्टी काम करती है, यह मत कहो, बल्कि व्यक्ति काम करता है, ऐसा कहो। मै सब लोगो को व्यक्ति के नाते देखता हू।

सर्वोदय-समाज की खूबी यह है कि उसमे सहज स्फूर्ति का महत्व है। हमारे पास ऐसा क्या अधिकार है ? कहने का मतलब यह है कि हममें से हरएक अपने लिए सोचे। हम जितना समय इस काम को दे सके, उतने में अपनी पूरी ताकत लगावे। काम मे मुश्किलें बहुत है, लेकिन अपनी पूरी ताकत लगाने के बाद अपनी मर्यादा समझकर सतोष मानना चाहिए।

हमारा स्वधर्म

कभी हम अपने घर-गृहस्थी की फिक्र मे रहते है और ज्यादा समय नही निकाल सकते। तो जितना समय निकाल सकते है, उतनी ही अपनी मर्यादा समझकर समाधान मान लेना चाहिए। घर के काम के अलावा और कोई सार्वजनिक काम हमे करने पडते है और उनके कारण हम अन्य काम नही कर सकते तो हमे पुराने काम के साथ नये काम का वजन करके तौलना चाहिए। लेकिन नये काम का तौल अधिक होता हो तो पुराने काम को छोड देना चाहिए, ऐसी बात नही है। धर्म के विषय मे, जो धर्म श्रेष्ठ होता है, उसे लेना और कनिष्ठ देखकर छोडना, ऐसा नही होता। बल्कि सोचना यह होता है कि जो काम हमारे हाथ मे है, वह चाहे छोटा हो, चाहे बडा, हमारे लिए स्वधर्म क्या है ? अगर हम इसी नतीजे पर पहुचे कि जो काम हम कर रहे

हैं, वही हमारा स्वधर्म है, तो हमे उसी काम को करते रहना चाहिए। जिसका स्वधर्म दूसरा है, वह हमारे इस काम मे योग नही दे सकता। इसका उसे दु ख नही होना चाहिए। वह हमारे काम के साथ सहानुभूति रखता है, इसी को उसे अपनी मर्यादा माननी चाहिए। लेकिन अगर आत्म-परीक्षण से यह निश्चय हो कि हमारी बुद्धि इस नये काम को ही बुनियादी काम मानती है और फिर भी दूसरे कामो का बोझ हमारे सिर पर हो तो उस बोझ को हमे विवेकपूर्वक हटाना चाहिए और इस काम मे कूद पडना चाहिए। फिर यह नही सोचना चाहिए कि जो काम हमने हाथ मे लिया है, उसका क्या होगा ? जिस हालत मे मन मे यह निश्चय हो जाता है कि यही काम बुनियादी है तो वह उस वक्त का युगधर्म बन जाता है। युगधर्म नैमित्तिक होता है। वह कोई चालीस-पचास साल नही चलता। पर जितने समय के लिए वह होता है तब नित्यधर्म उसके सामने फीके पड जाते है। उसी काम का वचन सबसे अधिक होता है। हम रोज प्रार्थना करते है। यह नित्यधर्म है। लेकिन उसी वक्त कही आग लग जाय तो हमे प्रार्थना छोडकर आग बुझाने जाना पडेगा, क्योकि नैमित्तिक धर्म बलवान् होता है। जिस नैमित्तिक धर्म के विषय मे हम नि सशय हो गये हो, उसके लिए अगर नित्यधर्म छोडना भी पडे तो कुछ समय के लिए उसे छोडना चाहिए।

आवाहन

मैंने इसी प्रेरणा मे इस काम को हाथ मे लिया है। १९१६ मे जब मै बापू के पास पहुचा था तबसे बापू के प्रयाण तक मै रचनात्मक कार्य ही करता रहा। मैंने अपने यौवन का मुख्य अग रचनात्मक काम में लगाया। जो शख्स अपने यौवन मे रचनात्मक कार्य करता आया और जिसने अपनी सारी शक्ति रचनात्मक कामो मे ही लगाई, वह वृद्धावस्था में दूसरा काम नही उठाता। पर मैंने इस काम को ईश्वर का इशारा समझकर उठाया है। मेरे मन का यह निश्चय हो गया है कि इसको करने मे सब कुछ सधेगा और

इसको न करने से सब कुछ डूबेगा। इस तरह अन्वय-व्यतिरेक मे देखकर मै इस दृढ निश्चय पर पहुचा हू। इससे मुझे अन्त समाधान मिलता है।

आप अपने लिए यह सोचे कि आप किस भूमिका पर है। मेरा जो निर्णय अपने बारे में हुआ, वह अगर आपका अपने बारे मे है तो आप इस काम को उठाइये। सर्वोदय-समाज मे जिनका नाम नही है, ऐसे जो हजारो लोग सर्वोदय के प्रेमी और उससे सहानुभूति रखने वाले है, उन सबसे मै यह विश्लेषण करने के लिए कहूगा। उनका भी निर्णय अगर मेरे जैसा हो जाय तब तो मै आप सबसे कहूगा कि आप अपनी जीवन-स्थिति का विचार न करते हुए सब कुछ छोडकर इसमे कूद पडे। फिर देखिए, यह काम सफल ही होगा।

युगधर्म

यह सीधे हिसाब की बात है। इसका आप गणित करके देखिये। आजकल की लडाई मे गणित का हिसाब चलता है। पिछली लडाई मे जर्मनी ने इसी तरह का गणित किया। जब उन्होने देखा कि गणित के हिसाब मे वे हारनेवाले है तो शरण मे गये, क्योकि वह हिसाब की बात थी। देखा कि अग्रेजो और अमेरिकनो के मुकाबले मे उनका शस्त्रास्त्र-बल कम पडता था। वैसी ही हिसाब की बात यहा भी है। मुझे दामोदरदास सुनाते थे कि गया में अगर हम उन्हे सैतीस कार्यकर्त्ता देते है तो वहा का कोटा दस महीने मे पूरा होगा। और तीन सौ सत्तर कार्यकर्त्ता देते है तो एक महीने में काम पूरा होगा। काम तो होगा ही, सिर्फ लोगो के पास पहुचने वालो की तादाद का हिसाब है। इसलिए आप सबसे मेरा यह कहना है कि इस काम को सिर्फ यह एक अच्छा काम है, इतना ही समझकर मत उठाइये, बल्कि यह युगधर्म है, यह एक ऐसा काम है कि इसके करने से सब सधेगा और न करने से सब बिगडेगा, ऐसा अनन्य और अव्यभिचारी भाव आपके मन मे पैदा हो जाय, तो फिर हरएक के लिए अपनी-अपनी शक्ति लगाने का ही सवाल रह जाता है।

संपत्ति-दान-यज्ञ का महत्व

अभी हमको भूमि-दान-यज्ञ ही पूरा करना है। उसे पूरा करने पर सपत्ति-दान-यज्ञ को उठाना है। लेकिन सपत्ति-दान-यज्ञ के वगैर भूदान का साफल्य नही होगा। भूमि-दान-यज्ञ का सकल्प पूर्ण करना एक वात है और उसे सफल करना दूसरी वात है। जिनको जमीने मिलेंगी, वे जव सर्वोदय-वृत्ति के वनेगे और हमारे कार्यकर्त्ता वन जायगे, तव भूमि-दान-यज्ञ मफल होगा। भूमि-दान के लिए एक इशारा ईश्वर की तरफ से मिला, इसलिए उस काम को उठा लिया। मै पहले से ही जानता था कि सपत्ति-दान के विना भूमि-दान सफल नही होगा, परतु मैने सोचा कि शुरू से ही दो वाते उठाना ठीक नही है। और दो वाते उठाने का इशारा भी मुझे नही मिला था। अगर इशारे के वगैर मै कोई काम उठाऊ तो वह अहकार होगा। उससे कुछ वनेगा भी नही। और मेरी जो ताकत है, वह भी टूट पडेगी। मुझे उस वक्त सिर्फ भूदान का ही इशारा मिला था।

परतु विहार मे कदम रखने के वाद जब जमीन का मसला हल करने की वात आई, तव मुझे लगा कि सपत्ति-दान-यज्ञ की भी जरूरत होगी। सपत्ति-दान के रूप मे कोई एक सामान्य निधि इकट्ठी करने की कल्पना नही थी। जो इसको अपने नित्य जीवन का विचार समझकर सपत्ति-दान करेंगे, उन्ही की मपत्ति का उपयोग करना हम चाहते है। यह कोई उत्साह में आकर करने की वात नही है, वल्कि सोच-विचारकर करने की वात है। फिलहाल व्यक्तिगत रूप से ही यह काम करने की वात सोची है। जो इमे नित्यधर्म के रूप मे मानेगा उमी का दान टिकेगा। उसके लिए वह महज कर्म होना चाहिए। उमका वोझ नही मालूम होना चाहिए। हमारे शरीर का वजन अगर ठीक प्रमाण मे हो तो हमे उसका वोझ नही मालूम होता। उसी तरह मपत्ति-दान-यज्ञ में महज त्याग होना चाहिए। घर में लडका पैदा होता है तो वह खाता-पीता है। लेकिन उसका वोझ नही मालूम होता। गृहस्थ के जीवन का वह सर्वोत्तम अग माना जाता है। सवको

आनद होता है। उसी तरह सपत्ति-दान-यज्ञ मे दान देनेवाले को आनद होना चाहिए। इसलिए सपत्ति-दान-यज्ञ तो व्यक्तिगत तौर पर करने का ही काम है, कम-से-कम इस साल तक। अगले साल सोचेगे। इस साल तो भूमि-दान का ही काम पूरा करना है। पच्चीस लाख का सकल्प कोई भारी नही है, परतु हमे एकाग्र वन जाना चाहिए। अगर हम एकाग्र होकर काम नही करेगे, तो नही वनेगा। वह ऐसा देवता नही है, जो एकाग्र उपासना के बिना प्रसन्न हो।

दया के मूल को काटनेवाली दयालुता

जव मै गोरखपुर गया, तो वहा अकाल पडा था। मुझसे कहा गया कि जरा आप देखने तो चलिए। मैने कहा, "मै देखकर क्या करू?" तो उन्होने मुझसे कहा, "उसके निवारण के लिए कुछ प्रयत्न कीजिए।" तव मै एक सख्त शब्द वोल गया कि 'अकाल तो दूसरे लोग पैदा करे और उसका निवारण मै करू, यह धधा मुझे नही करना है।' मेरे शब्द बहुत सख्त थे, लेकिन वह सिर्फ गोरखपुर के लिए लागू थे। कहने का मतलब यह है कि इन दो सालो मे कई प्रसग ऐसे आये, जव दूसरे कामो के प्रति आकर्षण मेरे सामने आया। लेकिन मुझे एक क्षण भर के लिए भी ऐसा नही लगा कि इस काम को छोडकर दूसरा कोई काम करू।

मैने यह एक दृष्टान्त दिया। मै आपसे कहना चाहता हू कि इस वक्त कोई दयालु काम करने जाओगे, तो दया के मूल को ही काटोगे। हमे यह सोचना है कि हमारी दृष्टि क्या होनी चाहिए। हमारे सामने कई तरह के कार्य-मोह आते है, नये कामो का और पुराने कामो का भी मोह होता है। लेकिन अगर हमने इस काम को युगधर्म और स्वधर्म माना है तो मेरे लिए वही सर्वोत्तम काम है, ऐसा समझकर उसे करना चाहिए। दूसरे कामो का गुरु-लाघव नही सोचना चाहिए। कौन-सा धर्म वडा और कौन-सा छोटा, यह मत सोचो। मै जो कुर्ता पहनता हू, वह इसलिए नही कि वह सबसे वडा है, वल्कि इसलिए कि वह मेरे लायक है। वह मेरे नाप का है। और मै उसके

नाप का हू। स्वधर्म श्रेष्ठ है या कनिष्ठ है, यह विचार गलत है। वह मेरे नाप का है, या नही, यही देखना चाहिए। इसी अर्थ मे स्वधर्म मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ हो जाता है, इसलिए नही कि वह दूसरो के धर्म से बडा है।

नित्य नई तालीम

कल आशादेवी (आर्यनायकम्) हमसे कहती थी कि "अगर हम लोग इस कार्य के लिए अपनी तालीम स्थगित करके सब विद्यार्थी और शिक्षक इस काम मे लग जाय तो क्या आप पसद करेगे ?" मैने कहा, "जी हा, पसद करूगा।" मैने जो जवाब दिया, वह कोई सियासी विचार से 'रेकलेस (बेदरकार) होकर नही दिया। उस तरह सोचनेवालो और सलाह देनेवालो मे से मै नही हू। मै तो मूलत रचनात्मक काम करनेवाला हू। फिर भी मैने उन्हे वैसी सलाह दी। मेरा हेतु रचनात्मक ही है। एक साल के लिए लडके अपनी तालीम छोडकर इस काम में लग जाय तो उनकी तालीम का कोई नुकसान नही होगा, बल्कि आपको तो यह सोचना चाहिए कि एक साल के लिए ही क्या, जबतक यह मसला हल नही होता तबतक सारे लडके इसी मे लग जाय तो उनका कल्याण ही होगा। वे इससे न सिर्फ अच्छा काम करेगे, बल्कि अच्छी तालीम भी पायगे। वे नई तालीम को छोडते नही है, बल्कि नित्य नई तालीम पाते है। हमने तालीम छोडी है या और कोई काम छोडा है, ऐसा खटका मन में नही रखना चाहिए, अपने लडके अच्छे विद्वान बन रहे है, उन्हे व्यावहारिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक अच्छी तालीम मिल रही है, ऐसी प्रेरणा से अगर बडे लडके और उनके शिक्षक इस काम मे लग जाय तो उनका बहुत बडा लाभ होगा। फिर हमने कोई काम छोडा है, ऐसा आभास हमको नही होगा, बल्कि वह अधिक उत्तम प्रकार से सपन्न हुआ है, ऐसी प्रतीति हमे होगी। इसलिए आप सबको एकाग्र होकर इसी काम मे लग जाना चाहिए। एकाग्रता की महिमा अपार है। मामूली काम के लिए भी एकाग्रता की जरूरत होती है। फिर महान् कार्य तो उसके बगैर हो ही नही सकते।

नये कार्यकर्त्ताओं की टकसाल

इधर तो हमारे सारे कार्यकर्त्ता क्राति के सिवा दूसरी भाषा ही नही बोलते । तो क्राति क्या फुरसत से होती है ? क्राति तो ज्ञान और जीवन लगाने से होती है । हमे आज क्राति का एक रास्ता मिल गया है । ईश्वर का इशारा प्रकट हुआ है । एक युगधर्म हमे प्राप्त हुआ है । इतना होने पर भी हम काम न करे तो हममे वस्तु का तारतम्य नही रहा, तर-तम भाव हम भूल गये, ऐसा कहना होगा । कुछ लोग कहते है कि अभी तक नये कार्यकर्त्ता नही आ रहे है और अक्सर पुराने कार्यकर्त्ताओ से काम लेना पडता है । परतु मेरा मानना है कि हमे बहुत नये कार्यकर्ता मिलनेवाले है । और जो कार्यकर्त्ता इस काम मे पडेगे, वे सब तरह से कसे जायगे और परिशुद्ध होगे । उनकी हरएक बात मे उत्तम कसौटी होगी । उनके विचार साफ होगे । उन्हे गाव-गाव जाना पडेगा, लोगो को समझाना पडेगा । लोग उनकी टीका करेगे । तो उससे उन्हें आचरण-शुद्धि का मौका मिलेगा । जो कार्यकर्त्ता इस काम मे दो-चार, छ महीने टिक जायगे, वे दूसरे कामो में स्थिर होने योग्य बनेगे । वे उत्तम शिक्षक बनेंगे, उनका आचरण सुधरेगा ।

भूदान-यज्ञ-समितियों के सयोजको
और सदस्यों की बैठक में भाषण ।
चाडिल, ५ मार्च, १९५३

४

संयोजन का आधार

अभी हम लोग सोच रहे हैं कि एक जगह सामूहिक योजना के अतर्गत अपनी दृष्टि से प्रयोग करें और उसमे जो भी मदद सरकार से, पैसे या सत्ता की ले सकते हैं, ले। जो लोग यह सुझाव दे रहे हैं, उनके दिल की सच्चाई के वारे मे कोई भी शका नही है, पर हमे इस प्रश्न को वुनियादी सिद्धान्त की दृष्टि मे देखना चाहिए।

अगर सरकार सारे देश के लिए यह तय करती है कि ग्रामोद्योग के खिलाफ जो चीजे हैं, उनके ग्राम मे आने पर पावदी लगाई जाय तो वह अच्छी वात होगी। लेकिन अगर सरकार यह नही करती है तो हमारी विकास-योजना के अतर्गत हम जो क्षेत्र चुनेंगे, उतने के लिए वह वैसा करेगी, ऐसा मानना भी गलत होगा और मागना भी गलत होगा।

सत्याग्रह : आत्मशुद्धि का मार्ग

हम जनता की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नही करना चाहते। कहने का मतलव यह है कि हम यह सत्ता चाहते हैं कि जिस देहात के लोग यह माग करेंगे कि हम वाहर का माल नही मगायगे, तो उन्हें वैसा हक होना चाहिए। अगर मरकार यह माग कवूल करती है तो अहिंसा के लिए यह अनुकूल है। मरकार अगर नही कवूल करती तो हम जनता के पास जाकर कहेंगे कि आज का स्वराज्य असली स्वराज्य नही है। आप इम तरह माग करें और उमे अमल मे लाने के लिए तैयार हो जाय, वावजूद इसके कि सरकार इस चीज के खिलाफ है। आप यदि माग करना चाहते हो, तो सारे देश के लिए कीजिए। एक क्षेत्र के लिए करना गलत है, नही तो सरकार और जनता

के बीच हम ऐसे खडे होते है कि दो चक्कियो मे हम पिस जायगे। हमें सरकार को चुनौती देनी होगी कि या तो आप यह करे, नही तो हम करेंगे। फिर हम सत्याग्रह से करेगे। सत्याग्रही ढग से करने मे हम कोई धमकी नही दे रहे है। सत्याग्रह तो आत्मशुद्धि का मार्ग है।

सत्य पहचानें

आपने जो दो शर्तें रखी है, वे नाकाफी है। सीलिंग की बात ही खतरनाक है। हमें वह बात नही करनी चाहिए। आज वह बात सर्वमान्य हो गई है। मैने कहा है कि मै सीलिंग नही, 'रूफिंग' चाहता हू। मै चाहता हू कि यह सिद्धात कबूल करो कि हर परिवार को पाच एकड भूमि मिले और फिर जो बचती है, उसका कुछ भी करो। कुछ लोग कहते है कि आपके कहने के मुताबिक 'रूफिंग' किया जाय तो वह इतना नीचा होगा कि जिसके कारण झुककर अदर जाना पडेगा। मैने कहा, कोई हर्ज नही। हमे दिल्ली की नही, ग्राम की "सीलिंग" चाहिए। तीस एकड का सीलिंग होगा, तो कोई भी जमीन बेजमीन को नही मिलेगी। जमीन वाले लोग आपस मे ही अपने परिवार के लोगो मे जमीन बाट लेगे। तेलगाना मे भी सीलिंग की बात चली, तो लोगो ने यही किया। वहा तो दो सौ एकड का सीलिंग करने की बात थी। छोटा सीलिंग रखो, जैसे तीस एकड का तो बहुत मुआवजा देना पडता है। बिना मुआवजे के आज जमीन छीनी नही जा सकती। और बडा सीलिंग रखो तो कोई काम का नही। इसलिए हम तो चाहते है कि गावो की सारी जमीन गावो की ही हो जाय। अधिक-से-अधिक तिगुनी जमीन रखने की बात चली थी। लेकिन अगर सबको पूरा खाना नही मिला है। तो किसी को तीन गुना खाने का हक क्यो दे? कोई भी एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से तीन गुना काश्त नही कर सकता, तो फिर तीन गुना जमीन रखने का हकदार वह कैसे बन सकता है? इसीलिए इस सारी चर्चा मे कोई सार मै नही पाता हू। हमे बुनियादी बातो पर सोचना चाहिए। हम चाहते है कि गाव की जमीन गाव की हो। क्या सरकार कानून से यह

कर सकती है ? उसके बगैर हमारा काम नही होगा, ऐसी माग आपने अपने प्रस्ताव मे नही की है, न आप कर सकते है। सीलिंग बनाने से क्या होगा ? आज जो बडे लूटनेवाले है, उनके बदले मे छोटे लूटने वाले पैदा होगे। मतलब यह है कि लूटनेवालो की जमात मे वृद्धि होगी।

महान कार्य

हमने पाच करोड की बात की है। लेकिन अभी इस साल तो हमे पच्चीस लाख एकड करने है। पर जमीन बाटने मे ही काम नही होता है। हमे हर गाव मे एक सर्वोदय-परिवार बसाना है। यह सारा इतना विशाल रचनात्मक कार्य हो रहा है कि इसके सामने सारे कम्यूनिटी प्रोजेक्ट्स फीके पडते है। हमारी हालत ऐसी होनी चाहिए कि चाहे जितने जागतिक युद्ध हो, हमारे काम तो चलते ही रहेगे, ऐसी शक्ति हममे पैदा होनी चाहिए। वह जन-शक्ति है। हमे पीलीभीत मे साढे सात हजार एकड जमीन मिली है। 'सर्व-सेवा-सघ' क्या वहा काम न करते हुए दूसरी जगह करेगा ? जैसे हमारे दस-पाच दूसरे काम चलते है, उसके साथ-साथ यह भी चलेगा, ऐसी बात नही है। या तो भूदान-कार्य ही चलेगा, या कुछ भी नही चलेगा। इसलिए हमारे सब सघो को इस काम मे कूद पडना चाहिए। हमे सरकार का पैसा नही चाहिए। पैसे का कोई सवाल नही है। और सत्ता, याने जन-शक्ति तो हमारे पास पडी है। लेकिन अगर सरकार, जहा जनता की सरकार है वहा, दड-शक्ति से जमीन का बटवारा करेगी, तो वह अहिंसा का काम होगा, हिंसा का नही।

खादी-बोर्ड बनाम मूल विचार

यह जो सरकार का खादी-बोर्ड वगैरा बना है, उसमें जमीन-आसमान का अतर है। खादी मे आज जो नुकसान हो रहा है, उसे बचाने का वह काम है। आज हमारी खादी बिकती नही है। उसे सरकार कुछ बढावा देने का सोच रही है। इसका मतलब यह है कि जिस काम के प्रति हमारे मन मे

अरुचि है, उसको बीस गुना चलाने की वह योजना है। हमारा खादी का जो मूल विचार है। उससे उसका कोई ताल्लुक नही है।

इस समय पडित नेहरू आये थे। बडे प्रेम से बोले। मैने सब सुन लिया। मैने उनसे कहा कि 'तीन सौ गाव की एक योजना होनी चाहिए, यह किसने ने बताया? एक गाव की ही योजना क्यो नही होनी चाहिए। हा, मै मानता हू कि चर्मालय वगैरह कुछ ऐसे काम है, जिनके लिए दस-पाच गावो का, और कुछ कामो के लिए दो-तीन सौ गावो का सहयोग चाहिए।" पडितजी ने मेरे विचारो के साथ, जितना मानसिक मेल वे बिठा सकते थे, बिठाने की कोशिश की। वे उत्तम पुरुष है।

सरकार की अपेक्षा

पिछली बार जब मै दिल्ली गया था, जैसा कि मेरा रिवाज नही है, याने नाहक परोपकार के लिए गया था। मैने शरणार्थियो के काम मे छ महीने बिताये। अपनी जिन्दगी के छ माह निष्काम भाव से दे दिये, ऐसा मैने सोचा। पहले पन्द्रह-बीस दिनो मे ही मैने देख लिया कि हमारे सहयोग का बहुत परिणाम नही होगा। उस काम का कोई खास उपयोग भी नही हुआ। हा, पर बडी बात हुई कि मुझे मेव लोगो मे काम करने का मौका मिला। उसका बडा लाभ यह हुआ कि सारे मुसलमानो की सहानुभूति मुझे मिली। लेकिन उस समय शरणार्थियो मे कुछ काम नही हो सका। हम पुराने अनुभवो से अपने को बाधना नही चाहते। परन्तु सरकार के साथ सहयोग करके अधिक शक्ति पैदा होती है, यह एक आभास है। बात तो यह है कि सरकार ही हमारी शक्ति की इच्छुक है, इसलिए वह चाहती है कि हम ही उसको शक्ति दे। हमे अपने ही पुरुषार्थो से काम करना चाहिए। सरकार से तो कौडी की भी मदद नही लेनी चाहिए। वह जनता की सरकार है। उसके पास जो पैसा है, वह जनता का है। नियोजन मे हमे यही सूझना चाहिए कि गाववालो को यह निर्णय करने का हक हो कि गाव मे किस माल को आने दे और किसको नही। मैने सुझाया है कि जिस तरह यह उसूल माना जाता

है कि पढना-लिखना जाननेवाला ही शिक्षित है और सरकार का यह कर्तव्य है कि हरेक नागरिक की तालीम का प्रबन्ध हो, उसी तरह हिन्दुस्तान के हर नागरिक को उत्तम सूत कातना आना चाहिए। जैसे तालीम के बारे मे सरकार का और नागरिको का कर्तव्य है, वैसे ही कातने के बारे मे भी है। जब मैंने पण्डितजी को यह बतलाया तो उन्होने कहा कि सब कातेगे तो उसके उपयोग की ओर भी ध्यान देना होगा। मैंने कहा, आपकी पढाई मे भी यही बात आती है। अत अगर देश कातना नही जानता है, तो देश खतरे मे है।

एक भाई को कुछ भास हुआ-सा दीखता है कि मुझमे कुछ परिवर्तन हुआ है। वास्तव मे कोई परिवर्तन नही हुआ है। पाबदी की जो मदद मैंने सरकार से चाही है, वह अखिल भारत के लिए चाही है। तीन सौ गावो मे पाबदी लगाने की माग करना ही कृत्रिम बात है। उससे हम नाहक हिंसा-शक्ति का उपयोग करते है। आज तो हालत ऐसी है कि जहा घानी चलती है, वहा मिले खोली जाती है। मिल खोलना नागरिक स्वातन्त्र्य माना जाता है। इस तरह मार्ग मे जो रुकावटे आती है, उन्हे नही हटाते है, और फिर कहते है कि सबको काम मिलना चाहिए। जिस जरिये से सबको काम मिलता है, उसीको खत्म होने देते है। आप लोग छोटे क्षेत्र के लिए पाबदी लगाने की माग क्यो करते है ? सारे हिंदुस्तान के लिए क्यो नही करते ? आप तो चाहते है न कि सारे हिंदुस्तान का भला हो ?

हम ऐसी माग नही करते कि सरकार कुछ पाबदी लगाये। पर यह चाहते है कि जहा गाव के लोग वैसी माग करते है, वहा उनकी इच्छा के विरुद्ध माल नही आना चाहिए। हमारी यही माग है कि सरकार उसूल के तौर पर यह कबूल करे। अगर सारे हिंदुस्तान के लिए कबूल करना उसके लिए सभव नही है तो एक ही क्षेत्र मे लागू करना कानून के खिलाफ होगा।

एक बात ध्यान मे रखना चाहिए कि मैं कोई बात बताऊ और आप

उसे मान ले, यह मेरे सिद्धांत के खिलाफ है। मैं किसी का आदेश मानने के लिए तैयार नहीं हूँ और न मैं चाहता हूँ कि मेरा आदेश माने।

दो आक्षेप

जो कच्चा माल गाँव में पैदा होता है, उसके पक्के माल की अगर गाँव को जरूरत हो तो उसका पक्का माल वहीं पर बनना चाहिए, यह एक उसूल है। उसके विरुद्ध यह हो रहा है कि बाहर का माल गाँव में आता है, जिसे 'खुला बाजार' कहा जाता है और गाँव उसे रोक नहीं सकता। यह हालत है। और फिर गाँवों को कहें कि आप अपने पैर पर खड़े हो जाइये। यह कैसी बात है? इससे तो ग्राम-राज्य के सिद्धांत पर ही आघात होता है। बाहर की चीजें रोकने की शक्ति गाँव में होनी चाहिए। यह एक मामूली उसूल है। पर आज सरकार की एक कल्पना बन गई है। सरकार की बड़ी सत्ता मानी जाती है और गाँव की छोटी सत्ता, यानी झाड़ू लगाने का स्वातंत्र्य गाँव को है। पर जिस चीज की मिल खड़ी हो सकती है, उसकी मिल खड़ी करना एक बुनियादी हक माना जाता है। अगर सरकार अखिल भारतीय क्षेत्र में हमारा उसूल नहीं मानती, तो छोटे क्षेत्र में मानना उसके लिए कठिन है। अगर सरकार वैसी करेगी तो वह बात 'फेडरल कोर्ट' में जावेगी और वहाँ सरकार नहीं टिकेगी। पर अगर सरकार उसूल की बात मान्य करती है, तो उसके लिए वह आसान है। चाहे जिस गाँव की माँग हो, फिर वह आपके चुने हुए क्षेत्र के गाँव हों या उसके बाहर के, वह सरकार को माननी चाहिए। सारे देश के लिए दूसरी बात लागू होती हो और आपके क्षेत्र के लिए खास बात ही लागू हो, यह कैसे हो सकता है? तो मेरे दो आक्षेप हैं। एक, सीलिंग से हमारा कोई काम होने वाला नहीं। और दूसरा, बाहर के माल पर पाबंदी लगाने का गाँव को हक होना चाहिए। हमें तीन सौ ही गाँव को क्षेत्र नहीं मानना चाहिए। जहाँ भी हमारे कार्यकर्ता बैठेंगे, वहाँ वे काम करेंगे।

सर्व-सेवा संघ की बैठक में भाषण।
चांडिल, ६ मार्च १९५३

५

कड़ी कसौटी का वर्ष

पिछले साल सेवापुरी में पच्चीस लाख का संकल्प किया गया। तबतक कुल एक लाख एकड़ जमीन हाथ में आई थी। पहले तो एक साल में संकल्प पूरा करने की बात थी। मैंने ही एक के बजाय दो साल रखवाये। आज जो हवा पैदा हो गई है, उसको और अबतक जो काम हुआ है, उसे ध्यान में रखते हुए यदि हम अगले सम्मेलन तक पच्चीस लाख पूरे नहीं कर सके, तो यह कार्यक्रम हमने छोड़ दिया, ऐसा ही समझना होगा। समय दौड़ रहा है। वह हमारे लिए रुका नहीं रहेगा। १९५७ तक यह मसला हल हो जाना चाहिए। प्राप्ति और वितरण का झमेला है। उसमें हम पड़ जायं और प्राप्ति रुक जाय तो पच्चीस लाख की बात नहीं बनी, ऐसा न हो। हम यह कार्यक्रम आग्रह से करते होते, तो अहंकारी साबित होते। यह अहंकार का कार्यक्रम होता तो इसमें यश मिलने पर भी हम गिरते। अपयश मिलना, तब तो गिरते ही। लेकिन यह अहंकार का कार्यक्रम नहीं है। लोगों को इसकी आवश्यकता है, वे इसके लिए तैयार हैं।

पहला काम : प्राप्ति

गया जिले की मिसाल आपके सामने है। वहां मैंने एक लाख का जप शुरू कर दिया। यह संकल्प मेरा नहीं है। वह समय की आकांक्षा है। इसीलिए गया जिले में इतना काम हो सका है। हमारे लोगों का यह स्वभाव है, कार्यकर्ताओं का भी स्वभाव है कि वे पर्व और त्यौहार के दिन ही धर्माचरण करते हैं। एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी के दिन परमार्थ का आचरण किया, धर्म का काम किया—बस धर्म खतम। उसी प्रकार २६ जनवरी, २ अक्तूबर, गांधी-दिन—जैसे राष्ट्रीय पर्वों के अवसर पर लोग

राष्ट्रीय कार्य करते है। विनोबा आये, तो कुछ काम हो गया, बाद मे कुछ नही। इसीलिए मैने वहा दामोदर को रखा। फिर जयप्रकाश बाबू गये, श्रीबाबू और दूसरे मत्री भी गये। पैतालीस हजार जमीन तीन महीने मे गया जिले मे हो गई। यह कोई चमत्कार नही है। अधिक कार्यकर्त्ता होते तो एक लाख कब का खत्म हो गया होता। जनता कितनी तैयार है, यह जब मै देखता हू तो उसकी गति और हमारी मन्द गति देखकर अति आश्चर्य होता है। जमीन इकट्ठा करने के लिए कार्यकर्त्ताओ की कमी है। इसलिए पहले सबको प्राप्ति के काम मे लग जाना चाहिए। हमारा पहला काम प्राप्ति है।

फिर वितरण

वितरण की समस्या आसान नही है। वितरण मारक भी साबित हो सकता है। इसलिए वितरण का काम सब्र से करना पडेगा। वितरण-समिति जल्दी नही बन सकती। उसकी जिम्मेदारी बडी गभीर है। फलानी पार्टी का आदमी उसमे नही लिया गया, ऐसी शिकायत भी हो सकती है। उत्तर प्रदेश मे आर एस एस वालो ने यह सवाल उठाया था। उनका कहना था कि जमीन तो हम लायेंगे, लेकिन वितरण मे भी हमारा हाथ होना चाहिए। मैने कहा, "वितरण-समिति मे प्रतिनिधि तो किसी के नही होते है, लेकिन सज्जन लोग होते है।" उत्तर प्रदेश मे मजबूत, वजनदार समिति बनी है, क्योंकि वह समिति कार्य के काफी अनुभव के बाद बनी। हमे पहले ब्रह्मदेव का काम करना है, बाद मे विष्णु का। कुछ लोग काग्रेस वालो के खिलाफ शिकायत करते है। कहते है कि उनकी वजह से वितरण का काम ठीक नही होगा। मगर मैने वितरण का अधिकार उनको कहा दिया है? मै तो काग्रेस वालो से भी काम लेता हू और दूसरो से भी काम लेता हू। समुद्र हू। समुद्र के नाते सबको मिला लेता हू। गगा से कहता हू, तुम भी आओ, छोटी नदी से कहता हू, तुम भी आओ।

प्राप्ति का काम ठीक नही होगा तो वितरण-समिति भी अच्छी नही

बनेगी। वितरण-समिति मजबूत न बनी तो सारा काम बिगड जायगा।

मै वितरण मे भी सबसे काम लेने वाला हू। लेकिन वितरण की जल्दी क्या है ? जबतक वितरण न होगा, तबतक मालिक को ही काश्त करना है और उसीको लगान भी चुकाना है। कुछ लोगो ने ऐसा किया भी। मेहनत का खर्च बाद करके आमदनी हमको भेज दी। वितरण का काम हम विवेक के साथ समय पर करेगे।

कानून के लिए काम न रुके

सरकारी कानून की बात भी यहा की गई। कानून जब बनेगा तब बनेगा। लोगो से मै कहता हू कि तुम जमीन तो दे दो। दान देनेवाला अगर हमको जमीन दे देता है और लेनेवाला ले लेता है तो बगैर कानून के काम हो जाता है। कानून तो बनेगा ही। सरकार अगर अनुकूल कानून नही बनायेगी तो मै एक पत्रक निकाल कर मुक्त हो जाऊगा। काश्त की चिंता हम न करे। कानून के लिए काम नही रुकना चाहिए।

क्रांतिकारी कार्य

यह भी कहा जाता है कि हम कुछ गावो में अपनी कल्पना का आदर्श काम करके लोगो के सामने मिसाल पेश करे तो भूमि-दान प्राप्त करने मे मदद मिलेगी।

हमारा कार्यक्रम नमूने का या सुधार का कार्यक्रम नही है। यह क्रान्तिकारी कार्य है। इसमे सिर्फ दिग्दर्शन का हेतु नही है, समस्या को हल करने का हेतु है। थोडी जमीन, लाख-दो लाख एकड लेने का काम होता तो दूसरे ढग से सोचते। फसल कितनी होती है, देखते, नमूना पेश करते। लेकिन हमको तो पाच करोड एकड जमीन प्राप्त करनी है। पाच करोड एकड जमीन आप यो ही फेंक देगे तो भी वह ठीक जगह बैठेगी। पच्चीस लाख का हमारा पहला कदम है। उत्तरप्रदेश और बिहार में आप घर-घर नही जाते, इसलिए जमीन नही मिल रही है। बहते हुए चश्मे की तरह रात-दिन काम होना चाहिए। अगले साल अगर अपयश हुआ

तो हमको सार्वजनिक काम में से खतम होना होगा। पुराने लोगों ने कहा है, "अनारंभो हि कार्याणाम् प्रथम बुद्धि लक्षणम्, "—काम शुरू ही न करना नंबर एक की अक्लमंदी है। वह तो हमने नहीं दिखाई और काम शुरू कर दिया। बुद्धिमानों का दूसरा लक्षण है—"प्रारब्धस्य अन्तगमनम् द्वितीय बुद्धिलक्षणम्," जो काम शुरू किया हो, उसे पूरा करना। हम कम-से-कम यह नंबर दो की अक्ल बतायें।

स्वराज्य का मामूली-सा आन्दोलन था। गांधीजी कहते थे कि हम स्वराज्य तो एक दिन में ले सकते हैं। अगर सब एक दिन के लिए हड़ताल कर दें तो स्वराज्य हमारे हाथ में है। परंतु यह तो भावरूप (पाजिटिव) आर्थिक क्रांति का कार्यक्रम है। स्वराज्य के लिए हमने जितना त्याग किया, उसके मुकाबले में तो हमको इसमें बहुत कम करना पड़ रहा है। केवल जरा से सातत्य की जरूरत है। अगर यह सुधार का कार्यक्रम होता तो मैं रद्दी जमीन क्यों लेता? मैं तो पहाड़-पत्थर भी ले लेता हूँ। शहाबादी पत्थर मिले, तो वे भी ले लिये। उत्तर प्रदेश का कोटा करीब-करीब पूरा हो गया है। वहां का वितरण जून तक पूरा हो जाना चाहिए। लेकिन उत्तर प्रदेश यह न समझे कि हम कृतकार्य हो गये।

हमसे पूछते हैं, निकम्मी जमीन आप क्यों ले लेते हैं? हम कहते हैं, निकम्मी जमीन रखकर क्या करते हो? हमें दे दो। अभी हमको सुनाया गया कि राजस्थान में अच्छी जमीन ही नहीं है तो आपको क्या दें? सारा राजस्थान ही हमको समर्पण क्यों नहीं कर देते?

मैं आप से कहता हूँ कि यह धार्मिक व्रत नहीं, राजनैतिक व्रत है। ऐसा काम उठा लेना कोई हँसी-मजाक का काम नहीं है। समाज के इतने लोग हमारी बात को सुन चुके हैं। ऐसा वातावरण बन गया है। अगर हम अपना संकल्प पूरा नहीं करते हैं तो यह आप निश्चित समझ लीजिये कि सार्वजनिक काम से हम मुक्त हैं।

'सर्व-सेवा-संघ' की बैठक में भाषण।
चांडिल, ९ मार्च, १९५३

६

विचार-भेद हो, आचार-भेद नहीं

मैंने कहा है कि जनता के सामने जो कार्यक्रम रखा जाय, वह जहा तक हो सकता है, सर्वमान्य हो। जिन विषयो मे मतभेद हो, उनपर चितन जारी रहना चाहिए, विचार-विनिमय, चर्चा-बहस चलनी चाहिए। परन्तु प्रत्यक्ष कर्मयोग मे उतना ही अश आना चाहिए, जितने अश पर सबकी, यानी सब सज्जनो की एक राय हो। सब चिन्तनशील नेताओ की एकराय हो, यह विचार धर्म-परिवर्तन मे किस तरह मान्य हुआ है, उसका थोडा उल्लेख मैं कर चुका हू।

मिसाल के तौर पर मैं हिन्दू धर्म को लेता हू, क्योकि मुझे उसकी विशेष जानकारी है। हिन्दू धर्म मे असख्य विचार-भेद मौजूद है। उनपर चर्चाए चलती है। कुछ बाते तो ऐसी है, जिन पर शायद कभी भी निर्णय नही होगा। इसपर भी कुछ ही आचार धर्म-मान्य किये गए है, और उसीको धर्म कहते है। जैसे गो-सेवा, आहार-शुद्धि, अहिंसा इत्यादि का परिपालन, उपासना—चाहे इनके प्रकार मे भेद हो, पर ध्यान-युक्त उपासना का महत्त्व, उपवास आदि साधनो की मान्यता आदि कुछ वस्तुए ऐसी है कि अन्य विचारो मे मत-भेद होते हुए भी सबने उन्हे मान्य किया है। जब इस तरह होता है, तभी आचार की प्रतिष्ठा होती है। यानी स्थिर बुद्धि से निष्ठा और कर्मयोग पर मनुष्य पहुचता है, नही तो शाखाए तो अनन्त है, पर कर्मयोग में परिणत होती है उतनी ही, जितनी कि सर्वबुद्धि मे सर्व-मान्य हो।

बहुमति-अल्पमति का प्रश्न नही

रचनात्मक कार्यकर्त्ताओ मे और नेताओ मे प्रत्यक्ष कार्य के विषय मे

बुद्धि-भेद नही होना चाहिए। अब हम 'सर्व-सेवा-सघ' को प्रधान स्थान देने जा रहे है। यानी दूसरे सघ उसमे एक तरह से विलीन होने जा रहे है। तो इस बात का महत्त्व है कि जिन कार्यक्रमो पर सबकी एक राय हो, वही कार्य-क्रम प्रस्ताव रूप मे मान्य किया जाय और जिनमे मतभेद है, उनपर चिन्तन जारी रहे। बहुत दफा यह शका उठाई जाती है कि इसमे तो एकाध मनुष्य भी अडगा लगाये तो काम नही बनेगा। लेकिन यह अडगे की बात तो जहा बहु-सख्या अल्प-सख्या मानी जाती है, वही पर होती है। पर जहा पर हम यह उसूल मानते है कि सबकी एकराय होनी चाहिए, वहा उसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि अडगा लगाने की वृत्ति किसीमे नही होती। यह एक मानस-शास्त्रीय सिद्धान्त है।

हमारी बुनियाद सद्भाव पर

ईसा ने एक बहुत सुन्दर वाक्य मे समझाया है कि "Agree with thou adversary quickly"—तुमसे मतभेद रखनेवाले के साथ फौरन एकमत हो जाओ। यह जो 'फौरन' शब्द है, वह बहुत महत्त्व का है। यानी सामनेवाला जो सुझाव पेश करता है, या हम जो सुझाव पेश करते है, उसके मूल मे कुछ विचार होते है। विचार एक दृष्टि से एक रूप लेता है और दूसरी दृष्टि से दूसरा रूप लेता है। दृष्टि-भेद से उसमें फर्क पड़ता है। इसे पहचान कर जो समान अश दिखेगा, उसे सारूप्येण ग्रहण करने की शक्ति हममें होनी चाहिए। जितने भी हम सब विचार-विमर्श मे हिस्सा लेने वाले है और जिनके विचार का परिणाम प्रस्ताव पर होनेवाला है, उनको एक-दूसरे के लिए ऐसा सहज विश्वास चाहिए, जिसे सिद्ध करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। और जो भी विचार किया जा रहा है, वह सद्हेतुमूलक है, यह विश्वास मन मे न रहा और सामने वाले के बारे में शका रही तो हमारी बात नहीं बन सकती। अगर यह शका हमारे मन मे न रहे तो सद्हेतु की कल्पना करते हुए हम फौरन दूसरे के साथ एकरूप होने की कोशिश कर सकते है। वह दो कदम हमारी तरफ बढ सकता है,

और हम भी उसकी तरफ बढ सकते है, इस तरह हम एक-दूसरे की तरफ आ सकते है । बुनियादी सद्भाव पर हमारी श्रद्धा बिना किसी परीक्षण के, बिना किसी सबूत के होनी चाहिए। अगर वह हो तो हमारा सारा काम एकरस हो सकता है। इसमे निर्णय शीघ्र नही होगे, ऐसा एक आक्षेप उठाया जाता है । परतु कभी-कभी निर्णय शीघ्र न होना भी जरूरी हो जाता है। जहा उतनी तीव्र परिस्थिति नही होगी, वहा कर्म शीघ्र न होगे तो गुण ही है। इस दृष्टि से सोचते हुए इसमे एकमत से काम करने का निश्चय हम करते है, तो उसमे कुछ दोप नही है ।

अवयव का पोषण शरीर का भी पोषण

अब 'सर्व-सेवा-सघ' बना है तो कई समस्याए खडी होती है । सस्थाओ का क्या होगा, सस्थाओ के पास जो अलग-अलग पैसा है, उसका क्या होगा ? ये सवाल उठते है । लेकिन मुझे लगता है कि ये सब सवाल बिलकुल ही गौण है । विचार का सशोधन जो चलेगा, वह चलता ही रहेगा, पर बाकी कोई भेद नही रहेगा । हिदुस्तान मे हमारे जो भी केन्द्र बनेगे, वे सर्व-सेवा-सघ के केन्द्र होग और पैसा जो अलग-अलग नाम से इकट्ठा किया होगा, वह सब वहा डूब जायगा, जैसे नदी समुद्र मे विलीन होती है । जहा एक परिपूर्ण काम है, वहा सब काम उसमे आ जाते है । मै भोजन करता हू, तो यह नही देखता कि उसका कितना अश हृदय के पोषण में गया, कितना पाव के पोपण मे गया और कितना हाथ के पोषण में गया। ऐसा नही हो सकता कि जो कुछ मै खाता हू, उससे ही सारे शरीर को पोषण मिल जाता है। लेकिन अगर मैने ऐसा कुछ खाया है, जैसे आवला, जिससे कि आख को विशेप पोपण मिलता है, या स्नेह, जिससे स्नायुओ को खास पोपण मिलता है, तो भी कुल मिलाकर जो खाता हू, उसका सारे शरीर को पोपण मिलता ही है। इस तरह जो भी पैसा आया है, वह सबके लिए है । मानो खादी के लिए साठ लाख और तेल-घानी के लिए पचास करोड मिला है, किसी ने दान दिया है । तो क्या तेल-घानी के काम को खादी से

अधिक महत्त्व देना चाहिए ? यह नही हो सकता। हमारे मन मे किस काम को कितना महत्त्व देना है, इसका नाप होगा, और इसीसे हम काम करेंगे। इसमे ट्रस्ट का भग होगा, ऐसा डर—विचार—रखने की कोई जरूरत नही है। अगर हम अलग-अलग रहे तो ऐसी शका की जा सकती है, पर जहा एकरूप हो गये कि जैसे पूर्वजन्म के भेद लागू नही होते, ये भी नही लागू होगे। यह एक तारतम्य की बात है।

अलग-अलग होने पर भी एक

जिस काम के लिए हमे पैसा मिलता है, वह भी आज हम ठीक से खर्च कर रहे है, ऐसी बात नही है। हम पैसा बैक मे रखते है। तो बैक का पैसा दूसरे कामो मे ही खर्च होता है, जो कि हमारे विचार के विरोधी काम है। तो उससे बेहतर है कि वह पैसा हमारे ही काम मे खर्च हो। जिस प्रमाण मे खर्च करना चाहिए, उसी प्रमाण मे हम खर्च करेगे। मानो मुझे खादी के लिए दो लाख मिला है और तेल-घानी के लिए दो करोड, तो तेलघानी के लिए अधिक पैसा मिलने पर भी हम वह पैसा बिना उसे समझाये नही लेगे, क्योंकि यह कोष उस जमाने मे इकट्ठा हुआ, जब अलग-अलग फड इकट्ठा करते थे। लेकिन अलग-अलग इकट्ठा हुए हो, इसलिए हम आज भी अलग खर्च करे, यह ठीक नही, जब कि जमाना बदल गया है। जैसे पुराने मन्दिरो का हाल है। आज हम हरिजनो को उन मन्दिर मे जाने देते है, तो ट्रस्ट का भग नही होता। इसलिए आज बाकी सब विचार गौण समझने चाहिए और सबको 'सर्व-सेवा-संघ' मे दाखिल हो जाना चाहिए। परिस्थिति के अनुसार किसी जगह कुछ काम अधिक होगा, पर हम उसी प्रमाण मे हर चीज का विकास करेगे, जिस प्रमाण मे हम उसे उचित मानेगे। बाह केवल बाह या पैर ही मजबूत नही बनाना है। हम ऐसा एकागी विकास नही करना चाहते है। हम हर अग का नाप बिठायेगे और उसके अनुसार काम करेगे। किसी जगह एक काम अधिक भी हो सकता है, परन्तु काम हमारा सर्व-सेवा-संघ का और उसका नाम भी होगा। हर [illegible]

केन्द्र बने तो बहुत सहूलियत होगी ।

आचार मे बुद्धि-भेद निर्माण हुआ तो समाज का भला नही होगा, कर्म-योग नही चलेगा, प्रगति नही होगी । विचार-भेद चाहिए, विचार-विमर्श और चिन्तन चाहिए, विचार-शोधन भी होना चाहिए। इसलिए विचार-भेद जरूरी है । उसके बगैर विचार-शोधन, विचार-मथन नही होगा। इसलिए हम स्वतत्र रूप से सोचेगे। परन्तु जहा आचार का सवाल आयगा, वहा जिस पर एकराय होगी, उसीको धर्म मानेगे और उसीके अनुसार चलेगे ।

प्रार्थना-प्रवचन
चाडिल, १० मार्च ५३

७

सारे देश को आवाहन

विहार से इस यज्ञ मे कुल बत्तीस लाख एकड भूमि मुझे लेनी है। साधारण छठे हिस्से से यह कुछ कम है। मित्रो से सलाह करने पर उतना अदाज हुआ। छोटा नागपुर के पाच जिले और गया से हम चौदह लाख की आशा करते है और बाकी के ग्यारह जिलो मे अठारह लाख, क्योकि छोटा नागपुर मे जमीन कुछ अधिक है, जन-सख्या कुछ कम। और उधर के जिलो मे घनी बस्ती है। इसलिए माग कम-बेशी रखी है। इच्छा तो ऐसी है कि बारिश के पहले छोटा नागपुर का सारा हिस्सा घूम ले और तबतक उसका अधिक-से-अधिक हिस्सा प्राप्त हो।

लोगो को अब इसकी सभावना दीखती है। यह काम उन्हे अब अशक्य नही लगता है। यह बात आशाप्रद है। अब हम थोडा-थोडा ही घूमेगे। कोशिश तो हमारी यह रहेगी कि जिन लोगो के पास हम नही पहुच पाये है, उनसे सम्पर्क हो। इतने दिन हम यहा रहे, उसका नतीजा यह हुआ कि लोगो मे कुछ जागृति आई, बडे लोगो की भी कुछ सहानुभूति मिली। जिनके पास अधिक जमीन है, अभी उनकी तादाद कम है। पर मेरी कोशिश यह है कि जिन्होने दान दिया है, वे ही इस काम को उठा ले और अपने मित्रो से दान प्राप्त करे। कुछ ऐसा हो भी रहा है। जो इस काम को पसद करते है, उनसे हम अधिक आशा रखते है। बारिश तक का यह काम है। इच्छा यह है कि एक साल मे बिहार का काम पूरा हो। बहुतो के मन मे जो सदेह था, वह अब नही रहा है और सबके ध्यान मे आ गया है कि अब अपना कर्तव्य क्या है। इसलिए आशा है कि वे कुछ निश्चित कदम उठायेगे।

उत्तर प्रदेश ने निश्चय किया है कि वारिश तक ग्यारह लाख पूरा करेंगे। उनके काम के विषय मे मै निश्चित हो गया हू, क्योकि वह सकल्प करनेवालो मे गाधी-आश्रम जैसी अच्छी सस्था के कार्यकर्त्ता है, जिसकी वीस शाखाए है और वावा राघवदासजी भी इस काम मे लगे है। वे अव गया जिले के समान वादा जिले मे केद्रित होकर परिश्रम करनेवाले है, जो तुलसीदासजी का जिला था। अव वहा से दो लाख एकड लेने है।

अव उडीसा वाले भी कटक जिले मे एक लाख करने का सोच रहे है। गया जिले मे हमने एक लाख की वात की, उसका यह परिणाम है।

मेरा विचार यह है कि परधाम के आश्रम का हम सक्षेप करे, वहा के काम को देखने के लिए दो-चार भाई वहा रहेगे, परन्तु वाकी के सब भाइयो मे मेरा निवेदन है कि वे विहार मे आये। उनकी तादाद वहुत ज्यादा नही होगी, पर वे कावित जवान है। मुझे उम्मीद है कि वे इस विचार को पसद करेगे, क्योकि हमने सारे देश को आवाहन किया है कि अपने सारे काम वद करके एक साल के लिए इसमे कूद पडें। इसलिए मै चाहता हू कि वह सस्था भी, जिससे मेरा अधिक सवध है, यह करे।*

अव सवको आशा वन रही है, उम्मीद और ढाढस बन रहा है। मुझे सतोष है कि जयप्रकाशजी को मेरा विचार वहुत जच गया है और उन्होने इसको आत्मसात् किया है। मै यह एक वडी प्राप्ति मानता हू। उत्तर प्रदेश मे मैने कहा था कि भूमि तो मिली सो मिली, पर टडनजी और पतजी को यह विचार पसद आया, यह एक वडी वात है। उसका असर हो रहा है। इस आन्दोलन से वहा की जनता को और स्टेट को कितना लाभ हुआ है, इसका उनको भान हुआ है।

---

* इसके अनुसार परधाम-आश्रम में तीन-चार भाई वहन रहे, वाकी सव गया आ गये।

बिहार के मत्री भी इसके अनुकूल है, यह एक प्राप्ति है। लेकिन जयप्रकाशजी के मन मे नि सन्देहता पैदा हुई, यह एक बहुत बडी प्राप्ति है। अगर हम नम्रतापूर्वक काम करते जायगे, तो ऐसी ही प्राप्ति होगी और सब सज्जनो का सहयोग हम हासिल करेगे।

प्रार्थना-प्रवचन,
चाडिल, ११ मार्च ५३

८

सर्वोदय-सेवकों से

जब जहा कोई एक बडा पत्थर उठाना होता है, वहा सारे लोग एक साथ ताकत लगाते हैं। एक दो, तीन कहते हैं और एक क्षण मे सब एक साथ जोर लगाते हैं। अगर वैसा न करे तो वह पत्थर जगह नही छोडता। तो ऐसा ही यह कार्य है, जिसमे हमे एक साथ और एक समय मे अपनी ताकत लगानी है। मै अपनी ताकत लगा रहा हू। दो महीने बाद आप लगायें, फिर चार महीने बाद कोई और लगाये, अपनी-अपनी फुरसत से इस तरह काम नही होगा। इस तरह के कामो मे एक निश्चित समय होना जरूरी है, लश्करी भाषा मे उसे 'जीरो आवर' (शून्य क्षण) कहते है, पर उस वक्त हम फुरसत देखे, सहूलियत देखे तो काम नही बनता। नेपोलियन ने आठ हजार का लश्कर लेकर आस्ट्रिया पर चढाई कर दी और एक निश्चित समय पर धावा करने की उसने अपनी सेना को आज्ञा दी, और इस तरह विजय प्राप्त की। यह एक लडाई का मैने जिक्र किया। मुझे शौक था इतिहास का, अध्ययन करते-करते लडाई का अध्ययन करने का। बक्सर की लडाई मे समय पर सामान और मदद न पहुचने से पराजय हुई। तो यह एक हम लोगो मे न्यूनता है—व्यवस्थितता का अभाव।

विशिष्ट 'क्षण' का महत्त्व

कुमारप्पाजी ने कहा कि "हमारी सस्कृति मे यह विशेषता है कि व्यक्तिगत विकास की ओर हमारा ध्यान रहना चाहिए।" पर इसका मतलब यह नही कि हम सामूहिक कार्य मे भाग ही न ले। इसलिए यह मैने मिसाल दी बडा पत्थर उठाने की और यह बात तुकडोजी महाराज को

भी जच गई। उन्होंने यह निश्चय किया कि वह अपना समय इसमे लगायगे। आप लोगो से भी यही कहना है और आपसे प्रार्थना है कि आप और हम सर्वोदय-प्रेमी है, अभीतक रचनात्मक काम करते रहे है, अब इस काम मे लग जाय। मैने जब आपसे कहा कि पच्चीस-तीस साल से मै रचनात्मक काम करता रहा और उसे छोडकर इस काम मे पडा, तो उसके पीछे एक विचार है। मैने इसलिए यह उठा लिया है कि इसके आधार से और सब कार्य फलेगे और यह भी विश्वास है कि यदि यह काम नही हुआ, तो दूसरे काम टिकनेवाले नही है, जो हम अपेक्षा करते है, वह नही होगा, ग्रामोद्योग का दावा सिद्ध नही होगा--तो मुझे आप लोगो से कहना है कि ऐसे मौको पर परित्याग की भावना होनी चाहिए। सूर्य की वह महिमा है। दक्षिण के लोगो को मै कह चुका हू---तद् सूर्यस्य देवत्व सन्ध्या के समय सूर्य अपनी सब किरणो को जिस प्रकार खीच लेता है, उसी तरह हममे भी अपने सब कामो को समेट लेने की शक्ति होनी चाहिए।

जयप्रकाशजी की मिसाल

उन्होंने मेरे विचार सुने, वे इस काम मे लग गये और गाव-गाव मे इसके लिए घूमे। यहा का उनका व्याख्यान पूर्ण निष्ठा से भरा हुआ था। लेकिन एक भी ऐसी मिसाल नही बनी कि भूदान के काम के लिए किसी पार्लमेन्ट के मेम्बर ने यह सोचा हो कि भूदान का काम करना चाहिए।[१] इसलिए पार्लामेंट की मेम्बरशिप से मै इस्तीफा देता हू। मेरी समझ मे नही आता कि उसमे पडा क्या है।

एक अनुभव

कालेज के विद्यार्थियो से भी मै कहता हू कि कालेज मे क्या रक्खा है? वहा तो विपरीत ज्ञान और अज्ञान मिलता है। लेकिन कालेज के विद्यार्थी जोर-शोर से इसमे आते नही दीखते है। कोई कहता है कि दो-तीन दिन खाली है, उतने ही दूगा। वाह रे भगवान्! आगरा के लोगो की हालत सुनाता हू। मै आगरा गया। वहा से आने के बाद वे लोग एकदम ठडे हो गये। वल्लभस्वामी ने उन्हे समझाया कि विनोबाजी इतना कष्ट उठा रहे है तो क्या आपके लिए यह कोई नाटक हो रहा है? तब उन्होने इस काम के लिए सात दिन दिये और उन सात दिनो मे उन्हे सात-आठ सौ एकड भूमि मिली। तब उन्हे लगा कि हम और घूमते तो और मिलती। उनकी इस सात और आठ सौ एकड भूमि का मतलब है कि सात और आठ सौ को भोजन दिया गया। यदि इतनो को रोजी मिल जाती है तो कितना बडा पुण्य का काम हुआ। इसलिए जयप्रकाशजी ने कहा कि गया मे अगर तीन लाख एकड जमीन होती है, तो कोई वजह नही कि हिन्दुस्तान मे क्यो न हो? लोगो में यदि निष्ठा आई तो यह कोई असभव बात नही है।

बडे आकडो को लोग अब अशक्य नही कहते और बिहार की रद्दी-से-रद्दी भूमि पाच सौ रुपये एकड से कम में नही मिलती। मामूली काश्त कर सके ऐसी जमीन पाच सौ रुपये प्रति एकड है। इस हालत में

[१] इस सम्बन्ध में पार्लमेंट के सदस्यो ने अब कुछ कदम उठाया है।

यदि पार्लमेंट के सदस्य कहे कि हमारा थोड़ा-सा काम पड़ा है, उसे करके आयगे, काश्तकार कहे कि थोड़ी मोहलत दीजिये, तो ऐसे मे क्या काम हो सकता है? इस तरह से हमारा काम नही होगा।

श्रद्धा की शक्ति

गांधीजी रात-दिन प्रार्थना करते थे। वे कहते थे कि मेरी परीक्षा तो तब होगी जब मै मरूगा, और वही बात हुई भी। उनका हृदय तो राम मे रमा हुआ था। गोली लगते ही उनके मुह से "हे राम" निकल गया। मानव-स्वतन्त्रता, मुक्ति की वासना और सत्संग, ये तीनों हमें मिले। अन्दर से भक्ति और भाव होने चाहिए। आपने छोटी-छोटी लड़कियों के मुह से सुना कि हमने दाताओं के रूप मे भगवान् के दर्शन किये। हम उनके पास जाते थे और वे ना नहीं कह सकते थे। उनके मुह से भगवान् बोलते थे। शांताबाई नारंगकर गई और पन्द्रह दिन मे दो हजार एकड़ जमीन ले आई। वह सामने हरि-रूप है, यह मानकर लोगो को श्रद्धा से समझाती थी और जमीन मांगती थी। ऐसी श्रद्धा से हमें काम करना है और ऐसी श्रद्धा से हम महान् [illegible] हैं।

न आने से पछताओगे

मदद के लिए दौडे आओ। अगर दौडे नही आओगे तो आप ही पछताओगे।

मै गाधीजी से अक्सर मिलता कम था। लोग कहते थे कि "गाधीजी ने ऐसा कहा और वैसा कहा, पर हमे जचता नही है।" तो मै उनसे कहता था कि या तो आप योजना दो और गाधीजी उसका अमल करे। या गाधीजी योजना करे और आप उस पर अमल करे। लेकिन आपमे योजना करने की अकल नही है। और गाधीजी के शरीर मे आपकी योजना पर अमल करने की ताकत नही है। यह अकलमदी की बात नही है कि जो इतनी बडी भारी पूजी हमारे पास पडी है, उसका उपयोग हम न करे और उनको मदद भी न दे। जहा आदमी के चितन की बात आती है, वहा मै सोचूगा, पर जहा कूद पडने की बात है, वहा मै फौरन कूद पडूगा।

एक बार गाधीजी को खयाल हुआ कि सन् ४२ मे उपवास की शृखला चले। उन्होने कहा था कि जब मै जेल जाऊगा तो इशारा करूगा और मै उपवास करूगा, तो सब लोग उपवास शुरू कर दे। लोग घबरा गये और कहने लगे कि उपवास तो अधिकारी हो कर सकते है। गाधीजी से कहा कि आपको उपवास हर हालत मे नही करना चाहिए। बापू ने मुझे बुलाया और कहा कि ऐसा मै सोचता हू कि अन्तिम अनशन मै करू और सब लोग भी करे, तो क्या यह हो सकता है? तुम इसमे क्या सलाह देते हो? मैने उत्तर दिया कि जो काम रामजी कर सकता है, वह हनूमान भी कर सकता है। राम बुद्धि से करता है, हनूमान श्रद्धा से कर सकता है। जिसमें श्रद्धा है, वह निष्ठा से इस काम को कर सकता है। इसलिए सेनापति आज्ञा कर सकता है और जिसमे श्रद्धा है, वह उसे पूरा कर सकता है। उन्होने फिर कहा कि कुछ सोचना है तो सोचो, पर मैने कहा कि मुझे कुछ सोचना नही है और मै उठ कर चला गया। उस पर से महादेवभाई को क्लेश हुआ, क्योकि मैने गाधीजी को उपवास की इजाजत दे दी और मेरा खयाल है कि इस वेदना मे ही वे चले गये। जिस क्षण मेरे मुख से यह बात निकली, उन्होने सोचा कि यही एक शख्स था, जो बापू को परावृत्त कर सकता था। पर जब इसकी सम्मति मिल गई है तो दोनो बाबा एकरूप हो गये।

९ अगस्त को बापू गिरफ्तार हो गये और सात साढ़े सात बजे मुझे यह मालूम हुआ। तीन बजे मैं गिरफ्तार हुआ। जेल में पहुचा। वहा मैंने जेलर से कहा कि जेल में आने के बाद हम आत्मा में रहते हैं, जेलर शरीर का कुछ भी करे, पर इस मर्तबा आपका राज्य सारा नामजूर है, इसलिए हमारा उपवास शुरू हो रहा है। आज तो मैंने खाया है, इसलिए खाना नहीं है, पर कल से मेरा उपवास शुरू होगा। एक-डेढ़ घंटे के बाद, कोई साढ़े पाच का समय होगा, सुपरिन्टेन्डेन्ट ने मुझे बुलाया और मैं हाजिर हुआ। उन्होंने मुझसे कहा कि आपकी मुलाकात है, पर आपको कुछ बोलना नहीं है। सामने बालुजकरजी को देखा। तब मैंने कहा कि सुनाओ। श्री बालुजकरजी ने सुनाया कि "बापू ने संदेश दिया है कि अभी आप उपवास न करें।" उनका विचार यह था कि फौरन उपवास न किया जाय, थोड़ा समय बीतने दें। उन्हे मालूम था कि जब मैंने उन्हे उपवास की सम्मति दी थी, तो मैं भी उपवास करनेवाला ही था। यह कहानी मैंने इसलिए सुनाई कि मुझमें यह आदत नहीं थी कि नाहक तर्कशक्ति चलाये, उसकी बहस करते रहे और समय गवाये। यह बेकार बात है। मैं मानता था कि बापू मेरे लिए बड़ी भारी पूजी थे तो यह कहने का मौका नहीं आना चाहिए कि बापू ने हमें एक मार्ग बताया और हम उसके लिए समय न दे सके। पर हम सदा तैयार है, ऐसा रहना चाहिए।

विनोबा-साहित्य

विनोबा के विचार (दो भाग)—विनोबाजी के निबन्धो व व्याख्यानो का महत्वपूर्ण सग्रह । प्रति भाग १॥)

गीता-प्रवचन—गीता के प्रत्येक अध्याय का बडा ही सरल, सुबोध शैली मे विवेचन । अजिल्द १), सजिल्द १॥।)

शान्ति-यात्रा—गाधीजी के देहावसान के बाद अनेक स्थानो मे दिये गए विनोबाजी के प्रवचन । सजिल्द २॥)

स्थितप्रज्ञ-दर्शन—स्थितप्रज्ञ के लक्षणो की व्याख्या । २॥)

ईशावास्यवृत्ति—ईशोपनिषद् की विस्तृत टीका । १)

ईशावास्योपनिषद्—मूल श्लोको सहित ईशोपनिषद् का सरल अनुवाद । =)

सर्वोदय-विचार—सर्वोदय-विषयक लेखो व प्रवचनो का सग्रह । १=)

स्वराज्य-शास्त्र—प्रश्नोत्तर के रूप मे विनोबाजी द्वारा स्वराज्य की परिभाषा, अहिंसात्मक राज्य-पद्धति एव आदर्श राज्य-व्यवस्था का विवेचन । १)

भू-दान-यज्ञ—देश के भूमिहीनो की दुर्दशा से प्रभावित होकर भूमि के समवितरणार्थ दिये गये मूल्यवान प्रवचन । ।)

राजघाट की सन्निधि में—भूदान-यज्ञ के सिलसिले में दिल्ली मे दिये गये विनोबाजी के प्रवचन । ।।।)

गाधीजी को श्रद्धाजलि—गाधीजी के प्रति विनोबाजी की सर्वोत्तम श्रद्धाजलि । ।=)

जीवन और शिक्षण—युवकोपयोगी लेखो तथा भाषणो का सग्रह । २)

सर्वोदय का घोषणापत्र—चाडिल-सर्वोदय-सम्मेलन में दिये गए विनोबाजी के महत्त्वपूर्ण भाषण ।)

विनोबाजी की अन्य पुस्तकें

१ विनोबा के विचार (दो भाग)
२ स्वराज्य-शास्त्र
३ गीता-प्रवचन
४ ईशावास्यवृत्ति
५ ईशावास्योपनिषद्
६ गांधीजी को श्रद्धांजलि
७ शांति-यात्रा
८ सर्वोदय-विचार
९ स्थितप्रज्ञ-दर्शन
१० राजघाट की सन्निधि में
११ जीवन और शिक्षण
१२ सर्वोदय का घोषणा-पत्र
१३ भूदान-यज्ञ

चार आना

अहिंसक
समाज के नवनिर्माण
पर
धीरेन्द्रभाई मजुमदार
के
विचार

दण्ड-निरपेक्ष समाज-रचना

[सर्वोदय समाज के निर्माण की योजना]

धीरेन्द्र मजूमदार

१९५४

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ, वर्धा का प्रकाशन

सर्व-सेवा-संघ वर्धा के लिए
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
द्वारा प्रकाशित

पहली बार १९५४

मूल्य

चार आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

दो शब्द

मैने कई मौको पर सर्वोदय सेवको को यह चेतावनी दी है कि यदि वे भूदान-यज्ञ को केवल भूमि के सम-विभाजन आन्दोलन के रूप मे समझेगे और उन्हे इसकी मूलभूत-क्राति की धारणा नही रहेगी तो हमे उसी तरह से धोखा होगा जिस तरह गाधीजी की स्वराज्य की कल्पना क्या है, इसकी स्पष्ट धारणा देश को न रहने से स्वराज्य-आन्दोलन मे हुआ। इस पर से कई साथियो ने मुझे इसका अधिक स्पष्टीकरण करने को कहा। तदनुसार सर्वोदय की विचार-क्राति क्या है और भूदान-यज्ञ के सिलसिले मे सर्वोदय-समाज के निर्माण के लिए क्या योजना हो सकती है, यह इस पुस्तिका मे बताने की कोशिश की है।

सर्वोदय का पूरा चित्र देने मे कही-कही ऐसी बाते भी आई है जिन्हे मैने दूसरे स्थानो में भी कहा है। लेकिन उनके बिना विचार-प्रवाह अपूर्ण रह जाता, इसलिए उचित स्थानो पर उसे भी रखा गया है। जगह-जगह जो प्रश्न होते रहे है, उनमे से भी महत्वपूर्ण प्रश्नो का उत्तर इसमे दिया गया है। मुझे आशा है, सर्वोदय-सेवको की दृष्टि स्पष्ट करने मे यह पुस्तिका सहायक होगी। पुस्तिका पढकर किसी भाई या बहन को अगर कोई शका हो या किन्ही बातो के स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो तो वे मुझे लिखने की कृपा करे।

खादीग्राम, जमुई
जिला मुगेर

—धीरेन्द्र मजूमदार

विषय-सूची

दण्ड-निरपेक्ष समाज-रचना

: १ :

क्रान्ति की पृष्ठ-भूमि

आचार्य विनोबा भावे द्वारा प्रवर्तित भूदान-यज्ञ ने आज सर्व भारतीय दृष्टि को आकर्षित कर लिया है। केवल भारतीय ही नही, सारे विश्व की नजर इस आन्दोलन पर है। दो साल पहले, जब विनोबाजी सेवाग्राम से दिल्ली के लिए रवाना हुए, तब कौन जानता था कि यह यात्रा एक 'विश्व-क्रान्ति' का रूप ले लेगी। केवल विरोधी ही नही, साथियो का भी कहना था कि तेलगाना मे जो जमीन मिली वह एक विशिष्ट परिस्थिति के दबाव के ही कारण मिली थी। दूसरे प्रदेशो मे जमीन दान मे नही मिल सकेगी। अगर मिलेगी भी, तो जैसे भारत मे साधु-सन्तो को दान देने की सनातन परिपाटी है उसीके अनुसार हजार-पाच-सौ एकड जमीन भले ही दान मे मिल जाय, लेकिन विनोबाजी कहते हैं कि वे इस आन्दोलन द्वारा भूमि-समस्या हल करना चाहते हैं। उसकी सिद्धि मे इस यात्रा का कोई महत्व नही है।

विश्व-क्रान्ति का स्वरूप

धीरे-धीरे लोगो ने देखा कि भूमि का दान मिल रहा है और वह सनातन परिपाटी के परिणामस्वरूप नही, बल्कि विशेष व्यापकता के साथ। फिर भी लोगो मे शका बनी ही रही कि इस आन्दोलन का कोई नतीजा निकलेगा या नही। लेकिन दो साल मे आज सारी दुनिया आन्दोलन की प्रगति देखकर आश्चर्यचकित है। सतो मे सामान्य दान के रूप मे सोचने की शुरुआत से लोगो ने इसे इस युग के एक बहुमत व्यापक परोपकारी

कार्यक्रम के रूप मे देखा। लेकिन आखिर उन्हे मालूम हो गया कि यह एक विश्वक्राति है।

क्रान्ति क्या है ?

समालोचको का कहना है कि 'क्रान्ति' शब्द का एक फैशन बन गया है। कोई थोडा सा भी काम करता है तो सोचता है कि मै क्रान्ति कर रहा हू। इसी तरह से सत विनोबा भी सोच रहे है। आखिर वे समालोचक किसे क्रान्ति कहते है ? क्या धुआधार सघर्ष हो या खून की नदिया बहे तभी समझा जायगा कि क्रान्ति हो रही है ? अगर ऐसी बात है तो ससार मे दो राजाओ का युद्ध, साम्प्रदायिक दगा आदि सभी क्रान्ति है।

क्रान्ति की पहचान

क्राति की पहचान बतलाते हुए आचार्य कृपलानी कहते है— "क्रान्ति की सबसे बडी पहचान यह है कि एक मामूली कार्यकर्त्ता भी इसके प्रवाह और प्रेरणा से वह काम सम्पादित कर सकता है, जो उससे कही योग्य व्यक्ति दूसरी तरह कही भी नही कर पाते।" राष्ट्रीय नेताओ के लिए यह बहुत कठिन था कि वे लोगो को भूमि से अलग होने के लिए राजी करते। लेकिन आज लोग उन मामूली नवयुवको और युवतियो को जमीन दे रहे है जिन्होने इस काम को विनोबाजी की प्रेरणा से अपनाया और जो इससे पहले राष्ट्र के सार्वजनिक जीवन मे अज्ञात थे, बल्कि जिनमे से कुछ अभी बालिग भी नही हुए है। वस्तुत क्राति की एक बडी पहचान यह है कि आबाल-वृद्ध, वनिता उसमे पूरी शक्ति और निष्ठा के साथ लग जाते है।

भूदान-आन्दोलन—धर्म-चक्र-प्रवर्तन

आचार्य विनोबा भावे ने अपने आन्दोलन को 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' कहा है। उनका कहना है, "सामान्य धर्म-प्रचार और क्रान्ति या 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' ये दो भिन्न-भिन्न वस्तुए है। सामान्य धर्म तो ऋपि और सत लोग हमेशा समझाते रहते है। इसलिए सर्वसामान्य धर्म प्रचार एक बात है और जमाने की माग क्या है, यह पहचान कर धर्म-विचार उसके साथ जोड देना दूसरी बात है।' "सत और ऋपि मामूली धर्म-प्रचार तो हमेशा करते रहते है, परन्तु उसमे धर्म-चक्र-प्रवर्तन नही होता है। जहा परि-स्थिति के साथ धर्म-भावना जुड जाती है वहा वह लोगो के दिल को छूती है। इससे बडी शान्ति पैदा होती है। और इसीसे धर्म-चक्र-प्रवर्तन होता है।" अर्थात् धर्म-प्रचार से सुधार होता है और धर्म-चक्र-प्रवर्तन से क्रान्ति होती है।

जमाने की माग

वस्तुत जमाने की माग क्रान्ति की पुकार हुआ करती है। युग-युग मे हमेशा ऐसे जमाने आते रहे है जिस समय समाज का सारा ढाचा तोड कर नया ढाचा बनाना अनिवार्य हो जाता है। ऐसे जमाने मे सामाजिक क्राति की आवश्यकता होती है। मानव समाज के लिए महान् कल्याण-कारी समाज-पद्धति भी काल-क्रम मे महान् विनाशकारी पद्धति बन सकती है। ऐसी दशा मे सारे समाज से एक सहज पुकार उस पद्धति को तोडकर नई पद्धति कायम करने की होती है। उसीको जमाने की माग या क्रान्ति-कारी परिस्थिति कहते है।

परिवर्तन की प्रक्रिया

एक सामान्य मिसाल से क्रान्ति की आवश्यकता स्पष्ट रूप से समझ मे आ जायगी। मान ले कि किसी समय एक परिवार ने अपनी सुख-सुविधा और सुरक्षा के लिए विचारपूर्वक अत्यन्त सुविधाजनक मकान बनाया। क्रमश स्थिति मे दो प्रकार का परिवर्तन हुआ। काल-क्रम से पुराना होने के कारण मकान की ईट में लोनी लगी, लकडी आदि सामग्री सडी और

पीढी-दर-पीढी पारिवारिक परिस्थिति मे हेर-फेर हुआ। शुरू-शुरू मे लोग काफी दिन तक मकान की मरम्मत करते रहे और पारिवारिक स्थिति के बदलाव के साथ-साथ मकान की स्थिति मे भी रद्दोबदल करते रहे। आखिर एक समय ऐसा आया कि सडन के कारण घर टूटकर गिरने लगा। रहनेवालो की जान का खतरा आया। रद्दोबदल करते-करते उसकी हालत ऐसी हो गई कि नई परिस्थिति मे उसके अन्दर गुजारा करना असभव हो गया। ऐसी हालत मे लोग उस मकान को गिराकर नया मकान बनाते है, क्योकि अब उसमे सुधार या मरम्मत की कोई गुजाइश नही रह जाती।

समाज के मूल्याकनो में क्रान्ति

इसी तरह मनुष्य के कल्याण के लिए समाज का कुछ ढाचा बनाया जाता है। तात्कालिक परिस्थिति के अनुसार कुछ धारणाए बनती है तथा वस्तुओ का मूल्याकन किया जाता है। यह सब इसलिए होता है कि मानव-समाज सुख और शाति मे जीवन बिता सके। समय पाकर इन सबके रूढि बन जाने मे इस ढाचे मे तथा धारणा और मूल्याकन मे विकृति पैदा होती है। दूसरी ओर सतत परिवर्तनशील प्रकृति के प्रभाव से समाज की परिस्थितियो का निरतर परिवर्तन होता रहता है। दोनो मिलकर ऐसी स्थिति पैदा करते है जिससे समाज का पुराना ढाचा, जीवन की धारणाए तथा मूल्याकन मौजूदा बदली हुई स्थिति मे सुखकारी न होकर सकटकारी हो जाते है। ऐसे सकट से त्रस्त होकर समाज की अन्तरात्मा एक आमूल परिवर्तन की पुकार करती है। सारे समाज की अन्तरात्मा भी पुकार टल नही सकती। यही पुकार मूर्तिमान होकर क्रान्ति का रूप लेती है।

: २

भू-दान की सही भूमिका

जमाने की माग के साथ जुडा हुआ होता है, तब क्राति यानी धर्म-चक्र- वर्तन हो जाता है। हर क्राति की द्रुत प्रगति भी इसी कारण से हुआ करती है, क्योकि जमाने की माग के कारण सारे मानव-समाज की दृष्टि ऐसे आन्दोलन की ओर सहज खिच जाती है। लेकिन जहा यह वात क्राति को प्रगति देने के लिए एक शक्ति है वहा यही वात उसी क्राति के लिए खतरा भी है। इसलिए जरूरी है कि भूमिदान आन्दोलन मे कार्यकर्त्ता अपने काम के साथ क्राति पर के खतरे के वारे मे निरन्तर जागृत रहे।

रूढि

शुरू-शुरू मे कोई क्रातिकारी दृष्टा जमाने की माग को पहचान कर उमे पूरा करने का एक मार्ग उपस्थित करता है। प्रकृति मे निरन्तर प्रगति-शील होने के कारण क्रातिकारी मार्ग हमेशा नया होता है और उसकी मिसाल इतिहास मे नही हुआ करती। यही कारण है कि जव क्रातिकारी पुरुप नई वाते करते है तव यद्यपि सावारण जनता उसे समझ लेती है, पर पढे-लिखे विद्वानो को उनकी वातें नही भाती, क्योकि पडितो की वुद्धि प्राय शास्त्रो की जिल्द के अन्दर गिरफ्तार रहती है और वे अपनी कितावो मे लिखे हुए सूत्र के अनुसार वाते ही समझ पाते है। इसलिए वे प्रारम्भ में क्रातिकारी की वातो को हसी उडाते है, दूसरी ओर इस क्राति के जमाने की माग का सही पूरक होने के कारण जनसाधारण का दिल सहज ही उनकी ओर दौडता है। लेकिन प्रकृति से रूढिग्रस्त होने के कारण उनकी वुद्धि सावारणत पडितो की ओर ही झुकती रहती है।

क्रान्त दृष्टा की गति

इस प्रकार क्रातिकारी पुरुप शुरू-शुरू में समाज मे सावारण जनता के दिल को आकर्पित करते हुए भी अकेला ही चलता है। लेकिन दिल साथ होने के कारण जल्दी ही वह जनता को अपनी ओर खीचकर उसे क्रातिकारी मार्ग पर चलाने लगता है। फिर वह प्रगति जव व्यापक हो जाती है तो पढे-लिखे विद्वानो की भी दृष्टि आकर्पित होती है। उनमे से दो-एक ऐसे भी होते है जो जमाने की समस्याओ के समाधान के लिए अपने पाडित्य

की असारता महसूस कर नई क्राति की बात समझने लगते है और उस क्राति-कारी द्रष्टा के भक्त बन जाते है। भक्त बनने पर भी उन्हे सारी बातो को अपनी किताबी भाषा मे अनुवाद करके ही सोचना पडता है। सिर्फ अपने ही सोचने के लिए नही, बल्कि अपनी विद्वान बिरादरी को समझाने के लिए भी वे पुरानी किताबो के पन्नो मे ही नई क्राति की बात ढूढने लगते है। विद्वानो के लिए ऐसी चेष्टा क्राति के लिए प्रथम खतरा है।

गाधीजी की प्रवृत्तियां

गाधीजी ने मानव-समाज को शोषण तथा निर्दलन से बचाने के लिए चर्खे का सदेश सुनाया। वे चर्खे के माध्यम से स्वावलबी आर्थिक व्यवस्था कायम करना चाहते थे, क्योकि वे समझते थे कि जबतक स्वतन्त्र जनशक्ति के आधार पर मानव-जीवन स्वावलबी नही होगा तबतक मनुष्य को वास्तविक आजादी नही मिल सकती। यह स्वावलबी आर्थिक व्यवस्था एक नई बात थी। गाधीजी के आन्दोलन की विराट प्रगति ने जिन बहुत से विद्वानो को उनका भक्त बना दिया था उन्होने स्वभावत पुरानी किताबो के पन्नो पर गाधीजी की बातो को ढूढने की कोशिश की। किताबो मे भारत की अति प्राचीनकालीन स्वावलबी समाज की बात जरूर पाई जाती है। लेकिन आधुनिक पडितजन उसे मजबूरी का नतीजा समझ कर उसे अवैज्ञानिक तथा प्रतिगामी मानने लगते है। इसलिए वह बात उन्हे भाती नही। आधु-निक किताबो मे ढूढते हुए उन्हे विकेद्रीकरण का एक शब्द मिला और उन्होने इसे पढी-लिखी दुनिया मे प्रसिद्ध किया।

करीब वही हुआ। गाधीजी के अनुयायिओ द्वारा स्वावलबी समाज-व्यवस्था के सिद्धात का आग्रह छोडकर विकेद्रीकरण की बात करने के कारण जन-स्वावलवन के आधारपर सच्चे लोकतत्र के रूप मे ग्रामराज्य कायम न होकर एक विराट् केन्द्रित सत्ता के नीचे सारी प्रजा दवती जा रही है। यह सही है कि हम लोग लोककल्याणकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) की वात करते है और सोचते है कि इसीसे गणराज्य सच्चा होगा, लेकिन तानाशाही सरकार भी तो लोककल्याणकारी हो सकती है, वल्कि लोक-कल्याणकारी होने के कारण ही प्रारम्भ मे जनता तानाशाही को स्वीकार भी करती है। इस तरह कितावो के सूत्र मे नई क्राति की वात ढूढने की चेष्टा से क्राति इस प्रकार विपथगामी हो सकती है। उसकी मिसाल हमने अभी-अभी भारतीय आन्दोलन से देखी।

भूमिदान पुनर्विभाजन नहीं

उसी तरह विनोवाजी ने भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन चलाया और विद्वानो ने जव इसमे क्रातिकारी स्वरूप को देख लिया तव वे पुरानी प्रचलित कितावो के पन्नो को पढकर इसे भूमि के पुर्नविभाजन के रूप मे समझने लगे। यह समझने की आवश्यकता है कि जैसे विकेद्रीकरण-मात्र से गाधीजी का स्वावलवन नही होता उसी तरह भूमि के पुर्नविभाजन-मात्र से ही विनोवाजी का भूमिदान-यज्ञ नही होता है। भूमि का वितरण तो जापान और चीन में भी हुआ है, लेकिन क्या वहा भूमिदान-यज्ञ के उद्देश्य के अनुसार सर्वोदय समाज यानी शासन तथा शोषण-रहित जनतत्र कायम हो सका है ? वहा तो उत्कट तानाशाही का ही सगठन हुआ है। अगर भूमि-दान-यज्ञ को केवल भूमि-वितरण के ही रूप मे देखा जाय और उसी दिशा मे ही कार्यकर्त्ता आगे वढे, तो क्या भारत मे भी तानाशाही का खतरा नही आ सकता ?

स्वराज्य आदोलन में हमारी भूल

मैंने शुरू मे कहा है कि इस यज्ञ के प्रति सारे भारत की दृष्टि आकर्षित हुई है। केवल आकर्षित ही नही हुई, वल्कि सभी श्रेणियो और सभी

की असारता महसूस कर नई क्राति की बात समझने लगते है और उस क्राति-कारी द्रष्टा के भक्त बन जाते है। भक्त बनने पर भी उन्हे सारी बातो को अपनी किताबी भाषा मे अनुवाद करके ही सोचना पडता है। सिर्फ अपने ही सोचने के लिए नही, बल्कि अपनी विद्वान बिरादरी को समझाने के लिए भी वे पुरानी किताबो के पन्नो मे ही नई क्राति की बात ढूढने लगते है। विद्वानो के लिए ऐसी चेष्टा क्राति के लिए प्रथम खतरा है।

गाधीजी की प्रवृत्तियां

गाधीजी ने मानव-समाज को शोषण तथा निर्दलन से बचाने के लिए चर्खे का सदेश सुनाया। वे चर्खे के माध्यम से स्वावलबी आर्थिक व्यवस्था कायम करना चाहते थे, क्योकि वे समझते थे कि जबतक स्वतन्त्र जनशक्ति के आधार पर मानव-जीवन स्वावलबी नही होगा तबतक मनुष्य को वास्तविक आजादी नही मिल सकती। यह स्वावलबी आर्थिक व्यवस्था एक नई बात थी। गाधीजी के आन्दोलन की विराट प्रगति ने जिन बहुत से विद्वानो को उनका भक्त बना दिया था उन्होने स्वभावत पुरानी किताबो के पन्नो पर गाधीजी की बातो को ढूढने की कोशिश की। किताबो मे भारत की अति प्राचीनकालीन स्वावलबी समाज की बात जरूर पाई जाती है। लेकिन आधुनिक पडितजन उसे मजबूरी का नतीजा समझ कर उसे अवैज्ञानिक तथा प्रतिगामी मानने लगते है। इसलिए वह बात उन्हे भाती नही। आधुनिक किताबो मे ढूढते हुए उन्हे विकेद्रीकरण का एक शब्द मिला और उन्होने इसे पढी-लिखी दुनिया मे प्रसिद्ध किया।

गाधीजी ने स्वावलबी समाज की बात दुनिया मे मौलिक लोकतत्र कायम करने के लिए ही की थी। लेकिन किताबो की समाज की विकेद्रीकरण की धारणा वहा तक कैसे पहुच सकती है। यही कारण है कि यद्यपि अमेरिका मे हेनरी फोर्ड तथा फैसिस्ट जापान के नेता के विकेद्रीकरण की बात करते रहे और जापान मे उसका व्यापक अमल होता रहा, फिर भी उन मुल्को मे गाधीजी की धारणा के अनुसार लोकतत्र कायम होने की क्राति न होकर दिन-प्रतिदिन तानाशाही का ही सगठन होता गया। भारत मे भी करीब-

करीव वही हुआ। गाधीजी के अनुयायिओ द्वारा स्वावलवी समाज-व्यवस्था के सिद्धात का आग्रह छोडकर विकेंद्रीकरण की वात करने के कारण जन-स्वावलवन के आधारपर सच्चे लोकतत्र के रूप मे ग्रामराज्य कायम न होकर एक विराट् केन्द्रित सत्ता के नीचे सारी प्रजा दवती जा रही है। यह सही है कि हम लोग लोककल्याणकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) की वात करते है और सोचते है कि इसीसे गणराज्य सच्चा होगा, लेकिन तानाशाही सरकार भी तो लोककल्याणकारी हो सकती है, वल्कि लोक-कल्याणकारी होने के कारण ही प्रारम्भ मे जनता तानाशाही को स्वीकार भी करती है। इस तरह कितावो के सूत्र मे नई क्राति की वात ढूढने की चेष्टा से क्राति इस प्रकार विपथगामी हो सकती है। उसकी मिसाल हमने अभी-अभी भारतीय आन्दोलन मे देखी।

भूमिदान पुनर्विभाजन नहीं

उसी तरह विनोवाजी ने भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन चलाया और विद्वानो ने जव इसमे क्रातिकारी स्वरूप को देख लिया तव वे पुरानी प्रचलित कितावो के पन्नो को पढकर इसे भूमि के पुनर्विभाजन के रूप मे समझने लगे। यह समझने की आवश्यकता है कि जैसे विकेंद्रीकरण-मात्र से गाधीजी का स्वावलवन नही होता उसी तरह भूमि के पुनर्विभाजन-मात्र से ही विनोवाजी का भूमिदान-यज्ञ नही होता है। भूमि का वितरण तो जापान और चीन मे भी हुआ है, लेकिन क्या वहा भूमिदान-यज्ञ के उद्देश्य के अनुसार सर्वोदय समाज यानी शासन तथा शोषण-रहित जनतत्र कायम हो सका है ? वहा तो उत्कट तानाशाही का ही सगठन हुआ है। अगर भूमि-दान-यज्ञ को केवल भूमि-वितरण के ही रूप मे देखा जाय और उसी दिशा मे ही कार्यकर्त्ता आगे वढे, तो क्या भारत मे भी तानाशाही का खतरा नही आ सकता ?

स्वराज्य आदोलन में हमारी भूल

मैंने शुरू में कहा है कि इस यज्ञ के प्रति सारे भारत की दृष्टि आकर्षित हुई है। केवल आकर्षित ही नही हुई, वल्कि सभी श्रेणियो और सभी

दलो के लोग इस आन्दोलन मे शामिल हो रहे है । यज्ञ की यह एक बहुत बडी शक्ति है । लेकिन जैसा कि मैने पहले भी कहा है, जहा यह एक शक्ति है, वही यह एक खतरे का कारण भी हो सकती है । गाधीजी ने स्वराज्य का आन्दोलन चलाया । वे कहते रहे कि अग्रेजी राज्य को हटाना स्वराज्य का पहला काम है । गाधीजी की वह पुकार उस समय जमाने की माग के अनुसार ही थी । सब चाहते थे कि अग्रेज हटे, चाहे अग्रेज हटने के बाद स्वराज्य के बारे मे उनकी कुछ भी धारणा या राय रही हो । अत उस समय सभी श्रेणी के और सभी राय के लोग गाधीजी के आन्दोलन मे शामिल हुए । उसमे पूजीपति आये, शुद्ध राष्ट्रवादी आये, सामन्तवादी, गाधीवादी, सम्प्रदायवादी सभी आये और सबने मिल कर अग्रेजी राज्य को हटाने का काम लिया । अग्रेज हटे, लेकिन मुल्क का राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढाचा ज्यो-का-त्यो बना रहा । गाधीजी का स्वराज्य नही हुआ । विदेशी राज्य की जगह पर एक स्वदेशी राज्य होकर रह गया है । ऐसा क्यो हुआ ? इसपर विचार करना चाहिए, ताकि भूमिदान-यज्ञ पर के दूसरे खतरो के बारे में स्पष्ट धारणा हो सके । शुरू से ही स्वराज्य के बारे मे गाधीजी की स्पष्ट धारणा थी, और वे समय-समय पर उसका स्पष्टीकरण भी करते रहे, लेकिन उनके भक्तो और अनुयायियो ने उनकी मूल क्राति पर गहराई के साथ विचार और विवेचन नही किया । वे सब एक रूसे झोके से अग्रेजो को हटाने के काम मे सलग्न रहे । वे समझते रहे कि उनके जितने भी साथी है, सभी एक ही लक्ष्य के यात्री है । नतीजा यह हुआ कि उनके विचार धूमिल रह गये । यह सही है कि गाधीजी रचनात्मक कार्यक्रम और सस्था के जरिये अपनी क्राति की नीव डालने की चेष्टा करते रहे, लेकिन हम रचनात्मक काम करनेवाले इन कार्यक्रमो को क्राति की बुनियाद न समझ कर राजनैतिक सघर्ष के उद्देश्य से जनसम्पर्क साधने का एक सक्रिय साधन मानते रहे । हममे से कुछ उसे जनहित का कार्यक्रम-मात्र ही समझते रहे । नतीजा यह हुआ कि अग्रेजो के जाने के बाद हमारे उन साथियो ने जो प्रतिक्रियावादी थे तथा जिनकी नीयत और उद्देश्य स्पष्ट थे,

परिस्थिति पर कब्जा कर लिया। हम भी उनके द्वारा क्राति सधेगी, यह समझ कर निश्चेष्ट रहे ।

फिर जव हमने देखा कि हमारे वे साथी,जिन्हे हम अपने स्वधर्मी समझते थे, लेकिन जिनके सिद्धात, धारणा तथा दृष्टि वस्तुत प्रथक थी, हमारी धारणा के अनुसार मुल्क के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढाचो मे आमूल परिवर्तन न कर पुराने ढाचे को ही सचालित कर रहे है, तो हम उनकी शिकायत करने लगे। लेकिन शिकायत का कोई कारण नही था। वह स्वाभाविक था। क्रातिकारी जव आन्दोलन चलाता है और आन्दोलन के शुरू मे जव ऐसा कार्यक्रम लेना पडता है, जिसको करने के लिए हर तवके के लोगो का आग्रह होता है तो वह सवके साथ सयुक्त मोर्चा बनाता है। लेकिन ऐसी हालत मे उसे निरन्तर जाग्रत रहना पडता है ताकि उसकी क्राति की धारणा धूमिल होकर वह प्रति-क्रातिकारी शक्ति के हाथ मे न चली जाय। हमने स्वराज्य के क्रातिकारी आन्दोलन के समय ऐसी चौकसी नही रखी। इसलिए आज मुल्क पर प्रतिक्रियावादी शक्ति हावी है।

भूमिदान में सावधानी

जिस तरह गाधीजी ने स्वराज्य के वारे में स्पष्ट धारणा मुल्क के सामने रखते हुए भी, पहले देश का सारा ध्यान विदेशी राज्य हटाने पर केंद्रित करने को कहा, और ऐसा कहना एक व्यावहारिक क्रातिकारी के लिए स्वाभाविक भी था, उसी तरह आज विनोबाजी भी अपनी आर्थिक तथा सामाजिक क्राति की स्पष्ट धारणा देश के सामने रखने पर भी पहले भूमि प्राप्ति तथा भूमि-वितरण के काम मे सारी शक्ति केन्द्रित करने के लिए "एकहि साधे मव सधे" की वात कह रहे है, क्योकि वे जानते है कि जवतक पहला कदम जम न जाय तवतक आगे का कदम उठाना कठिन है। और वहुमुखी कार्यक्रम चलाने से शक्ति विखर कर क्राति में कमजोरी आ सकती है। लेकिन आज अगर विनोवाजी की क्रातिकारी धारणा के अनुमार भविष्य की समाज-रचना के सिद्धात को माननेवाले कार्यकर्त्ता आगे का कदम तथा भावी राष्ट्र-निर्माण के वारे मे उसी तरह से विचार तथा विवेचन

किये विना केवल भूमि-दान की ही वात सोचते रहेगे, जिस तरह हम स्वराज्य आन्दोलन के समय सोचते रहे, तो इस वार भी हम चूकेगे और एक वार और प्रतिक्रियावादी शक्तिया सगठित होकर हमारी क्राति को उलटे रास्ते ले जायगी। जिस प्रकार अग्रेजो को हटाना कई प्रकार के लोगो के लिए इष्ट था, उसी प्रकार भूमि का पुर्नविभाजन भी कई सिद्धात, दृष्टि तथा नीयत वालो के लिए भी इष्ट हो सकता है। जमीदारी प्रथा सामन्तवादी प्रथा का ही भग्नावशेष है। हमने इतिहास मे देखा है कि सामतवाद को खतम करने वाले पूजीवादी ही थे। आज भी पूजीवादी जमीदारी प्रथा को खतम ही करना चाहिए, क्योकि जमीदारो के रहते भूमि पर पैदा हुए कच्चे मालो पर सीधा अपना ही नियत्रण रखने मे उन्हे दिक्कत हो सकती है। इसलिए वे भूमिदान-यज्ञ मे शामिल हो सकते है। चीन के कम्युनिस्ट तानाशाही राज्य-व्यवस्था को ही मानते है, लेकिन उन्होने भूमि का पुर्नविभाजन किया अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही। अत कम्युनिस्ट अपने पार्टीहित की दृष्टि मे चाहे इस यज्ञ से भले ही घबराये, लेकिन सिद्धात की दृष्टि मे वे भी इस पुर्नविभाजन कार्य मे शामिल हो सकते है। ऐसे काफी लोग हो सकते है जो औद्योगिक केन्द्रीकरण को मानते हुए भी देहाती गरीवी की राहत की दृष्टि मे भूमि के पुर्नविभाजन के कार्यक्रम मे शामिल होगे। जातीयतावादी तथा सम्प्रदाय-वादी भी भूमिवितरण के साथ हो सकते है। ऐसे जातीयतावादी शोषित दल आदि नामो से सगठित हो भी रहे है। आज जनसघ आदि साम्प्रदायिक प्रतिक्रियावादी भी इसके साथ है। जनरल मैकआर्थर कोई सर्वोदयवादी तो नही है, लेकिन उन्होने भी तो जापान मे भूमि का पुर्नविभाजन किया।

इस तरह जहा एक ओर कोई नया धर्मविचार जमाने की माग के साथ जुडा न होने से वह सामान्य ऋषि-वाक्य होकर कुछ विवेकी पुरुषो का व्यक्तिगत आचारमात्र ही रह जाता है, उसमे आम जनता के शामिल न होने के कारण उस विचार मे कोई शक्ति नही रहती है, वहा दूसरी ओर हर किस्म के लोगो के शामिल होने के कारण क्राति की दृष्टि धूमिल होने की

सभावना रहती है। इसलिए मैंने कहा है कि जमाने की माग के साथ एक-रसता जहा क्राति के लिए एक शक्ति है वहा वही वात उसके लिए खतरा भी हो सकती है। अतएव जो लोग इसे क्रातिकारी आन्दोलन के रूप में देखते है, उन्हे यज्ञ के भौतिक आधार के वारे मे विचार करना होगा। इस विचार का प्रचार मुल्क भर मे करना होगा ताकि देश की दृष्टि साफ हो सके।

इसका मतलव यह नही है कि भूमिदान मे कार्यकर्त्ता सव श्रेणी के लोगों को मिलाकर काम न करें। अधिक-से-अधिक लोगो को विना खीचे कोई आन्दोलन नही चलता है। कहने का मतलव सिर्फ इतना ही है कि वे अपनी क्राति की दृष्टि स्पष्ट रखे। हरेक तवके मे लोगो के सामने उस विचार को साफ तौर से पेश करे। किताबो के सूत्र में से अगर कोई वात निकालनी हो तो उसकी स्पष्ट और क्रातिकारी परिभाषा इस ढग से करे कि जनता की समझ मे गलतफहमी न रहे, ताकि दूसरी दृष्टि तथा सिद्धात के लोग अपने उद्देश्य की सिद्धि मे उसे इस्तेमाल न कर सकें।

: ३ :

दंड-शक्ति

विनोवाजी भूमिदान आन्दोलन को अहिंसक समाज-रचना का पहला कदम कहते है। अहिंसक समाज का मतलव है हिंसा-रहित समाज। अत हमे मलत समाज से हिंसा हटाने की वात सोचनी होगी, लेकिन हिंसा स्वत कोई चीज नही है। वह शोषण-वृत्ति का नतीजा है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करना चाहता है और अगर वह निर्विरोध शोषण करने में सफल होता है तो वह खामखा हिंसा नही करता। एक मुल्क दूसरे मुल्क का शोषण करना चाहता है और निर्विरोध शोषण करने में समर्थ होता है तो खाम-खा युद्ध नही छेडता। इस तरह हम देखेंगे कि साधारणत शोषण की वृत्ति से ही हिंसा की शुरुआत होती है।

अतएव अहिसक समाज-रचना के लिए शोपण-हीन समाज-रचना की आवश्यकता है। प्रश्न यह है कि शोपण होता है किस चीज का ? साधारणत श्रम का यानी शरीर का शोपण ही शोपण माना जाता है। लेकिन मनुष्य केवल शरीर ही नही होता। उसमे आत्मा भी होती है। अत विचार करने की आवश्यकता है कि शरीर के साथ-साथ आत्मा का भी शोपण हो सकता है, वल्कि शरीर का शोपण न होते हुए भी आत्मा का शोपण हो सकता है।

मनुष्य की आत्मा का शोपण उसकी आजादी छीनने मे होता है। वस्तुत मनुष्य की आजादी छीननेवाला सवसे वडा यत्र शासन होता है, अर्थात् शासन-यत्र मनुष्य की आत्मा के शोपण का कारण होता है, क्योकि किसी व्यक्ति पर जिस हद तक शासन का दड रहेगा उस हद तक उसकी आत्मा कुठित रहेगी। अत शोपण-हीन समाज-रचना के लिए प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि दुनिया मे दड-हीन समाज याने स्वराज्य कायम हो।

वस्तुत दुनिया की आज की मुख्य समस्या स्वराज्य की समस्या है। साम्यवादी, फॅसिस्टवादी, लोकतत्रवादी, किसी नाम से भी पुकारा जाय, आज की दुनिया मे हर मुल्क मे उत्कट तानाशाही ही चल रही है। वास्तविक लोकशाही का अस्तित्व कही नहीं दिखाई देता। जहा कही जन-तत्र का नाम है वहा भी जनता की वैसी ही हालत है जैसे कि कचहरी से अपने 'हक' की 'डिग्री' पाते हुए भी किसी किसान को अपनी जमीन का कब्जा न मिला हो।

प्रागैतिहासिक युग में

मानव-इतिहास के प्रथम युग मे मानव झुड मे रहते थे। सहयोगिता के आधार पर जिन्दगी का साधन पैदा करके स्वच्छद विचरते थे। क्रमश समाज मे प्रतियोगिता और उसके फलस्वरूप सघर्ष पैदा हुआ। स्वच्छद समाज के इस सघर्ष ने धीरे-धीरे मानव-समाज के अस्तित्व को ही खतरे मे डाल दिया। अस्तित्व कायम रखना प्रकृति की मल-वृत्ति होने के कारण

मनुष्य अपने अस्तित्व का खतरा बर्दाश्त नही कर सकता था। वह इस स्थिति से निकलने का उपाय सोचने लगा।

विभिन्न शक्तियो की विकास-क्राति

पुराणो की कथा के अनुसार मनुष्य आपसी सघर्ष से परेशान होकर आत्मरक्षा की नीयत से ब्रह्मा के पास पहुचा। ब्रह्मा ने मनुष्य पर कृपा करके उनपर राज्य करने के लिए मनु को ससार मे भेज दिया, जिससे वह सघर्ष की चौकीदारी कर सके। इस तरह ससार मे प्रतिद्वद्विता के बीज से राज-द्वद्व की सृष्टि हुई। सघर्पकाल के लिए एक मध्यस्थ के रूप मे उन्हे अपनी जिम्मेदारी सुचारु रूप मे चलाने के लिए सैनिक शक्ति की सृष्टि करनी पडी। सैनिक बल से पुष्टि पाकर धीरे-धीरे दडशक्ति अधिकतर सगठित और बलशाली होने लगी। नतीजा यह हुआ कि यह शक्ति क्रमश जन-शक्ति पर हावी होती गई। जनता भी सहूलियत के मोह से अपनी व्यवस्था और सचालन के लिए उसी राजदड पर भरोसा करने लगी। जनता की इस कमजोरी का फायदा उठा कर दड-शक्ति उसपर सिर्फ हावी ही नही हुई, बल्कि उसका निर्दलन भी करने लगी।

इस प्रकार एक मध्यस्थ के रूप मे जन्म लेकर राजशक्ति यानी दड-शक्ति जन-स्वतन्त्रता का निर्दलन करके ससार पर अपनी सत्ता कायम करने लगी। मनुष्य इस स्थिति से फिर परेशान हुआ। जिस शक्ति को उसने अपना रक्षक मानकर पैदा किया था वही शक्ति उसकी भक्षक होकर उसकी आजादी भी छीनने लगी अर्थात् उसकी आत्मा का शोषण करने लगी। फिर से मानव-समाज ने इस स्थिति में से अपने को निकालना चाहा और दुनिया मे राजतत्र को खतम करके लोकतत्र कायम करने के लिए एक महान क्राति की। हमने देखा कि फ्रास मे एक विराट विस्फोट हुआ और सारी दुनिया में वह फैल गया। दुनिया से राजतत्र खतम हो गया।

इस क्राति की चेष्टा मे मनुष्य ने एक महान भूल की। उसने राजाओ को खतम किया, लेकिन वे जिस दड-शक्ति के मालिक थे उसकी आवश्यकता को खतम नही किया। सिर्फ राजा के हाथ से उसे छीनकर पार्लमेंट के नाम

से जनता के प्रतिनिधियो की सस्था बनाकर उसके हाथ मे सौंप दिया और सोचा कि अब हमारे अपने आदमी के हाथ मे दड है, इसलिए कोई खतरा नही। देहात मे एक कहावत है, "सैया भये कोतवाल कि अब डर काहे का।" अर्थात् अब चैन से सोया जा सकता है। जनता भी प्रतिनिधियो को चुनकर चैन से सो गई, किन्तु, 'प्रभुता पाय काहि मद नाही' इस तत्व को वह भूल गई। निश्चित जनता की सुव्यवस्था और सचालन के बहाने ये नये दड-धारी अपनी विशाल शक्ति को लेकर जन-जीवन के अधिक-से-अधिक हिस्से पर कब्ज़ा करने लगे। नतीजा यह हुआ कि लोकतत्र मे राजतत्र के समय से जनता पर दड का दखल बढता गया यानी उसकी आज़ादी घटती गई, अर्थात् उसकी आत्मा का अधिक शोषण होने लगा।

आर्थिक क्राति

जिस समय ससार मे यह राजनैतिक क्राति चल रही थी, ठीक उसी समय आर्थिक क्षेत्र मे एक महान क्राति हुई। 'जेम्स वाट' द्वारा वाष्प-शक्ति मे आविष्कार के साथ-साथ आर्थिक उत्पादन के तरीके मे क्रातिकारी परिवर्तन हुआ। पहले दस्तकार अपने छोटे-छोटे औजार लेकर स्वतन्त्रता-पूर्वक ज़िन्दगी के साधन पैदा करते थे, उसका उपभोग करते थे और अतिरिक्त सामान स्वतन्त्र रूप से बेचकर अपनी दूसरी आवश्यकताओ की भी तृप्ति कर लेते थे। उत्पादन की प्रक्रिया बदल कर केंद्रित हो जाने के कारण सारी जनता का आर्थिक नि शस्त्रीकरण हो गया। वह अब स्वतन्त्र रूप से अपनी आवश्यकताओ की पूर्त्ति नही कर सकती थी। उसे ज़िन्दा रहने के लिए अब पूर्ण रूप से कारखाने या पूजीपति का भरोसा करना पडा। आर्थिक जिन्दगी पर कब्ज़ा करने के कारण इन पूजीपतियो ने स्वभावत राजदड पर भी अपना कब्ज़ा जमा लिया। नतीजा यह हुआ कि एक ही हाथ मे दड-शक्ति और उत्पादन-शक्ति दोनो होने के कारण वे जनता का अधिक शोषण करने लगे। यह शोषण सिर्फ आत्मा तक ही मर्यादित न होकर शरीर का भी होने लगा, क्योकि अपनी स्वतन्त्रता मे उत्पादन न कर सकने के कारण उत्पादक श्रमिको को अपना श्रम कारखानेदारो के हाथ मे बेचने पर मजबूर होना

पडा। श्रमिको की मजबूरी से पूजीपति उसका नाजायज फायदा भी उठाने लगे।

इस तरह पूजीवादी लोकतत्र मे जनता की हालत राजतत्र से भी अधिक खराव हो गई, क्योकि राजतत्र मे जहा जनता की आत्मा ही कुठित होती थी, वहा लोकतत्र मे जनता के शरीर और आत्मा दोनो का शोपण होने लगा, सो भी पहले से अधिक पैमाने पर। इससे भी ऊव कर मनुष्य ने वाद मे जो क्राति की, उससे उसकी आत्मा और अधिक कुठित हो गई। पहले जिस तरह राजाओ को हटा कर राजदड को पार्लमेंट के हाथ में डाल दिया उसी तरह अव केवल राजदड ही नही, वल्कि उत्पादन-यत्र भी एक ही दल के हाथ मे सौप दिया। जव दमन तथा उत्पादन के सावन एक ही गुट के हाथ मे आ गये, तव उसके लिए जनता का पूर्णरूप से निर्दलन करना आसान हो गया। दड का दवाव जनता पर और अधिक हो गया।

कहावत है, 'ज्यो-ज्यो इलाज किया मर्ज वढता ही गया।' मनुष्य जैसे-जैसे आजादी की चेष्टा करता गया, वैसे-वैसे उसके गले में शासन का फदा पडता गया। कारण यह है कि, यद्यपि मनुष्य ने इस चेष्टा में वडी-वडी क्रातिया की, भीषण आत्म-वलिदान भी किया, लेकिन उसने एक वुनियादी भूल की। उसने यह नही समझा कि उसके सिर पर दड गिरता है, दड चलाने वाला नही। इस भूल के कारण उसने यह समझा कि उसको तकलीफ दड चलाने वालो के कारण हो रही है, न कि दड के कारण। इसीलिए उसने हमेशा चलाने वालो पर ही हमला किया और दड को केवल सुरक्षित ही नही रखा, वल्कि उसका कलेवर वढाता ही गया। गाधीजी ने मानव-समाज की दृष्टि इन वुनियादी भूल की ओर आकृष्ट की। उन्होने वताया कि मनुष्य खुद दोषी नही होता, पद्धति ही किसी सुख या दुख का कारण होती है। अगर दड के आघात मे तकलीफ होती है तो दड को न हटाकर दड चलाने वालो को वदलने से कोई लाभ नही होता। अतएव अगर मनुष्य को शोपण-मुक्त होना है तो उसे दुनिया मे एक दडहीन यानी शासनहीन समाज कायम करना होगा।

जनता का स्वराज्य : एक प्रश्न ?

लेकिन प्रश्न यह है कि क्या दुनिया मे ऐसा दडहीन समाज प्रत्यक्ष दीख सकेगा ? शायद नही, क्योंकि पूर्ण स्वराज्य यानी शासनहीन समाज एक आदर्श है। आदर्श तो रेखागणित के विन्दु जैसा होता है। उसकी धारणा की जा सकती है। वह दिखाई नही देता है। लेकिन यथार्थ रेखागणित का विन्दु दिखाई नही देता है, तो भी हमे जो कुछ दिखाई देता है, यानी जितनी इमारते, सडक, पुल, कल-कारखाने आदि है, वे सब-के-सब रेखागणित के विन्दु के आधार पर ही बने हुए है। अगर कोई इजीनियर इन तमाम प्रत्यक्ष चीजो के निर्माण मे उस विन्दु का आधार छोड दे तो उपर्युक्त चीजो मे से एक भी खडी न हो पायेगी।

अतएव हमको भविष्य के समाज-निर्माण के लिए पूर्ण दड-हीन समाज के आधार पर एक व्यावहारिक रचना करनी होगी। अगर पूर्ण शासन-हीन समाज केवल आदर्श है तो नि सदेह हम कितना ही आदर्श के नजदीक क्यो न पहुचे, किसी-न-किसी रूप मे तथा हद मे शासन-दड रह ही जायगा। फिर जनता का स्वराज्य कैसे हो ? यह प्रश्न है।

दण्ड-निरपेक्ष समाज

दडहीन समाज के आदर्श पर एक दड-निरपेक्ष समाज बन सकता है, अर्थात् शासन-यत्र के अवशेष रहते हुए भी मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकता तथा समाज की सामान्य व्यवस्था और उसका सचालन दड-शक्ति के बाहर स्वतन्त्र जनशक्ति के आधार पर सगठित कर सकता है। दड-शक्ति का अस्तित्व मनुष्य के लिए उतने ही भर के लिए होगा जितने भर के लिए रेलगाडी मे जजीर होती है, अर्थात् साधारणत मनुष्य को दड-शक्ति की आवश्यकता नही होगी। सयोग अगर कभी जरूरत पडी तो उसकी शरण ले सकेगा।

गाधीजी रामराज्य की बात करते थे। विनोबाजी कहते है, राम-राज्य यानी ग्रामराज्य। ऐसे रामराज्य मे जन-कल्याण का काम जनता द्वारा यज्ञ-कार्य से सपादित होता था। यज्ञ-पुरोहित यानी जन-नायक

मन्त्रोच्चार मे गण-देवता का आवाहन करता था और सारे जन-गण उस आवाहन के अनुसार उस यज्ञ मे आहुति अर्पण करते थे। ऐसे ही यज्ञ से यानी जन-शक्ति द्वारा समाज का सारा कल्याणकारी कार्यक्रम चलता था। जब कभी यज्ञ-भग करने के लिए ताडका का आविर्भाव होता था, तभी वे रेलगाडी की जजीर के जैसा दड-शक्ति का इस्तेमाल करते थे।

वस्तुत दड-निरपेक्ष स्वराज्य कायम हो जाने की स्थिति मे भी कुछ केन्द्र-शक्ति की भी आवश्यकता होगी, स्वावलबी ग्राम-भाइयो को एक-सूत्र मे बाध रखने के लिए। लेकिन इसका स्थान क्या होगा, यही प्रश्न है? एक छोटे-से उदाहरण मे स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

पूर्ण प्रफुल्लित फूलो की माला मे एक सूत्र की आवश्यकता होती है। लेकिन अच्छी माला उसीको कहेगे, जिसमे यह सूत्र दिखाई न दे। माला मे जब सूत्र दिखाई देने लगता है तो समझना चाहिए कि वह माला सूख रही है। उसी तरह दड-निरपेक्ष स्वराजी समाज मे स्वयपूर्ण ग्राम-इकाइयो को एकसूत्र मे बाधने के लिए शासन की आवश्यकता होगी, लेकिन समाज के साधारण जीवन में वह दिखाई न देगी अर्थात् उसके अस्तित्व का अनुभव न होगा। अगर ऐसा हुआ तो समझना चाहिए कि वह स्वराज्य सूख रहा है।

अब सवाल यह है कि समाज पर से दड-शक्ति का निराकरण कैसे हो? आज दुनिया मे सपूर्ण रूप से दड-सापेक्ष समाज चल रहा है। जनता पर दड-शक्ति का कब्जा ऐसी कडाई से बना हुआ है कि वह जरा भी अपने मन से इधर-उधर नही कर सकती। हमारी क्राति की प्रगति पर विचार करते समय जनता को इस वज्रमुष्टि से निकालने के कदमो पर पहले विचार करना होगा।

: ४ :

लोक-शक्ति का निर्माण और कानून

आज की दुनिया किसी-न-किसी शक्ल की तानाशाही के नीचे दबी है। ऐसा कोई जादू नही हो सकेगा जिससे मानव-समाज उससे एकाएक बाहर निकल सके। ससार मे आज सारा मानव-समाज सपूर्ण रूप से दडसापेक्ष हो गया है। एकाएक इस दड-शक्ति का उन्मूलन करना सभव नही दीखता। अत शासनहीन समाज के आदर्श के आधार पर दड-निरपेक्ष समाज कायम करने के लिए पहली आवश्यकता यह है कि इस दड-शक्ति की एकाधिपत्यता घटाई जाय, यानी उसपर जनता की ओर से भी नियत्रण हो।

वस्तुत ससार मे लोकतत्र के नाम से आज जो चीजे चल रही है, वे वास्तविक लोकतत्र नही है। जनता से मत (Vote) लेकर कुछ लोग शासन करने चले जाय इतने मात्र से ही जनतत्र नही होता। यही कारण है कि गाधीजी ने स्वराज्य की परिभाषा करते हुए कहा था कि कुछ व्यक्तियो द्वारा अधिकार प्राप्ति-मात्र से ही स्वराज्य नही होता है, बल्कि स्वराज्य इस बात मे निहित है कि अधिकार के दुरुपयोग पर जनता के प्रत्येक व्यक्ति द्वारा विद्रोह करने की ताकत हो।

अधिकार का मोह

लोग कहते है कि जब जनता समझ-बूझ कर ऐसे लोगो को, जो अपनी जिन्दगी जनहित के काम मे ही खपाते है, वोट दे तो ऐसे लोगो द्वारा अधिकार प्राप्त होनेपर भी दुरुपयोग का खतरा कहा है? ऊपर-ऊपर विचार करने से यह बात ठीक लगती है, लेकिन मानस-चरित्र की गहराई मे जाने पर अधिकार के दुरुपयोग की सभावना स्पष्ट हो जायगी। आज के अधिकाश समाज-शास्त्री कहते है कि सपत्ति अस्थिर और स्वार्थ अजेय है। मनुष्य के कब्जे में एक बार सपत्ति आनेपर वह उसे छोडना नही चाहता, बल्कि वृद्धि ही करना

चाहता है। अत कर्तव्य से ही इस सपत्ति को छुडाया जा सकता है। लेकिन साथ-साथ वे इस बात को मानते है कि जो लोग अधिकार पा जायगे, वे सहज विवेक बुद्धि से उस अधिकार को अपने-आप सूखने देगे। लेकिन मनोविज्ञान के अध्ययन मे वे एक मौलिक भूल करते है। अगर सपत्ति न छोडने की वृत्ति मनुष्य चरित्र मे अन्तर्निहित है तो अधिकार न छोडकर उसमे वृद्धि करने की वृत्ति उससे अधिक बलवती है। मानव-समाज के इतिहास की ओर गौर से देखा जाय तो विवेक-बुद्धि से सपत्ति छोडने की मिसाले अगणित है। लेकिन अपने आप अधिकार छोडने की मिसाल नही के बराबर है। यही कारण है कि भारत के महान् मनोविज्ञान की किताबो मे, पुराणो मे यह लिखा है कि त्रिलोक मे सबसे अधिक तपस्या करनेवाले को ही इन्द्रासन मिलता है। लेकिन इन्द्रासन मिलते ही वह दूसरे की तपस्या भग करने की चेष्टा मे लगे रहते है। यह कहानी मानव-समाज से सनातन चरित्र का एक रूपक मात्र है।

अत यह स्पष्ट है कि जो भी अधिकार मे जायेगा, चाहे वह महान लोक प्रिय व्यक्ति या दल हो, अपने हाथ में अधिकार को हमेशा कायम करने की चेष्टा करेगा। इस चेष्टा में यह स्वाभाविक है कि वह दूसरे किसी के अधिकार प्राप्ति की चेष्टा को दबा देगा। दबाने की प्रक्रिया हमेशा जायज ही हो, यह कोई जरूरी नही है। इस दमन-वृत्ति के कारण अधिकार के दुरुपयोग की समस्या हमेशा बनी ही रहेगी। ऐसी हालत मे यह आवश्यक है कि जन-शक्ति इस तरह सगठित रहे कि जनता मे विद्रोही शक्ति निरन्तर कायम रहे, ताकि मौका पडने पर वे उसे तत्काल इस्तेमाल कर सके। हो सकता है कि एक लबे अरसे तक इसकी आवश्यकता न हो—फिर भी किसी समय भी आवश्यकता हो सकती है, इस बात का ध्यान रखकर जनता को उस शक्ति की उपासना निरन्तर करते रहना चाहिए। आखिर रेलगाडी मे हमेशा खतरा नही रहता, लेकिन खतरे की जजीर तो हमेशा ही रखनी पडती है, क्योकि उसकी आवश्यकता कभी भी हो सकती है।

शिव कहीं नहीं है

अब प्रश्न यह है कि जनता मे यह विद्रोही शक्ति कैसे कायम रहे। पुराण मे शिव-शक्ति की बात कही गई है। जहां समाज मे संगठन और संचालन के लिए इन्द्र की आवश्यकता है वही गणतन्त्र की रक्षा के लिए शिव का रहना भी जरूरी है। शिव वह है जो महान तपस्वी होने पर भी इन्द्रासन का इच्छुक नही है—जो गण के बीच मे गण-रूप मे ही रहता है और गण को तकलीफ होने पर ताण्डव करता है। उसी प्रकार अगर समाज की सुव्यवस्था के लिए एक अधिकारी की आवश्यकता है तो स्वराज्य की रक्षा के लिए एक गणनायक की भी आवश्यकता है। आज दुनिया मे इसी चीज का अभाव है। दुनिया मे जहा लोकशाही के नाम से भी कुछ चलता है वहा भी स्वतन्त्र गण-नायक का अस्तित्व नही है। राज्य चलाने के लिए एक पार्लमेंट बनती है जिसके हाथ मे दंड-शक्ति रहती है। देश मे दो दल बनते है, जिनमे उस शक्ति पर कब्जा करने के लिए आपस की प्रतियोगिता होती है। जो जीतता है वह अधिकार मे जाता है, जो हारता है वह पार्लमेंट मे विरोधी दल बनता है, लेकिन वह भी दंड-शक्ति का अंग माना जाता है। इसलिए विरोधी दल के नेता को भी सरकारी कोष से वेतन दिया जाता है अर्थात् पार्लमेंट के अधिकारी दल और विरोधी दल दंड-शक्ति के ही दो हिस्से है, जैसे एक ही वस्तु की दो दिशाए होती है एक उलटी और दूसरी सुलटी। जिस तरह लड़ाई मे एक सैनिक दल और एक रेडक्रास दल होता है। एक का चरित्र मारने का होता है और दूसरे का बचाने तथा सेवा करने का। लेकिन दोनो ही हिंसा शक्ति के दो बाजू है, क्योंकि दोनो युद्ध-जनित है, उसी तरह ये, पार्लमेंट के दोनो दलो मे दो चरित्र होते हुए भी दंडशक्ति के दो बाजू ही है।

यही कारण है कि आज सारी दुनिया मे तानाशाही का बोलबाला है, क्योंकि अधिकार को नियंत्रित करने के लिए स्वतन्त्र लोकशक्ति का संगठन तथा नेतृत्व रूप मे स्वतन्त्र गणनायक दल यानी शिव का अस्तित्व नहीं है। तभी महात्मा गांधी ने कहा था कि आज की दुनिया मे स्वराज्य दुर्लभ,

अमेरिका, रूस या जर्मनी कही नही है, क्योकि उन्हे कही शिव दिखाई नही दिया।

इसीलिए दड-हीन समाज की धारणा के आधार पर अगर दडनिरपेक्ष समाज कायम करना है तो उस दिशा मे पहला कदम यह होना चाहिए कि देश में एक स्वतत्र तीसरा दल हो जो लोक-सेवा के आधार पर महान तपस्वी होने पर भी दड पर कब्जा करने की प्रतियोगिता मे शामिल न हो और निरतर जनशक्ति के सगठन मे लगा रहे। यही कारण है कि विनोबाजी अपने अनुयायियो को उस प्रतियोगिता से पृथक् रहने के लिए आग्रह करते है और सर्व-सेवा-सघ भी अपने को उससे अलग रखता है।

इतना होनेपर भी एक दूसरी बात की भी आवश्यकता है। दुनिया में प्रकृति और पुरुष के सयोग से ही कोई बात फलवती होती है। केवल पुरुष या केवल प्रकृति अनुत्पादक होती है। अत अगर देश में शिव की स्थापना हुई यानी स्वतत्र नेतृत्व कायम हुआ तो भी अगर जनता की परिस्थिति अनुकूल न रही तो उस शक्ति का निर्माण नही होगा, जिसके द्वारा वह अधिकार को नियत्रित कर सके। नायक चाहे जितना तपस्वी हो, अनुकूल परिस्थिति के बिना जनता उसके इशारे पर ताडव नही करेगी। अब प्रश्न यह है कि इस परिस्थिति का स्वरूप क्या है ? और आज कौनसी परिस्थिति है, जिसके कारण जनता के अदर विद्रोही शक्ति का अभाव होगा। इसका मुख्य कारण है आर्थिक केन्द्रवाद।

पूजी का चक्कर

दुनिया में मनुष्य ने श्रम टालने के फेर में बडे-बडे कल-कारखानो की सृष्टि की और जिन्दा रहने के सारे साधनो की उत्पत्ति पूजी के आश्रित कर दी। नतीजा यह हुआ कि जनता की जान उसके शरीर के अदर से निकल कर पूजी के अदर पूजीभूत हो गई, कुछ मुट्ठी भर लोगो के कब्जो में चली गई। और यह स्वाभाविक ही था, क्योकि पूजी का स्वधर्म है कि वह एक स्थान पर इकट्ठी होकर रहे। इसलिए उसका सचालन थोडे लोगो द्वारा ही होना सभव है। जनता की जान पूजी-आश्रित हो जाने से ऐसे

गुट के कब्जे मे चली गई जिसने अधिकार पर कब्जा कर लिया। जान का कब्जा अधिकारी के हाथ मे होने पर जनता के लिए यह सभव नही रहा कि वे उसी अधिकारी के विरोध में विद्रोह करे जिसके बिना वह जिंदा नही रह सकती है।

जनता को आन की अपेक्षा जान की फिकर

यह सही है कि मनुष्य-समाज स्वतत्रता-प्रेमी होता है और स्वतत्रता के लिए काफी तकलीफ उठाने को तैयार होता है। आन के लिए जान को कुर्बान करने की भी मिसालें इतिहास मे पाई जाती है। लेकिन साधारण जनता के सामने जब आन और जान के बीच चुनने का सवाल खडा होगा तो वह आन छोड कर जान की रक्षा करने की ही फिकर ज्यादा करेगी। जो लोग जान देकर भी आन की रक्षा करते है, उनको हम शहीद कहते है और उनकी पूजा करते है, पर वे विरले है। अत मानव-समाज की जान यदि अधिकारी के हाथ मे रहेगी तो जनता अधिकारी के विरोध मे जान को खतरे मे डालने के बजाय आन को पीछे रखकर उनसे समझौता करने की ही कोशिश करेगी। अतएव अगर जनता की जान यानी जिन्दा रहने के लिए मौलिक साधन का उत्पादन पूजी-आश्रित रहा तो जनता के लिए विद्रोह करने की परिस्थिति अनुकूल नही रहेगी। ऐसी हालत मे कितना ही तपस्वी नेतृत्व पाने पर भी मनुष्य अधिकारी पर नियत्रण नही रख सकेगा, यानी वह गणतत्र की रक्षा नही कर सकेगा, जिसका सहज नतीजा तानाशाही होगी।

श्रम-आश्रित उत्पादन पद्धति की आवश्यकता

यही कारण है कि शोषण-हीन समाज यानी स्वराज्य स्थापना करने के लिये प्रथम आवश्यकता एक महान् आर्थिक क्रान्ति की है। अर्थात् आज जो पूजी-आश्रित उत्पादन-पद्धति चल रही है उसे समाप्त कर श्रम-आश्रित उत्पादन-पद्धति कायम करने की आवश्यकता है। बहुत-से दूसरे लोग भी 'पूजीवाद का नाश हो' का नारा लगाते है, लेकिन वे पूजीवाद यानी पूजी-आश्रित उत्पादन-पद्धति को खत्म करने की चेष्टा न करके पूजीपति को खत्म

करने की चेष्टा करते है। वस्तुत पूजीपति को खत्म करने से ही समस्या का समाधान नही होगा। पूजीवाद का ही मूलोच्छेद करना होगा। गाधीजी कहते थे कि समाज की परेशानी का कारण व्यक्ति नही, पद्धति है। इसलिए पूजी का कौन सचालन करे, इसकी फिकर न कर पूजी-आश्रित आर्थिक पद्धति रहे या न रहे, इसपर भी विचार करना चाहिये। अगर जिन्दगी की मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पूजी की अनिवार्य आवश्यकता रह जाती है और पूजीपति खत्म होता है तो वह पूजी पूजीपति के स्थान पर किसी दलपति के कब्जे मे चली जायगी और जनता की जान पूजीपति वर्ग की मुट्ठी से निकल कर दलपति की वज्रमुष्ठि के नीचे चली जायगी। अर्थात् एक वर्गीय तानाशाही के स्थान पर एकदलीय तानाशाही कायम होगी।

भूमि पूजी के कब्जे से निकले

उत्पादन का मौलिक साधन भूमि ही है। इसलिए अगर पूजीवाद को खत्म करके श्रमवाद की स्थापना करना है तो उसका पहला कदम भूमि को पूजी के कब्जे से निकाल कर श्रम के ही कब्जे मे डालना होगा अर्थात् भूमि का फल उसीको मिलना चाहिए जो उसपर श्रम करे। इसीलिए विनोबाजी कहते है कि भूमि-दान-यज्ञ गरीबो को राहत पहुचाने का एकमात्र सामान्य साधन है और यह न सिर्फ तात्कालिक बेकारी दूर करने का एक जरिया है, बल्कि यह यज्ञ एक महान क्रान्ति का पहला कदम है। इसीलिए वह केवल भूमि-वितरण की बात नही करते है, बल्कि भूदानयज्ञ और केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार आन्दोलन को अभिन्न मानते है और अपनी भाषा में दोनो को 'सीता-राम' कहते है।

अत जो कार्यकर्त्ता भूमिदान-यज्ञ को एक सामान्य परोपकारी कार्यक्रम न मानकर शासनहीन तथा शोषण-हीन समाज कायम करने के उद्देश्य में एक क्रान्तिकारी कदम मानते है, उन्हें भूमिदान-आन्दोलन के साथ-साथ केन्द्रित उद्योग बहिष्कार आन्दोलन का आग्रह कडाई के साथ करना पडेगा तथा जनसमाज को श्रमवाद के इस क्रान्तिकारी पहलू को गहराई से समझना पडेगा, नही तो गणतत्र कायम करने का यह क्रान्तिकारी

आन्दोलन प्रति-क्रान्तिकारी शक्ति के कब्जे मे जाकर ससार में तानाशाही कायम करेगा ।

हमारा उद्देश्य शासनहीन समाज-रचना

इस तरह हमारा कार्यक्रम स्पष्ट होता है । हमारा अतिम उद्देश्य शासनहीन यानी दडहीन समाज कायम करने का है, जिसका व्यावहारिक रूप दड-निरपेक्ष समाज है । ऐसा समाज कायम करने के लिए हमारा तात्कालिक आन्दोलन आज के पूर्ण दड-सापेक्ष-समाज को जनता के नियत्रण मे लाने का है । इस दिशा मे जनता की जान दडशक्ति के बाहर निकालने का सक्रिय कदम उठाना होगा । ऐसा तभी हो सकता है जब जनता की मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति तथा समाज की आतरिक व्यवस्था और सचालन के लिए मनुष्य की केन्द्रीय पूजी अवलबित उत्पादन-पद्धति को छोड कर विकेन्द्रित श्रम-अवलबित उत्पादन-पद्धति को अपना कर स्वावलबी हो ।

हमारे जो साथी उपर्युक्त उद्देश्य को भली-भाति समझ गये है, वे, जल्दी से कानून क्यो नही बनता है, इसके लिए परेशान नही होगे । वस्तुत आज जो कार्यकर्त्ता तथा करीब-करीब दूसरे सभी लोग यह कहते है कि फौरन कानून बन जाय और जमीन का बटवारा हो जाय, इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि लोगो ने भूमिदान-यज्ञ के मूलतत्व को नही समझा है । शासनहीन समाज कायम करने की क्रान्ति की शुरुआत मे ही शासन का भरोसा अगर करना हुआ तो उसका नतीजा वही होगा जो रूस मे हुआ । अर्थात् निरतर शासन के सहारे ही समाज का सगठन, सचालन तथा सामाजिक समस्याओ का समाधान करना होगा । फिर शासननिरपेक्ष काम कौनसा होगा ।

भूमि की समस्या आज की दुनिया की एक महान समस्या है । एशिया के लिए तो यह प्रथम महत्व की समस्या है । अगर शासन की अपेक्षा तोडनी है, तो हमे सबसे बडी समस्या के समाधान मे ही शासन-निरपेक्ष होकर काम करना होगा, क्योकि भूमि समस्या जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न का हल करने मे अगर हम दडशक्ति को ताक पर रख कर केवल जनशक्ति के आधार पर ही कामयाब हो जाते है, तो शासन की आवश्यकता को खत्म करने की

दिशा में हम एक बहुत बडा किला फतह कर लेते है। अगर इतनी महान समस्या का समाधान स्वतत्र जन-शक्ति से ही हो गया तो उस शक्ति के लिए आज जो छोटे-छोटे सरकारी महकमे चल रहे है उन्हे अनावश्यक कर देने मे देरी लगेगी।

शकाशील व्यक्ति पूछेगे कि क्या बिना कानून के आप इस समस्या का हल कर सकेगे? जनशक्ति पर विश्वास करनेवाले व्यक्ति को शका ही नही होगी। लेकिन थोडी देर के लिए अगर मान भी ले कि तत्काल पूर्ण सफलता कानून के बिना नही होगी, तो भी जिस हद तक वह कामयाब होगी उस हद तक दड-शक्ति की आवश्यकता खत्म होगी। यानी क्रान्ति की दिशा मे प्रगति होगी। कोई भी क्रान्तिकारी पहले से ही यह मान नही सकता कि हमारी क्रान्ति असफल होगी। अतएव जो लोग शासन-हीन समाज की क्रान्ति की बात सोचते है उन्हे शुरू से ही शासन की आवश्यकता को समाप्त करने की बात सोचनी होगी। और यह होगा तब जब वे निरतर शासन के बिना ही सामाजिक समस्याओ का समाधान करने की चेष्टा करते रहेगे। क्रान्ति की बात तो दूर रही, सामान्य युद्ध में भी जिस मुल्क को दखल करना होता है उसकी दखल की चेष्टा प्रथम से ही होती है। और अगर पूरा दखल नही भी हुआ तो जितना दखल हुआ उतनी कामयाबी वे मानते है। क्रान्ति की भूमिका में यह बात तो और जरूरी है।

भूमि और कानून

बहुत-से मित्र कहते है कि विनोबाजी भी तो कानून की बात करते है। वे उसी तरह से विनोबाजी के शब्द को उद्धृत करते है जिस तरह बहुत से लोग गाधीजी के शब्द उद्धृत करके कहते है कि वे भी तो हिंसा को मानते थे। गाधीजी ने कहा था कि अगर मुझे कायरता और हिंसा के बीच किसी को चुनना होगा, तो मै कायरता से हिंसा को अधिक पसद करूगा। उसी तरह विनोबाजी ने कहा है कि अगर बिना कानून बनाये यज्ञ से ही भूमि की समस्या हल हो गई तो मै नाचूगा। मगर आखिर कानून का सहारा लेना ही पड़ा तो उसे मै बर्दाश्त कर लूगा। इसका मतलब हुआ कि जिस तरह

गांधीजी अहिंसा को ही मानते थे, लेकिन अगर उन्हें कायरता और हिंसा के बीच चुनना पडता तो हिंसा को चुनते, उसी तरह विनोबाजी दंड-शक्ति के बिना ही भूमि समस्या हल करनेके सिद्धान्तको मानते है, लेकिन अगर उनको वर्तमान विषमता कायम रखना और दंड-शक्ति के सहारे भूमि का विभाजन करने के बीच चुनना पडा तो वे वर्तमान परिस्थिति कायम रखने के मुकाबले मे कानून के सहारे से भी परिस्थिति बदलना पसद करेगे, अर्थात् विनोबाजी उसी अर्थ मे कानून के सहारे अपना काम करने की बात मानते है, जिस अर्थ मे गाधीजी हिंसा को मानते थे।

फिर अगर भूमिदान यज्ञ मे भूमि का बटवारा हो गया तो क्या मुल्क मे भूमि-संबधी कोई कानून रहेगा ही नही ऐसी बात नही है। जबतक समाज पूर्ण राज्यहीन नही होता, तबतक समाज मे कानून रहेगा। लेकिन वह कानून भूमि-समस्या का समाधान होनेपर रजिस्ट्री करने के तरीके मे विधिवत् करना मात्र होगा, न कि कानून से भूमि बाटना होगा। आखिर अमेरिका, आयरलैंड या हिन्दुस्तान की स्वतत्रता का कानून पार्लमेंट मे ही बना था। तो क्या कोई कहेगा कि पार्लमेंट के कानून से ही इन मुल्कों को आजादी मिली। शायद ही कोई ऐसा सोचता होगा। हरएक समझदार व्यक्ति यह समझता है कि जनता द्वारा स्वतत्रता-युद्ध के सफल नतीजे से ही इन मुल्कों को आजादी मिली। जैसे स्त्री-पुरुष ने अगर आपस मे शादी तय करके रजिस्ट्रार के पास उसकी रजिस्ट्री करा ली, तो कोई यह नही कहेगा कि रजिस्ट्रार साहब ने कानूनन यह शादी करा दी। उसी तरह भूमिदान-यज्ञ के सफल होने पर भी उस पर विधान सभा की मुहर पडेगी। वह मुहर ठीक उसी तरह पडेगी जिस तरह उपर्युक्त मुल्कों की आजादी को वैधानिक बनाने के लिए पार्लमेंट की मुहर लगी या शादी की रजिस्ट्री हुई।

: ५ :

वर्ग-परिवर्तन की ओर

आजादी छीनने से आत्मा का शोपण होता है और शरीर का शोषण होता है श्रम-उपार्जित सामग्री के छीनने से । शरीर के शोषण की दिशा मे आज समाज इतना आगे बढ गया है कि श्रमिक परेशान है । वस्तुत जिस तरह राजनैतिक क्षेत्र मे तानाशाही की समस्या आज का मुख्य सवाल है, उसी तरह सामाजिक क्षेत्र मे वर्ग-विषमता के सकट ने आज सबसे ऊपर का स्थान ले लिया है । समाज आज दो निश्चित तथा विरोधी वर्ग मे विभाजित हो गया है । एक वर्ग उत्पादन करता रहता है और दूसरा व्यवस्था के बहाने उत्पादित सामग्री का उपभोग करता रहता है । साधारण भाषा मे कहे तो कहना होगा कि एक मेहनत करके खाता है और दूसरा दलाली करके, और हम अक्सर एक को 'मजदूर' और दूसरे को हुजूर कहते है ।

लेकिन वर्ग-विषमता की यह सामाजिक समस्या कोई स्वतत्र समस्या नही है । यह राजनैतिक तथा आर्थिक केन्द्रीयकरण का नतीजा-मात्र है । इस बात को विशेप रूप से समझना चाहिए । आखिर हुजूर लोग मजूरो का शोपण किस तरह करते है ? इस पर से बचपन मे पढी हुई बिल्ली और बदर की एक छोटी-सी कहानी याद आती है । दो बिल्लिया मेहनत करके रोटिया लाई थी और बदर उस रोटी का माकूल बटवारा करने के बहाने उसे खा गया । उसी तरह मजदूर रोटी उत्पादन करता है और हुजूर लोग उसका इन्तजाम करने के बहाने खा जाते है । मजदूर केवल पेट पर हाथ रखकर ताकते रहते है ।

यही कारण है कि आज ससार मे चारो ओर से वर्गहीन समाज कायम करने की माग सुनाई पडती है, लेकिन यह वर्गहीन समाज कायम कैसे हो ? अगर दुनिया में एक ही वर्ग रखना है तो वह मजदूरो का यानी श्रमिको का ही एक वर्ग हो सकता है, क्योकि हुजूर वर्ग यानी व्यवस्थापक वर्ग अकेला

अपने पैर पर खडा नही रह सकता। अतः वर्गहीन समाज कायम करने के लिए आवश्यक है कि इस हुजूर वर्ग का लोप हो। इस वर्ग को विघटित करने का तरीका तभी मालूम हो सकेगा जब हम इसके सगठित होने के इतिहास को समझ ले।

हुजूर-वर्ग के सगठन का इतिहास

मानव-समाज के प्रथम युग मे सभी लोग मजदूर थे—सब उत्पादन करके खाते थे और सब सहयोगिता के आधार पर झुड में रहते थे। इसी कारण हमारी किताबो मे लिखा है कि सत्य-युग मे एक ही वर्ग था। बाद को जब समाज मे प्रतियोगिता का आविर्भाव हुआ तथा आपसी सघर्ष के नतीजे मे हिंसा होने लगी, तो मनुष्य ने राजा की सृष्टि की, यानी राज्य के रूप मे एक ऐसी सस्था की सृष्टि की जिसमे कुछ लोग बिना उत्पादन किये व्यवस्था करके अपना गुजारा कर सकते थे। इस तरह राज्य-पद्धति के आविष्कार से हुजूर-वर्ग की सृष्टि हुई। जैसे-जैसे राज्य-प्रथा केन्द्रित और विस्तृत होती गई वैसे-वैसे उसीके सहारे हुजूर-वर्ग का विस्तार हुआ। उसी तरह मनुष्य ने श्रम टालने के लिए पूजी के आधार पर जिस उत्पादन-पद्धति का आविष्कार किया उसी पद्धति के अनुसार उद्योग-धधो के सचालन तथा उत्पादित सामग्री के वितरण के बहाने एक दूसरी जाति के हुजूरो की विराट फौज खडी हो गई। दोनो मिलकर मजदूर पर इतना अधिक बोझ हो गया कि आज मजदूर उसके नीचे दबकर मरना चाहता है।

हुजूर बनाने के कारखाने

सिर्फ इतना ही नही, मौजूदा शिक्षा-पद्धति की खराबी के कारण शिक्षित समाज के लोगो मे किसी प्रकार के उत्पादन का काम न कर सकने के कारण उनमे से जो लोग व्यवस्था तथा वितरण-कार्य नही करते है, वे भी किसी-न-किसी तरीके से मजदूरो के कन्धो पर बैठ रहते है। वस्तुतः आज के स्कूल और कालेज हुजूर बनाने के कारखाने मात्र बन गए है। अतएव जैसे-जैसे इन कारखानो से लोग निकलते जाते है वैसे-वैसे मजदूरो के कन्धो पर बोझ बढाते रहते है। चाहे [illegible] से लेकर बाजार की सडक पर गोष्ठी करनेवाला [illegible]

लोग कहते हैं, कि यह शिक्षा-पद्धति बदलनी चाहिए, लेकिन ऐसा हो कैसे ? अगर किसी देश में चीनी की ही माग हो तो चीनी का कारखाना तोडकर आटे का कारखाना नही कायम किया जायगा । राजनैतिक तथा आर्थिक उत्कट केन्द्रीयकरण के कारण व्यवस्थापक और वितरक की ही माग आज समाज मे भरपूर है । जबतक यह माग इसी तरह कायम रहेगी तबतक हुजूर बनाने की कारखाने रूपी-शिक्षा सस्था की तबदीली नही हो सकती है। इसलिए सबसे पहले आर्थिक तथा राजनैतिक क्रान्ति और परिणामस्वरूप सामाजिक क्रान्ति करनी होगी, तभी बाकी बाते हो सकती है ।

राजनैतिक तथा आर्थिक केन्द्रीयकरण के नतीजे से आज मजदूरो के कन्धो पर हुजूरो के बोझ की वृद्धि के कारण केवल मजदूर ही दबकर मर रहा है, ऐसी बात नही है, बल्कि सख्याधिक्य होने के कारण हुजूर लोगो को भी मजदूरो के शरीर से इतना रस नही मिल रहा है, जिससे वे मोटे-ताजे रह सके, इसलिए वे भी सूखकर मर रहे है । इस प्रकार आज दोनो के सामने सकट खडा है यानी सारा ससार ही वर्ग-विषमता की आग से भस्म होना चाहता है । ऐसी हालत में आवश्यकता इस बात की है कि तत्काल और तुरत एक महान् क्रान्ति के द्वारा पूर्ण रूप से एकवर्गीय समाज कायम हो, अर्थात् हुजूर-वर्ग के विघटन से मजदूरो का ही एक अद्वैतवादी समाज कायम हो ।

क्रान्ति की दो प्रक्रियाए

प्रश्न रह जाता है कि इस क्रान्ति की प्रक्रिया क्या हो ? दो ही तरीके हो सकते है, एक वर्ग-सघर्ष का हिंसात्मक तरीका । दूसरा वर्ग-परिवर्त्तन की अहिंसात्मक क्रान्ति । एक विनाशकारी तरीका, दूसरा क्रान्तिकारी तरीका । पहले तरीके से मजदूर द्वारा हुजूरो के उन्मूलन की चेष्टा होगी और दूसरे तरीके मे हुजूर मजदूर बनकर मजदूरो में विलीन होगे । पहले तरीके की दूसरे मुल्को में काफी आजमाइश हो चुकी है और हमने देखा कि उसका कोई नतीजा नही निकलता है, बल्कि एक समस्या से निकलकर दूसरी उससे जटिल समस्या के नीचे समाज पड जाता है । रूस मे उन्मूलन की चेष्टा हमने देखी । वहा हुजूर-वर्ग खतम नही हुआ । उनकी केवल चोटी

ही कट गई। सारा शरीर ज्यो-का-त्यो रह गया। पूजीपतियो का नाश हुआ नही, लेकिन वहा इतना जबरदस्त एक व्यवस्थापक राज्य कायम हुआ कि इस व्यवस्था के नाम पर ही हुजूर-वर्ग का इतना अधिक सगठन हुआ कि मजदूर पूर्णरूप मे उसके नीचे दब गया। पूजीपति रूपी चोटी रहनेपर जनता कभी-कभी उसे पकड भी सकती थी, लेकिन अब तो उससे भी हाथ धो बैठी और एक भयकर सगठित दल की मुट्ठी के नीचे चली गई।

उन्मूलन की प्रक्रिया हिसा की प्रक्रिया है। इसलिए इस तरीके से केवल ऊपर लिखे मुताबिक तात्कालिक और व्यावहारिक सकट ही आयगा, ऐसी बात नही। मानव-समाज मे एक स्थायी सकट कायम हो जायगा। आखिर हम वर्ग-विषमता क्यो दूर करना चाहते है? इसलिए कि हम हिसा से मुक्त होकर दुनिया मे शाति कायम कर सके। हिसा को मानने वाले कहते है कि वे भी दुनिया मे हिसा खत्म करके शान्ति कायम करना चाहते है परन्तु वे कहते है, काटा निकालने के लिए काटा ही चाहिए, मालिश से वह नही निकलेगा। यानी हिसा से ही हिसा का अन्त होगा, प्रेम से नही। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या हिसा से हिसा का अत होगा? जो लोग इस प्रकार सोचते है वे विज्ञान को भूल जाते है। विज्ञान का कहना है कि हरेक क्रिया की समान प्रतिक्रिया होती है और इस क्रिया-प्रतिक्रिया का घात-प्रतिघात अनन्त काल तक चलता है। अत अगर हिसा की क्रिया होगी तो उसकी प्रतिक्रिया प्रतिहिसा ही होगी और हिसा-प्रतिहिसा का घात-प्रतिघात अनन्तकाल तक चलता रहेगा। फिर किस काल मे जाकर हिसा समाप्त होकर शान्ति की स्थापना होगी।

इसलिए गाधीजी हमसे वर्ग-परिवर्तन की अहिसक क्रान्ति करने का आवाहन करते रहे है।

वे हुजूर-वर्ग को सामाजिक उत्पादन मे शामिल होकर उत्पादन वर्ग मे विलीन होने के लिए कहते थे और उसका सक्रिय कार्यक्रम देश के सामने रखते थे। सन् [illegible] मे जेल से निकलते ही उन्होने कहा कि अग्रेज तो ना

रहे है और शायद हम जैसा समझते है, उससे जल्दी ही जायगे। अब हमे शोषण-हीन समाज कायम करनेके लिए सक्रिय कदम उठाना है। इसके अमल के लिए उन्होने कहा कि जो लोग खादी पहनना चाहते है,उन्हे दो पैसे प्रति रुपये का सूत कातना ही होगा। उसी तरह उन्होने कहा कि जो लोग खाना खाना चाहते है,उन्हे अपने हाथ से अन्न-उत्पादन करना ही है। इन बातो पर वे यहा तक जोर देते थे कि कलकत्ते के लोगो के यह कहनेपर कि उनके पास जमीन कहा, जहा वे अन्न उत्पादन कर सकते है, उन्होने कहा कि गमले मे ही सही, लेकिन नियमित रूप से अन्न-उत्पादन की प्रक्रिया हरएक को अपने हाथ से करनी ही है। यह स्पष्ट है कि गाधीजी जैसे व्यावहारिक क्रान्ति-कारी व्यक्ति यह नही समझते थे कि दो पैसे के सूत कातने-मात्र से या गमले मे अन्न-उत्पादन करने से देश के अन्न-वस्त्र की समस्या हल हो जायगी या उतने ही से हुजूर-वर्ग के लोग मजदूर बन जायगे, लेकिन क्रान्ति तो पहले विचार-क्षेत्र मे ही होती है। गाधीजी सामान्य लाक्षणिक उत्पादन से पहले लोगो के दिमाग मे क्रान्ति लाना चाहते थे ताकि वे निरन्तर अपने हाथ से उत्पादन करने के महत्व को समझे और थोडा-सा उत्पादन करके उत्पादक वर्ग मे सम्मिलित होने की क्रान्ति मे शामिल है, यह बात जाहिर करे यानी गाधीजी के इस आन्दोलन के रजिस्टर मे नाम लिखा ले।

इसी प्रकार वर्ग-परिवर्तन की क्रान्ति की दिशा मे दूसरे हल्के-हल्के सक्रिय कार्यक्रम रखते थे। वे बाबू वर्ग के लोगो को अपने व्यक्तिगत काम के लिए घरेलू नौकर से काम न लेने की बात कहते थे। अपने आदर्श के अनुसार सचालित आश्रमो मे पाखाना-सफाई से लेकर खाना बनाने तक सभी काम अपने हाथसे करने की विधि रखकर श्रम-प्रतिष्ठा पर जोर देते थे। अन्त मे उन्होने वर्ग परिवर्तन का एक महान् क्रान्तिकारी तथा व्यावहारिक कार्यक्रम दुनिया के सामने रक्खा, वह था शिक्षा-पद्धति मे आमूल परिवर्तन। उन्होने कहा कि शिक्षा के लिए वर्तमान हुजूर बनाने के कारखाने को बद कर दिया जाय और सारी शिक्षा-योजना शरीर-श्रम द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया के माध्यम से ही बनाई जाय। ऐसा करने से मजदूर वर्ग के लोगो

को शिक्षित करने मे उन्हें मजदूरी के कार्य से उखाडने की आवश्यकता नही होती है और मजदूर रहते हुए वे शिक्षित हो जाते है। बाबू लोगो के लडके भी बचपन से ही उत्पादन-कार्य मे अभ्यासी होने कारण समर्थ उत्पादक बन जाते है। इस तरह नई तालीम के द्वारा देश मे शिक्षित तथा वैज्ञानिक मजदूरो का एक वर्गीय समाज कायम हो जाता है।

समग्र ग्राम-सेवा का कार्य

गाधीजी उपर्युक्त मनोविज्ञान तथा शैक्षणिक कार्यक्रम मात्र से ही सतुष्ट नही थे। यह सही है कि अहिंसा मे इन प्रक्रियाओ का सबसे अधिक महत्व है, लेकिन साथ ही अगर समाज-व्यवस्था मे आमूल परिवर्तन किया जाय तो प्रतिकूल परिस्थिति मे मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षणिक कार्यक्रम भी विफल हो सकता है। इसलिए वे देश को एक महान सामाजिक क्रान्ति के लिए तैयार करना चाहते थे। इस दिशा में उन्होने मुल्क के सामने समग्र ग्राम-सेवा द्वारा जन-स्वावलबन का कार्यक्रम रक्खा। जहा वे हुजूरो के विवेक पर असर कर उन्हें मजूर बनने की प्रेरणा देते थे, वही वे देहाती उत्पादक वर्ग के लोगो मे इस बात की चेतना पैदा करना चाहते थे कि वे हुजूरो की उन सेवाओ को इन्कार करने की शक्ति सगठित करे, जिनके बहाने हुजूर लोग उनका शोषण करते रहे है, अर्थात् बन्दर और बिल्ली की कहानी की भूमिका मे अगर रहा जाय तो जहा वे बन्दरो को अपने आप रोटी पैदा करके गुजर कर शोषण छोड देने की बात कहते थे, वहा बिल्लियो को अपने आप रोटी बाट कर खाने का सदेश सुनाते थे, ताकि उन्हे किसी दूसरे के पास रोटी बटवाने की सेवा लेने के लिए न जाना पडे।

कोई-न-कोई जरिया ढूढ लेगा, यानी वे स्वावलवी समाज की वात न सोच कर सचालित समाज की ही वात करेगे, क्योकि ऐसे समाज मे सचालक का काम करने के लिए उनकी आवश्यकता होगी, अर्थात् नेतृत्व अगर जिनके हाथ मे आज है उन्ही पर रह गया तो आन्दोलन को धोखा होने की पूर्ण सभावना रहती है। इसलिए गाधीजी ने पहला नारा यह लगाया कि हमे इस समाज क्रान्ति के लिए सात लाख नौजवान चाहिए, जो सात लाख गावो मे जाकर अपना वर्ग-परिवर्तन कर उत्पादक श्रम द्वारा अपना गुजारा करें और समग्र ग्राम-सेवा से प्रत्येक देहात को स्वयपूर्ण बनावें।

गाधीजी ने यह स्पष्ट रूप से देख लिया था कि आज मजदूर वर्ग वेहोश है। अत उनका नेतृत्व किसी वाहोश व्यक्ति को ही करना होगा। ऐसा होश हुजूर-वर्ग के लोगो मे ही है, अत उन्हीको मजदूर वनकर नेतृत्व तवदीली का उद्देश्य सिद्ध करना होगा। वस्तुत मजदूर से कहा जाय कि तुम अपना काम अपने आप चलाओ और दूसरे द्वारा अपने को शोषित न होने दो, पर ऐसी वात कहे कौन ? क्या हम कहनेवाले उनसे यह वात कहे कि हम तुम्हें रास्ता वताने की सेवा देते है, अत हमारी सेवा तो ले लो और उसके एवज मे हमको विना पैदा करके खाने दो लेकिन दूसरे की ऐसी सेवा लेने से इन्कार करो ताकि वे विना पैदा करके तुम्हारे श्रम से उत्पादित सामग्री का उपभोग न कर सकें, क्या ऐसा कहना सुसगत होगा ? इस प्रकार विश्लेषण कर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ग-हीन समाज की क्रान्ति के नेतृत्व के लिए सवसे पहले देश के हुजूर-वर्ग के नौजवानो को मजदूर वनकर मजदूरो में विलीन होना होगा और शोषण की प्रक्रिया से असहयोग करने का आन्दोलन चलाना होगा, वरना वर्गहीन समाज की वात कोरे आदर्श के रूप में रह जायगी।

इस तरह सात लाख नौजवानो को मजदूर वन कर मजदूरो का प्रत्यक्ष नेतृत्व स्थापित करने के वाद देहाती जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति तथा आतरिक व्यवस्था के लिए स्वावलवी वनाने का सगठन करने को कहा, जिससे वे समाज में अति विकसित व्यवस्थापको तथा वितरको

के हाथ मे मुक्ति पा सके। इस दिशा मे उन्होने चरखा सघ आदि सस्थाओ के कार्यक्रमो मे आमूल परिवर्तन किया जिससे सभी कार्यक्रम पूर्ण ग्राम-स्वावलबन की दिशा मे चल सके।

सक्षेप मे गाधीजी ने परिवर्तन की दिशा मे दुनिया को दुबारा मत्र दिया। शोषक वर्ग को शोषण छोडकर उत्पादक बनने के लिए उनकी विवेक बुद्धि को जाग्रत किया और शोषित वर्ग को शोषण मे असहयोग करने का सगठन करने को कहा, जिससे शोषक वर्ग को अब शोषण करने की गुजाइश नही रह जायगी, ताकि परिस्थिति की मजबूरी के कारण वे अपने को मजदूर बनाकर वर्ग-परिवर्तन की क्रान्ति की ओर अग्रसर हो सके।

व्यक्ति नही, पद्धति बदलनी है

उपर्युक्त आन्दोलन के सदेश से उन्होने दुनिया को एक नया मत्र दिया। उन्होने क्रान्ति का एक नया क्रान्तिकारी तरीका बताया। जैसा कि हमने पहले ही कहा है, व्यक्ति कुछ नही है, पद्धति ही असली चीज है। उसीके कारण मनुष्य सुखी या दु खी होता है। अत अगर दु ख से मुक्त होना चाहते हो तो पद्धति बदलो, न कि व्यक्ति। वस्तुत केन्द्रीय राज्यवाद तथा पूजीवाद के कारण व्यवस्था-वितरण का जो कार्य है उसी ने हुजूरो की आवश्यकता की सृष्टि की और जबतक समाज मे उस कार्य की आवश्यकता रहेगी तबतक यह वर्ग किसी-न-किसी नाम से कायम रहेगा। इसलिए गाधीजी विकेन्द्रित तथा स्वावलबी उत्पादन और व्यवस्था द्वारा उस कार्य को ही समाप्त करना चाहते थे, जिसके कारण आज की वर्ग-विषमता का सकट ससार भर मे फैल गया है।

श्रम-विभाजन की बात

व्यक्तियो मे विभिन्न शक्तिया होती है और समाज की उन्नति के लिए उन शक्तियो का पूर्ण उपयोग होना चाहिए। ऐसा कहकर श्रम-विभाजन के वहाने वे कुछ लोगो को मानसिक श्रमवाले और कुछ लोगो को शारीरिक श्रमवाले वनाने की वात करते है और कहते है कि दोनो ही श्रमिक होने के कारण एक ही वर्ग मे शामिल हो सकते है। विनोवाजी के शब्दो मे वे श्रमिक वर्ग मे भी राहु और केतु के रूप मे वर्ग करते है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या 'मानसिक श्रमिक और शारीरिक श्रमिक के रूपमे दो वर्ग चलाने पर वर्गहीन' समाज का उद्देश्य सिद्ध होगा ? फिर तो मानसिक श्रम वाले शारीरिक श्रमवालो पर हुकूमत कर उनका शोषण ही करने लगेगे।

आश्चर्य की वात यह है कि जो लोग मानसिक श्रमिक और शारीरिक श्रमिक के रूप मे दो वर्ग रखना चाहते है वे प्राचीन वर्ग-व्यवस्था के खिलाफ है। वे अपने को प्रगतिशील कहकर वर्गप्रथा को प्रतिक्रियावादी व्यवस्था कहते है। वस्तुत अगर वौद्धिक श्रमिक तथा शारीरिक श्रमिक यानी ब्राह्मण और शूद्र रूपी दो वर्ग रखना है तो समाज की उन्नति के लिए वर्ण-व्यवस्था ही ज्यादा व्यावहारिक है, क्योकि अगर दो अलग ही वर्ग रखना है तो पैतृक गुण का लाभ समाज को क्यो न मिले ?

वे पद्धति के नियम और विज्ञान की वात करते है। क्या उनके वैज्ञानिक प्राणितत्व मे ऐमी वात भी है कि कुछ लोगो का केवल मस्तिष्क वना है और कुछ का शरीर। कुदरत ने मनुष्य को शरीर और मस्तिष्क दोनो दिया है। उसने मानव को वौद्धिक तथा शारीरिक शक्ति दोनो से विभूपित किया है इसलिए कि प्रत्येक मनुष्य दोनो को चलाकर प्रकृति में से ही अपनेको जिन्दा रखने का साधन निकाल ले और सृष्टि की रक्षा करता रहे। अगर मनुष्य इस नियम का उल्लघन कर अपने को मानसिक श्रमिक और शारीरिक श्रमिक मे विभाजित करले तो वह प्रकृति का विद्रोह करता है और प्रकृति इस द्रोह का प्रतिशोध लेकर ही रहेगी। आज हम दुनिया में जो वर्ग-विषमता का ज्वालामुखी देख रहे है, वह कोई खास वात नही है, वह

प्रकृति द्वारा प्रतिशोध का प्रदर्शन मात्र है। अतएव अगर हम समाज को स्थिर तथा शांत देखना चाहते है तो हमे वर्ग परिवर्तन की क्रान्ति बुलंद कर मानव-समाज मे इस द्रोह का अन्त करना ही होगा।

भूदान-यज्ञ और वर्ग-परिवर्तन

संत विनोबा द्वारा प्रवर्त्तित भूदान-यज्ञ वर्ग-परिवर्तन-क्रान्ति का एक महान तथा व्यावहारिक कदम है। वस्तुत आज भूमिहीन मजदूर अत्यन्त शोषित वर्ग है और इसका शोषण इसलिए होता है कि उत्पादन का मूल साधन भूमि पूजी के कब्जे मे है। भूमिपति, जिन्होने पूजी लगाकर जमीन प्राप्त की है, श्रमिकों के श्रम से लाभ उठाकर उच्च वर्ग यानी हुजूर-वर्गीय बने हुए है। विनोबाजी, भूमि किसी की संपत्ति नही है, यह सिद्धान्त बताकर कहना चाहते है कि भूमि की उत्पादित सामग्री उन्हीके उपभोग मे आनी चाहिए, जो उस पर श्रम करे। इस सिद्धान्त के अनुसार वे भूमिपतियो को भूमिपर श्रम कर अपनेको मजदूर वर्ग मे परिवर्तित करके मजदूरो मे विलीन होने को कहते है। भूमिदान कहता है कि जिनके पास अधिक भूमि है वे जितने पर खुद अपने शरीर-श्रम से पैदा कर सकते है उतनी अपने पास रख कर बाकी भूमि उनको दे दे, जो उसपर परिश्रम तो करते है, लेकिन जिनके पास भूमि नही है।

विनोबा की चेतावनी

उपाय निकालेगी । यही कारण है कि आज का जमाना पुकार-पुकार कर वर्गहीन समाज की माग कर रहा है । मैंने कहा है कि वर्गहीन समाज दो ही तरीके से कायम हो सकता है । मजदूर द्वारा हुजूरो का कत्ल या हुजूरो का मजदूर वनकर मजदूरो मे विलीन होना । आज विनोवा सहात्मा गाधी के विलीनीकरण के मत्र से हुजूरवर्ग को दीक्षित करना चाहते है । अगर हुजूर घृणा, शान या क्रोध के कारण इस दीक्षा को इन्कार करते है तो वे देश और दुनिया और उनके साथ-साथ अपनेको ज्वालामुखी के मुख पर ढकेलते है ।

वस्तुत आज भारत के नौजवानो पर एक वडी जिम्मेदारी आ पडी है । आज के युग ने एक महान चुनौती दी है। इस चुनौती की वात विनोवाजी देश भर मे घूम कर लोगो के कानो तक पहुचा रहे हैं । वह वात है कि क्या नौजवान वर्ग विपमता के ज्वालामुखी की सामान्य प्रकृति के हाथ मे छोडकर, उसे प्रज्वलित होने देकर सृष्टिनाश यानी सर्वनाश होने देगे या प्रकृति पर पुरुष के नियत्रण से सर्वनाश को टालकर सर्वोदय की स्थापना करेंगे ? यह तो स्पप्ट ही है कि वर्ग-विषमता का जो महान सकट आज दुनिया मे खडा है वह ज्यो-का त्यो स्थिर नही रह सकता । वर्ग सघर्ष या वर्ग-परिवर्तन किसी-न-किसी रूप मे कोई-न-कोई आन्दोलन खडा होकर ही रहेगा । अगर जवान अपने पुरुपार्थ से इस चुनौती के जवाव मे वर्ग-परिवर्तन की महान क्रान्ति कर इस विपमता की आग को सहज मे ही वुझा नही सकेगे तो पुरुप के पुरुपार्थ के अभाव में वर्ग सघर्प की जो आग पहले से ही सुलग चुकी है, प्रकृति देवी को अपना सहारा वनाकर वर्ग विपमता दूर करने की कोशिश करेगी । उससे विपमता की आग वुझने के वजाय और प्रज्वलित होकर ससार को सर्वनाश की ओर ले जायगी ।

मुझे आशा ही नही, वल्कि विश्वास है कि भारत के नौजवान अपनी काहिली और कायरता के कारण इस चुनौती को यो ही न जाने देगे, वल्कि सत विनोवा द्वारा प्रवर्त्तित अहिंसक क्रान्ति मे हजारो की तादाद में अपनी आहुति देकर-अपनी पीढी की शान और आन की रक्षा करेंगे ।

: ६ :

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—आपने वर्गविहीन समाज कायम करने के लिए जो दो तरीके बताये है, उसमे हिंसा के प्रति अन्याय किया है। आपने कहा है—"एक हिंसात्मक तरीका और दूसरा अहिंसात्मक क्राति।" माना कि आप हिंसा को अवाछनीय मानते है, लेकिन वह क्रान्ति नही है, ऐसा कहना ज्यादती नही है क्या ?

उत्तर—आपके प्रश्न से ऐसा मालूम होता है कि आपने क्राति किसे कहते है इसपर गभीर विचार नही किया। क्राति का मतलब विध्वस नही, बल्कि परिवर्तन है। एक व्यक्ति क्राति करना चाहता है, इसका मतलब यह है कि वह लोगो की धारणा तथा मूल्याकन मे परिवर्तन लाना चाहता है और जब वह समझता है कि लोगो मे परिवर्तन हो नही सकता तब वह हिंसा करता है, अर्थात् हिंसा अविश्वास का इजहार है। ऐसी अविश्वासी प्रवृत्ति से क्रान्ति सध सकती है क्या ?

आप इतिहास के पन्नो मे देखेगे कि हिंसात्मक क्राति के नाम से ससार मे जहा कही कुछ हुआ है, वहा और चाहे जो कुछ हुआ हो, क्रान्ति की सिद्धि नही हुई है, अर्थात् परिवर्तित समाज स्थापित नही हुआ है। कुछ लोगो ने हिंसा द्वारा दमन करके समाज को एक ढाचे मे ढालने की कोशिश की और इस परिवर्तन को अनन्तकाल तक दबाकर कायम रखने की चेष्टा की। तो आप कैसे कह सकते है कि समाज मे परिवर्तन हुआ ? अगर हिंसा द्वारा समाज मे कोई परिवर्तन हुआ दीखता है और उसे हिंसा द्वारा दबाकर ही कायम रखना पडता है तो परिवर्तन हुआ, ऐसा नही कह सकते। क्रान्ति की सिद्धि की पहचान परिवर्तित समाज के सहज छोडने पर ही हो सकती है। इस परिवर्तित स्थिति अगर आप स्थिर नही रह सकती, तो वह क्रान्ति

नही, क्राति की भ्राति-मात्र है ।

आजकल चिकित्सा-शास्त्र मे डायबेटिज रोग का एक इलाज निकला है । रोगी को आजीवन प्रतिदिन इजेक्शन लेना पडता है। एक दिन भी इजेक्शन न ले तो उसके शरीर की शक्कर उभड आती है और इसे डाक्टर लोग इलाज कहते हैं । क्या आप कह सकते है कि वह रोगी रोग मुक्त हो गया ? इसी तरह अगर लगातार गोली के निशाने पर समाज का मुह एक दिशा में रखने की जरूरत पडे तो क्या आप कह सकते है कि उसका मुह उधर ही हो गया ?

इसलिए मेरा कहना है कि अगर वास्तविक क्राति करनी है तो वह अहिंसा से ही सिद्ध हो सकती है, क्योकि अहिंसा स्थायी रूप से मनुष्य की धारणा तथा समाज के मूल्याकन में परिवर्तन करती है ।

प्रश्न—लेकिन आज हिंसा इतनी वढ रही है कि उसने गाधीजी को भी कत्ल कर दिया । सारे ससार मे एटम वम इत्यादि शस्त्रो के वनाने की होड लगी हुई है । ऐसी स्थिति मे अहिंसा कैसे चलेगी ?

उत्तर—इसीलिए तो आज अहिंसा चलनेवाली है । क्राति का जन्म तभी होता है जव ससार मे प्रतिक्रियावादी शक्ति पराकाष्ठा पर पहुच जाती जाती है । दूसरी ओर से क्रातिकारी शक्ति का जन्म होते ही प्रतिक्रियावादी शक्ति आत्मरक्षा की अतिम चेष्टा में अपनी शक्ति भर विराट रूप धारण करती है । कस का अत्याचार वढने पर कृष्ण का जन्म हुआ और कृष्ण का जन्म लेते ही कम का अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया । लेकिन आपने देखा कि वालक कृष्ण को पालनेवाली यशोदा और गोकुलवासी, कम के अत्याचार मे किंकर्त्तव्यविमूढ नही हुए और विश्वास के साथ कृष्ण को मक्खन खिला-खिला कर मजवूत किया। पुराण की कहानी में कस-विनाशकारी शक्ति थी और कृष्ण क्रातिकारी ।

उसी प्रकार आजके युग में हिंसा की विनाशकारी शक्ति को वढते देख गाधीजी ने अहिंसा की क्रातिकारी शक्ति पैदा की । तभी से हिंसा के विकास की भी तेजी वढी । आप लोग जो अपनेको क्रातिकारी कहते है, उन्हें इस हिंसा

: ६ :

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—आपने वर्गविहीन समाज कायम करने के लिए जो दो तरीके बताये है, उसमे हिंसा के प्रति अन्याय किया है। आपने कहा है—"एक हिंसात्मक तरीका और दूसरा अहिंसात्मक क्रांति।" माना कि आप हिंसा को अवाछनीय मानते है, लेकिन वह क्रान्ति नही है, ऐसा कहना ज्यादती नही है क्या ?

उत्तर—आपके प्रश्न मे ऐसा मालूम होता है कि आपने क्रांति किसे कहते है इसपर गंभीर विचार नही किया। क्रांति का मतलब विध्वंस नही, बल्कि परिवर्तन है। एक व्यक्ति क्रांति करना चाहता है, इसका मतलब यह है कि वह लोगो की धारणा तथा मूल्यांकन मे परिवर्तन लाना चाहता है और जब वह समझता है कि लोगो मे परिवर्तन हो नही सकता तब वह कत्ल करता है, अर्थात् हिंसा अविश्वास का इजहार है। ऐसी अविश्वासी प्रवृत्ति से क्रांति सध सकती है क्या ?

आप इतिहास के पन्नो मे देखेंगे कि हिंसात्मक क्रांति के नाम से संसार में जहा कही कुछ हुआ है, वहा और चाहे जो कुछ हुआ हो, क्रांति की सिद्धि नही हुई है, अर्थात् परिवर्तित समाज स्थापित नही हुआ है। कुछ लोगो ने हिंसा द्वारा दमन करके समाज को एक ढाचे मे ढालने की कोशिश की और इस परिवर्तन को अनन्तकाल तक दबाकर कायम रखने की चेष्टा की। तो आप कैसे कह सकते है कि समाज मे परिवर्तन हुआ ? अगर हिंसा द्वारा समाज मे कोई परिवर्तन हुआ दीखता है और उसे हिंसा द्वारा दबाकर ही कायम रखना पड़ता है तो परिवर्तन हुआ, ऐसा नही कह सकते। क्रांति की सिद्धि की पहचान परिवर्तित समाज के सहज छोड़ने पर ही हो सकती है। अगर परिवर्तित स्थिति अपने आप स्थिर नही रह सकती, तो वह क्रांति

नही, क्राति की भ्राति-मात्र है ।

आजकल चिकित्सा-शास्त्र मे डायबेटिज रोग का एक इलाज निकला है । रोगी को आजीवन प्रतिदिन इजेक्शन लेना पडता है। एक दिन भी इजेक्शन न ले तो उसके शरीर की शक्कर उभड आती है और इसे डाक्टर लोग इलाज कहते है । क्या आप कह सकते है कि वह रोगी रोग मुक्त हो गया ? इसी तरह अगर लगातार गोली के निशाने पर समाज का मुह एक दिशा मे रखने की जरूरत पडे तो क्या आप कह सकते है कि उसका मुह उधर ही हो गया ?

इसलिए मेरा कहना है कि अगर वास्तविक क्राति करनी है तो वह अहिसा से ही सिद्ध हो सकती है, क्योकि अहिसा स्थायी रूप से मनुष्य की धारणा तथा समाज के मूल्याकन मे परिवर्तन करती है ।

प्रश्न—लेकिन आज हिंसा इतनी वढ रही है कि उसने गाधीजी को भी कत्ल कर दिया । सारे ससार में एटम वम इत्यादि शस्त्रो के बनाने की होड लगी हुई है । ऐसी स्थिति में अहिसा कैसे चलेगी ?

उत्तर—इसीलिए तो आज अहिसा चलनेवाली है । क्राति का जन्म तभी होता है जव ससार में प्रतिक्रियावादी शक्ति पराकाष्ठा पर पहुच जाती जाती है । दूसरी ओर से क्रातिकारी शक्ति का जन्म होते ही प्रतिक्रियावादी शक्ति आत्मरक्षा की अतिम चेष्टा में अपनी शक्ति भर विराट रूप धारण करती है । कस का अत्याचार वढने पर कृष्ण का जन्म हुआ और कृष्ण का जन्म लेते ही कस का अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया । लेकिन आपने देखा कि वालक कृष्ण को पालनेवाली यशोदा और गोकुलवासी, कस के अत्याचार से किकर्त्तव्यविमूढ नही हुए और विश्वास के साथ कृष्ण को मक्खन खिला-खिला कर मजबूत किया। पुराण की कहानी में कस-विनाशकारी शक्ति थी और कृष्ण क्रातिकारी ।

उसी प्रकार आजके युग में हिंसा की विनाशकारी शक्ति को वढते देख गाधीजी ने अहिसा की क्रातिकारी शक्ति पैदा की । तभी से हिसा के विकास की भी तेजी वढी । आप लोग जो अपनेको क्रातिकारी कहते है, उन्हें इस हिंसा

का विकास देखकर घवडाना नही चाहिए, वल्कि गोकुलवासी की तरह विश्वास के साथ अपनी जिन्दगी और तपस्या मे सीचकर इस क्रान्तिकारी शक्ति को वढाना चाहिए। फिर आप देखेंगे कि आज हिंसा चाहे जितना विराट रूप धारण किये हुए हो, उसकी समाप्ति अवश्यम्भावी है।

प्रश्न—आपने वर्ग-परिवर्त्तन की वात की है, वर्ग-सघर्ष को कतई स्थान नही दिया है। इसमे आपने सृष्टि के एक वुनियादी तत्त्व को ही इन्कार किया है। आखिर वर्ग-सघर्ष भी तो अहिंसक ढग से किया जा सकता है। गाधीजी और विनोवाजी भी तो हमेशा सत्याग्रह की वात करते है। क्या यह सघर्ष का ही अहिंसक रूप नही है ?

उत्तर—मालूम होता है कि आप अभी भी रूढ विचार के वाहर नही निकल पा रहे है। नई क्राति की वात समझने के लिए स्वतत्र विचार की आवश्यकता है। आखिर उद्देश्य क्या है ? साम्य की प्रतिष्ठा या वर्ग-सघर्ष ? वस्तुत कठिनाई यह है कि अधिकाश लोग अपने सामने गणेशजी जैसी एक मूर्ति रखकर अहिंसक क्राति की आराधना करना चाहते है—यानी हिंसा के आधार पर जो धारणाए और मूल्याकन रूढ हो चुके है, उसके सारे कलेवर को ज्यो-का-त्यो कायम रखते हुए उसके सिर से हिंसा काट कर अहिंसा रख देने मात्र मे ही अहिंसक क्राति की मूर्ति बन जाती है, ऐसा मानते है। लेकिन वात ऐसी नही है। अहिंसक क्राति एक स्वतत्र तथा मौलिक वस्तु है। आखिर अहिंसा मे सघर्ष कहा ? अहिंसा के मूल मे तो सहयोग ही है।

वस्तुत आप लोग जो यह समझ वैठे है कि प्रकृति का मूल तत्त्व सघर्ष ही है, उसीमे गलती है। ऐसा समझना पश्चिमी एकागी विचार के असर का नतीजा है। हा, इतना आप कह सकते है कि प्रकृति मे सघर्ष भी है। लेकिन सघर्ष और सहयोग मे सहयोग की ही प्रधानता है। प्रकृति के सारे हिस्से एक दूसरे से वधे है और उनमे सामजस्य तथा सतुलन है। वह वस्तुस्थिति ही सहयोगिता का प्राधान्य साबित करती है। अगर सघर्ष की प्रधानता होती तो सारी सृष्टि कब की बिखर गई होती।

यह सही है कि अहिंसा के क्षेत्र मे भी विचार-भेद होता है, लेकिन

इस भेद से विचार-संघर्ष पैदा नही होता, बल्कि विचार-मथन होता है। मथन के नतीजे मे आचार निर्दिष्ट होता है और सहयोग के आधार पर वह आचार मूर्तिमान होता है।

आपके प्रश्न मे दीखता है कि गाधीजी या विनोबाजी के सत्याग्रह की वात पर आपने गहराई से सोचा नही है। इसलिए जरूरी है कि आपको सत्याग्रह और सघर्ष के बारे मे स्पष्ट धारणा हो। सत्याग्रह का मतलब विरोध नहीं है। सत्य के लिए आग्रह—यही सत्याग्रह है। हम इस सत्य को मानते है कि भूमि उसके पास होनी चाहिए जो उसपर परिश्रम करे। इस सत्य को स्थापित करने के लिए घर-घर भूमि मागना सत्याग्रह है और निर्भर होकर अपने हक पर डटे रहना भी सत्याग्रह है। अगर कोई किसान बेदखल होता है और निर्भय होकर वह उस जमीन पर डटा रहता है तो विरोध वह किसी का नही करता है। सिर्फ इतना ही करता है कि कापुरुष जैसा अपने हक को छोडकर भाग नही जाता।

सघर्ष मे दोनो पक्ष की ओर से वार होता है। सत्याग्रह मे ऐसा नही होता। सत्याग्रही अपने सत्य पक्ष पर स्थिर रहता है और दूसरे पक्ष के वार से दबने से इन्कार मात्र करता है। यह सघर्ष नही, सत्याग्रह है। जो लोग अहिंसक क्राति की वात सोचते है उन्हे इस तत्त्व को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए, अन्यथा वे अहिंसा का नाम लेते रहेगे, लेकिन पुरानी धारणाओ के कारण अपने काम मे दिशा-भ्रष्ट होकर प्रच्छन्न हिंसा की ओर बहकेगे। अन्ततोगत्वा वे विफलता के गर्त मे गिरेगे और परिस्थिति को प्रतिक्रातिकारी शक्ति के हाथ मे सौंप देगे।

प्रश्न—आप भी शासनहीन और वर्गहीन समाज की वात करते है, फिर आपमे और कम्युनिस्टो मे क्या फर्क है ?

उत्तर—कम्युनिस्ट ऐसी वात करने मे सिर्फ स्वप्न-द्रष्टा है और हम व्यावहारिक स्थिति की वात सोचते है। कम्युनिस्ट कहते है कि वे शासनहीन समाज कायम करना चाहते है, लेकिन वे करते है नित्य प्रतिदिन शासन का अधिकतर संगठन।-वे कहते है कि इस प्रकार शासन सगठन

पूर्ण होनेपर आखिर में सूख जायेगा । वैज्ञानिक तत्व के अनुसार शायद यह सही है, क्योंकि विज्ञान कहता है कि किसीका पूर्ण विकास हो चुकने पर उसका अत होता है । यह बात तात्विक हो सकती है, लेकिन व्यावहारिक नही । ऐसा कहना ठीक उसी तरह है जैसे कोई कहे कि उसे पटना से कलकत्ता जाना है और वह चलता है पश्चिम की ओर । भौगोलिक तत्व के अनुसार शायद वह ठीक ही चल रहा है, क्योंकि पृथ्वी गोल होने के कारण आखिर मे कलकत्ता पहुचेगा ही । लेकिन कोई भी व्यावहारिक मनुष्य ऐसा नही करता । वह पूरब की ओर चलता है क्योंकि ऐसा करने में वह प्रत्यक्ष देखता है कि जितना कदम चलता है उतना कदम कलकत्ता के नजदीक पहुचता है । लेकिन भौगोलिक तत्व के अनुसार सही होनेपर भी पश्चिम की ओर चलने से वह कदम-कदम पर कलकत्ता से दूर ही हटता जाता है । इसी तरह कम्यनिस्ट जैसे-जैसे शासन को सगठित करते जा रहे है वैसे-वैसे वे शासनहीनता से दूर होते जा रहे है और वे अपनी प्रगति के हर कदम पर जन-स्वतत्रता को निर्दलित कर रहे है ।

इसीलिए हम कहते है कि अगर शासन को विघटित करना है तो उसका तरीका भी विघटन का होना चाहिए । हमारी प्रगति जन-स्वावलबन को सगठित कर शासन की आवश्यकता को घटाते जाने मे ही है, ताकि आखिरी कदम पर जन-स्वावलबन पूर्ण होकर शासन-शून्य हो सके । वस्तुत कम्युनिस्टो की शासन-हीन समाज की बात नकारात्मक है, सृजनात्मक नही । इस प्रकार के अव्यावहारिक तथा कोरे तत्वदर्शी को आप लोग अग्रेजी मे यूटोपियन (Utopian) कहते है । इसलिए विनोबाजी साम्ययोग कहते है, साम्यवाद नही, क्योंकि वाद एक दर्शन मात्र है और योग का मतलब प्रत्यक्ष साधना है ।

वर्गहीन समाज के बारे मे मै पहले ही कह चुका हू । हम उत्पादकों का एक अद्वैतवादी समाज बनाना चाहते है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति शरीर-श्रम द्वारा उत्पादन करेगा । उत्पादन के माध्यम से शिक्षा-पद्धति चलने के कारण प्रत्येक उत्पादक की बुद्धि विकसित होगी और इस प्रकार की

विकसित वुद्धिवाले उत्पादक आपम मे सहकार के आधार पर स्वावलवी व्यवस्था चलायेगे। इसमे न्यूनाधिक विशिष्ट प्रवृत्तिवालो के विशेष विकास का अवसर अवश्य रहेगा, लेकिन किसीके लिए कोई काम खास नही माना जायेगा।

कम्युनिस्ट उत्कट केन्द्रीकरण के द्वारा अलग से एक विराट व्यवस्थापक वर्ग की सृष्टि कर रहे है। इस तरह वे हेड्स (Heads) और हैड्स (Hands) के वर्गीकरण से वर्ग-विषमता मिटाने के वजाय उसे मजबूत करते जा रहे है। रेलो के डिब्बो मे जैसे फर्स्टक्लास, सेकेडक्लास, इटरक्लास और थर्डक्लास है, उसी तरह समाज मे भी चार वर्ग है—सामन्तवर्ग, पूजीपतिवर्ग, व्यवस्थापक वर्ग और शरीर-श्रमिक वर्ग। केवल फर्स्ट और सेकड क्लास हटाने से ही काम नही चलेगा। इटर क्लास भी हटा कर समाज मे शुद्ध जनता एक्सप्रेस चलानी होगी।

प्रश्न—आपने कहा है कि हम लोगो ने अग्रेजो के साथ युद्ध किया है, क्राति नही की। फिर वह राजनैतिक क्राति किस दिशा में होगी और उसका स्वरूप क्या होगा?

उत्तर—आजकल दुनिया का राजनैतिक ढाचा उलट गया है। किसी भी पेड की जड वहा रहती है, जहा से वह पोषण लेता है और उसकी फुनगी आसमान की ओर रहती है। आज का राजनैतिक वृक्ष देहातो से पोषण लेता है, लेकिन उसकी जड है दिल्ली मे और फुनगी देहातो में, अर्थात् आधुनिक राजनीति शीर्षासन कर रही है। कभी-कभी २-४ मिनट तक शीर्षासन करना तो अच्छा होता है और इससे शरीर का तेज भी बढता है, लेकिन अगर कोई स्थायी रूप से शीर्षासन ही करता रहे तो उसके सिर पर खून चढ जायेगा। राजनीति मे भी अगर एकाध वात की जड दिल्ली मे रहे तो ठीक है, उससे समाज मे तेजस्विता भी आ सकती है लेकिन आज की राजनीति चूकि अनवरतरूप से शीर्षासन ही करने लगी है इससे उसके सिर पर खून चढ गया है। नतीजा यह कि से ससार के राष्ट्रो मे तानाशाही का जमघट हो रहा है और युद्ध की तैयारी की होड लग रही है।

राजनैतिक वृक्ष को उलट कर उसकी जड देहातो में करना ही हमारी राजनैतिक क्राति है। इसके लिए आपको अपने विधान में आमूल परिवर्तन करना होगा। आज सविधान सभा दिल्ली मे बैठती है। सर्वोदय विधान बनाने के लिए प्रथमत यह सभा देहातो मे बैठेगी। देहात के लोग अपनी शक्ति के अनुसार ग्रामराज्य की जिम्मेदारी तय करेगे और शक्ति के बाहर के मदो को ऊपर की जिम्मेदारी के लिए आगे बढायेगे। जिला सभा उसमे से अपनी शक्ति के अनुसार जिम्मेदारी रखकर बाकी आगे बढायेगी। इस तरह क्रमश आगे बढते हुए आखिरी बचत अन्तर्राष्ट्रीय सभा तक पहुच कर अखडविश्व (One World) की कल्पना मूर्तिमान होगी।

हो सकता है कि देहाती सभाओ के प्रतिनिधि, जो जिलो मे मिलेंगे, बाद को देहाती जिम्मेदारियो मे किंचित् हेरफेर करके उनमे कुछ समानता लावे और उसी तरह उससे ऊपरवाले नीचेवालो का मार्ग-दर्शन करे। लेकिन मूलत सविधान का ढाचा इसी तरह से बनाना होगा।

प्रश्न—आपकी बातो से ऐसा दीखता ह कि आप पार्लमेंट्री शासन को गणतत्र के रूप मे स्वीकार नही करते। आखिर उसमे दोष क्या है ?

उत्तर—मैने पहले ही कहा है कि पूरी पार्लमेंट दड-शक्ति की मूर्ति है और विरोधी दल भी उसीका एक बाजू है। पार्लमेंट्री पद्धति मे स्वतन्त्र शिव-शक्ति की कही गुजाइश नही है। नतीजा यह होता है कि जनता तकलीफ होनेपर भी कोई स्वतन्त्र कदम नही उठा सकती। जैसे रोगी तकलीफ होने पर करवट बदलता रहता है उसी तरह परेशान जनता पार्टी बदलती रहती है।

इसके अलावा इसमे एक बहुत बडा व्यावहारिक दोष है। पार्लमेंट्री पद्धति मे जनता की शक्ति और कोष का अपव्यय होता है। एक पार्टी आती है, कुछ योजना बनाती है, उसके लिए राष्ट्र की शक्ति और सपत्ति खर्च करती है और फिर दूसरी पार्टी आकर उसको रद्द करके दूसरी योजना बनाती है।

इस तरह योजनाओ की कवड्डी खेलकर राष्ट्रीय साधन की कितनी बर्बादी की जाती है, इसका अन्दाज आप लगा सकते है। इसके उदाहरण के लिए दूर जाने की जरूरत नही है। पार्लमेंट्री पद्धति को माननेवालो के लिए ब्रिटिश पार्लमेंट एक उत्कृष्ट मिसाल है। पिछले दिनो इस्पात उद्योग के राष्ट्रीयकरण के मामले मे उसी इगलैंड मे क्या दशा हुई, यह आप सबको पता ही है।

प्रश्न—विनोबाजी कहते है कि भूमि किसीकी सपत्ति नही है, वह ईश्वर की है। क्या ईश्वर आकर उसकी व्यवस्था करेगा ? आखिर भूमि का समाजीकरण आवश्यक है। सर्वोदय-सिद्धात के अनुसार इसका स्वरूप क्या होगा ?

उत्तर—इसका जवाब तो विनोबाजी ने खद दिया है—भूमि का ग्रामीकरण होगा। लेकिन इस ग्रामीकरण शब्द से भी भ्रम होने की सभावना है। ग्रामीकरण तीन तरह का हो सकता है

१ सारी भूमि ग्राम-पचायत की हो, पचायत खेती करे, गाव के लोग उसपर मजदूरी करें। खेती मे जो बचत हो वह पचायत की आय हो और उस आय से पचायत ग्राम की भलाई और व्यवस्था का काम चलावे।

२ सारी जमीन ग्राम पचायत की हो और सब लोग उसपर सहकारी खेती करे। परिवारो के चालू खर्च को चलाने के लिए लोग कुछ दैनिक मजदूरी भी लेते रहें, लेकिन बचत श्रम के अनपात मे आपस मे बाट ले। गाव की व्यवस्था के लिए लोग व्यक्तिगत कर दें।

३ जमीन सब पचायत की हो। पचायत परिवारो की आवश्यकता तथा क्षमता के अनुपात मे भूमि का वितरण करे और लोग मुख्यत व्यक्तिगत खेती करें। सिचाई आदि कुछ कामो के लिए आवश्यकता पडनेपर आशिक या पूर्णतया सहकारी पद्धति चलायें। पचायत कुछ जमीन सार्वजनिक भूमि के रूप मे रखे, जिसपर खेती श्रमदान-यज्ञ से हो और उसकी उपज से सार्वजनिक कार्य तथा ग्रामव्यवस्था चले।

जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, सर्वोदय, सामाजिक व्यवस्था

कायम रखते हुए हरेक व्यक्ति का पूर्ण विकास चाहता है। इस उद्देश्य की सिद्धि मे तीसरा तरीका ही उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रश्न---भूमिदान-यज्ञ से भूमि का बटवारा हो जायगा, यह तो समझ मे आता है, लेकिन आज जो बडे-बडे पूजीपतियो के पास सपत्ति पडी है उसका बटवारा कैसे होगा और उसके लिए आप कौन-सा कार्यक्रम और आन्दोलन चलाना चाहते है।

उत्तर---इसीके लिए तो विनोबाजी ने सपत्ति-दान की बात शुरु की है। कोई भी व्यावहारिक क्रातिकारी एक-एक करके कदम उठाता है। विनोबाजी ने पहले भूमिदान-यज्ञ आन्दोलन शरु किया। जब उन्हे मालूम हो गया कि भूमिदान-यज्ञ का पैर जम गया तो सपत्तिदान की बात की और अब इस पर जोर भी देने लगे है। यह सही है कि अभी आमदनी का ही छठा हिस्सा मागा जा रहा है, लेकिन विनोबाजी हमेशा कहते है कि उनकी यह माग पहली किस्त की माग है। उन्हीके शब्दो मे कहे तो वे सपत्ति के अन्दर एक पञ्चर ठोक देना चाहते है। क्रमश आपको मूल पूजी का दान भी मागना होगा।

दूसरी ओर वे भूमिदान-यज्ञ और केन्द्रित उद्योग बहिष्कार को सीताराम की तरह अभिन्न मानते है। भूमि-वितरण-आन्दोलन के तरीके मे और सपत्ति-वितरण-आन्दोलन के तरीके मे फर्क है। अगर किसी राजा से सारी जमीन मिल जाय तो उसे खडित कर उत्पादको मे बाटा जा सकता है, लेकिन पूजीपति से अगर सारा-का-सारा कारखाना मिल जाय तो उसके टुकडे करके बाटा नही जा सकता। इसलिए इस दिशा मे दोरुखा आन्दोलन चलाना पडेगा। एक ओर से सपत्तिवान तथा पूजीपतियो से सपत्ति और पूजी का दान मागना होगा और दूसरी ओर से केन्द्रित उद्योग के बहिष्कार और ग्रामोद्योग के सगठन का आन्दोलन चलाकर उद्योगो को विकेद्रित करना होगा। देश के विकेद्रित उद्योगीकरण के बाद लोगो के पास जो पूजी एकत्रित हुई है वह अनुत्पादक होकर खत्म हो जायगी। सपत्तिदान-यज्ञ से इस प्रकार की पूजी के खत्म होने की प्रक्रिया मे वेग आयेगा।

यह सही है कि कुछ ऐसे उद्योग रह जायगे, जिन्हे केन्द्रित ढग से ही चलाया जा सकता है। ऐसे उद्योग पूजी-निरपेक्ष नही हो सकेंगे। ऐसे उद्योगो को श्रमिको की सहकारी समिति के हाथ मे सौंपना होगा। सपत्ति-दान यज्ञ का आन्दोलन आगे बढनेपर आपको पूरा-का-पूरा कारखाना भी मिलेगा। और जैसे पूरा-का-पूरा गाव मिलनेपर उसकी व्यवस्था हम अपने आदर्श के अनुसार चलाने की कोशिश करते है उसी तरह पूरा-का-पूरा कारखाना मिलनेपर उसे सामूहिक रूप से श्रमिको द्वारा चलवाने का प्रयोग भी करेगे और क्रमश सारे अनिवार्य केन्द्रित उद्योगो को श्रमिको के हाथ मे सौंप देने का आन्दोलन चलायगे। ये सब कार्यक्रम सपत्तिदान-यज्ञ के अन्तर्गत है।

पुरानी धारणा के अनुसार आप कह सकते है कि ये सरकार के हाथ मे क्यो न जाय। लेकिन जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, अगर आपको शासनहीन समाज कायम करना है तो सारा कार्यक्रम उसी दिशा मे होना चाहिए। हमको दड-शक्ति को क्षीण करने की बात सोचनी चाहिए, न कि उसे मजबूत करने की। वर्षो से देश के नेता शासन और न्याय-विभाग को अलग करने का आन्दोलन कर रहे है। हम ऐसा क्यो चाहते है? इसलिए कि हमारी राय मे अगर शासन और न्याय एक ही हाथ मे रहेगा तो न्याय-शक्ति को शासन के क्षेत्र में इस्तेमाल किया जायेगा। इसी तरह अगर हम दमन का साधन और उत्पादन का साधन एक ही हाथ मे रखेंगे तो उत्पादन को दमन के काम मे लाकर दड-शक्ति अपनेको मजबूत बनाने की कोशिश करेगी। यही कारण है कि हम अनिवार्य केन्द्रित उद्योगो को भी सरकार के हाथ में न रखकर जनता द्वारा चालित स्वतन्त्र और सामूहिक सस्था के हाथ मे सौंपना चाहते है।

प्रश्न—पश्चिमी औद्योगिक मुल्को मे भी विकेंद्रीकरण की बात की जा रही है, तो उनमें और सर्वोदयी विकेंद्रीकरण मे क्या फर्क है?

उत्तर—पश्चिम में जो विकेंद्रीकरण की बात करते है उसमे उत्पादन की पद्धति बदलने की बात नही है। वे पूजीवादी पद्धति को बदल कर श्रमवादी पद्धति नही कायम करना चाहते। उनका विकेंद्रीकरण **भौगोलिक**

है, यानी बबई मे सारी कपडे की मिल न होकर जिन इलाको मे रुई पैदा होती है उन इलाको मे जगह-जगह एक-एक मिल रखी जाय।

एक दूसरे किस्म का विकेंद्रीकरण जापान मे चल रहा है। उसमे कुछ-कुछ कुटीर-उद्योग की बात भी है, लेकिन वह पूजी-निरपेक्ष स्वावलबी पद्धति नही है। वह केन्द्रित पूजी सचालित दस्तकारी पद्धति है।

प्रश्न—लेकिन आज के वैज्ञानिक युग मे ग्रामोद्योगी विकेंद्रीकरण कैसे चलेगा? क्या आप विज्ञान को स्वावलबन की बलिवेदी पर चढाना चाहते है?

उत्तर—यह सवाल प्राय सभी आधुनिक पढे-लिखे लोगो के दिमाग मे आता है। इसका कारण यह है कि लोग विज्ञान का मतलब नही समझते। विज्ञान कोई एकागी वस्तु नही है, वह तो प्रकृति के सर्वांगीण नियम के आधार पर बना है। किन्तु लोगो ने शायद विज्ञान का मतलब सिर्फ यत्र-शास्त्र समझ लिया है। विज्ञान केवल यत्र-शास्त्र नही है। राजनीतिशास्त्र, समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर-तत्व आदि सब विज्ञान के विभिन्न अग है। जो चीज विज्ञान के सारे अगो का सामजस्य नही रख सकती वह अवैज्ञानिक है। कोई यत्र यत्र-शास्त्र के अनुसार पूर्ण होनेपर भी यदि राजनैतिक, आर्थिक या मनोवैज्ञानिक सतुलन की रक्षा नही कर सकता तो वह अवैज्ञानिक यत्र है और उसका इस्तेमाल विज्ञान के खिलाफ है। इसलिए हम उन यत्रो को अवैज्ञानिक मानकर त्याज्य कहते है जिनके प्रचलन मे राजनैतिक तानाशाही, आर्थिक बेकारी या अन्यान्य मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक दोषो की सृष्टि होती है। एक छोटी-सी मिसाल लीजिए—खाद्य का वैज्ञानिक उद्देश्य स्वास्थ्य-रक्षा है। अगर किसी किस्म की आटा पीसने या तेल पेरने की मशीन से निकले हुए आटे या तेल का खाद्य-गुण घट जाता है, तो वह मशीन भले ही यत्र के हिसाब से वैज्ञानिक हो, लेकिन खाद्य-उत्पादन के औजार के रूप मे अवैज्ञानिक समझी जायेगी। फिर यत्र-शास्त्र एक शास्त्र है, कोई मशीन-मात्र नही है। एक ही वैज्ञानिक नियम से छोटा या बडा यत्र बनता है। अगर मशीन छोटी हो तो लोगो की धारणा मे अवैज्ञा

निक है और वडी हुई तो वैज्ञानिक हो जाती है। ऐसा सोचना ठीक उसी प्रकार है जैसे देहात के लोग, वैंगन, कुम्हडा आदि के मामले मे, यदि चीज छोटी हो तो उसे देशी और वहुत वडी हो जाने पर विलायती कहते है। आपको समझना चाहिए कि छोटी मशीन के आविष्कार मे वैज्ञानिक वुद्धि अधिक लगानी पडती है।

दरअसल हम स्वावलवन की वलिवेदी पर विज्ञान को वलिदान नही करना चाहते, वल्कि आज की दुनिया मे वैज्ञानिक विकास के नाम पर विज्ञान की जो हत्या चल रही है उसे रोकना चाहते है।

प्रश्न—आपने जो वाते कही है वे सव ठीक है, लेकिन वे सव दूर की वाते है। अभी लोग अन्न विना तडप रहे है—विदेश से अनाज मगाना पड रहा है। ऐसी हालत मे आपने भूमिदान छेडकर 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन को पीछे छोड दिया है। लोगो के अन्न के विना मर जाने पर किसे लेकर शासनहीन और शोषणहीन समाज वनेगा ?

उत्तर—ऐसा लगता है कि आपने कृषि का काम नही किया है। अधिक अन्न स्टेशनो के पोस्टरो में नही पैदा होता, वह तो जमीन पर ही पैदा होगा। जिसने थोडी भी खेती की है या कम-से-कम खेती का काम देखा है उसको मालूम है कि जो किसान अपने हाथ से खेती करते है उनकी पैदावार उन किसानो से कही अधिक होती है जो मजदूर द्वारा खेती करवाते है। वह भूमिहीन मजदूर जो दूसरे के खेत में काम करता है जव अपना खेत जोतेगा तो उसमे स्वभावत अधिक पैदा होगा। भूमिदान यज्ञ का उद्देश्य जमीन की पैदावार उसीको देना है, जो उसपर श्रम करता है। इससे पैदावार वढेगी या नही, यह आप खुद सोच सकते है।

प्रश्न—भूमिदान-यज्ञ से भूमिहीनो को जमीन मिल जानेपर जो जमीन भूमिवानो के पास रह जायेगी उसके लिए मजदूर की तगी होगी। तो इमसे उत्पादन मे कमी तो होगी ही न ?

उत्तर—आखिर वही मजदूर सारी जमीन आज जोतता है न ? उसमे मे थोडीनी अगर मजदूर की मिल्कियत मे चली जायेगी तो जो शक्ति अवतक

गाव की सारी जमीन जोतती थी वह दान द्वारा प्राप्त थोडी-सी जमीन में खप जायेगी, यह हिसाब आपने कैसे मान लिया ? फिर आप ही लोग यह भी कहते है कि देश मे बेकारी है। इसके अलावा तथ्य यह है कि भूमिदान-यज्ञ मे देश मे जो मानसिक क्राति हो रही है और जिसके नतीजे से लोग यह बात समझ रहे है कि सबको श्रम करना ही है, वह क्राति भूमिवानो को भी जमीन पर श्रम करने के लिए प्रेरित करेगी। जो लोग अबतक केवल मजदूर पर भरोसा करते थे वे जब थोडा-थोडा भी जमीन पर खुद काम करने लगेगे तो उनके हिस्से की जमीन की भी पैदावार बढेगी। मालिक के साथ काम करते देख मजदूर भी अधिक उत्साह से काम करेगा। तब मजदूर मजदूर बनकर नही, सहकारी बनकर मदद करेगा।

प्रश्न—अबतक आपने सर्वोदय-विचार-क्राति की बात की, लेकिन दडनिरपेक्ष तथा पूजी-निरपेक्ष समाज की रचना किस तरह से सिद्ध होगी ? उसके किसी व्यवस्थित कार्यक्रम के बिना हम कार्यकर्त्ता क्या करे ?

उत्तर—कार्यक्रम तो आन्दोलन के सिलसिले मे परिस्थिति के अनुसार सूझता रहेगा। आज उसका कोई कार्यक्रम नही बन सकता। मुख्य आवश्यकता यह है कि कार्यकर्त्ताओ का लक्ष्य स्थिर हो और दृष्टि स्पष्ट हो, फिर कार्यक्रम निकलता जायेगा। विनोबाजी खुद ही एक के बाद दूसरा कार्यक्रम देश के सामने रख रहे है। फिर भी आपके समझने के लिए मै एक सामान्य दिशा-निर्देश कर देता हू। भूमिदान-यज्ञ के कार्य में आपने आन्दोलन का पहला कदम उठा लिया है। साथ-साथ केन्द्रित उद्योग-बहिष्कार तथा सपत्ति-दान-यज्ञ का कार्यक्रम भी आपके सामने है। मान लीजिये, आप किसी थाने के कार्यकर्त्ता है। पहले आप विचार-प्रचार के साथ-साथ भूमिदान मागेगे। जब देखेगे कि कुछ जमीन मिल गई है तब आप जमीन पर जाकर उसका अध्ययन करेगे। उसमें कुछ पडती होगी, कुछ ऐसी जमीन होगी जिसमे पानी की व्यवस्था करनी है, कुछ ऐसी भी जमीन होगी जो ऊसर की है, अर्थात् अधिकाश जमीन पर कुछ-न-कुछ समस्या है। इन समस्याओ के समाधान मे आपको गाव के लोगो

को सगठित करना होगा। इस सगठन के रूप मे आप ग्रामराज्य स्थापना के लिए क्रातिकारी इकाई की नीव डाल देगे।

शुरू-शुरू मे अच्छा यह होगा कि आप श्रमदान-यज्ञ का कार्यक्रम चलावे। इसमे आप गाव की सब श्रेणियो को शामिल कर सकेगे। श्रम-दान यज्ञ द्वारा पडती जमीन तोडना, तालाव खोदना, बाध बाधना आदि कार्यक्रम हाथ मे ले सकते है। जो लोग श्रम-दान मे साथ काम करेगे उनमे विचार-क्राति फैलेगी। आप भी वातचीत मे अपनी सारी योजना वतायेगे। धीरे-धीरे जो लोग नियम रूप से समय देनेवाले है उनकी एक श्रमदान-यज्ञ समिति वन जायेगी और जैसे-जैसे इस समिति का काम ठोस होता जायेगा वैसे-वैसे केन्द्रित उद्योगो के वहिष्कार का सकल्प-पत्र भरवाना, ग्रामोद्योग का सगठन और प्रौढ शिक्षा आदि कार्यक्रम हाथ मे लिया जा सकेगा। इस प्रकार श्रमदान यज्ञ से शुरू करके आप स्थानीय नेतृत्व तथा प्रेरणा पैदा करके एक सगठन खडा करेगे। फिर वही सगठन क्रमश पूजी तथा दड-निरपेक्ष समाज कायम करने की दिशा मे निश्चित आन्दोलन चलायेगा। इसका स्वरूप सामान्यत निम्न प्रकार का होगा —

१ पूजी-निरपेक्ष समाज—सबसे पहले अन्न-वस्त्र-वहिष्कार आन्दोलन के लिए समिति के सदस्य वहिष्कार के सकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे। फिर गाव के लोगो को समझाकर दूसरो से भी ऐसा सकल्प-पत्र भरवायगे। उसके लिए जुलूस, सभा आदि का आयोजन भी करना होगा। समय-समय पर गाव के लोगो की चर्चा-मडली चलानी होगी। जैसे-जैसे जन-मानस तैयार होगा और सगठन-शक्ति वढेगी, केन्द्रित उद्योग से उत्पादित अन्न-वस्त्र की चीजो की विक्री पर पिकेटिंग करना होगा। एक वाक्य मे ग्रामो-द्योग का सगठन तथा केन्द्रित उद्योग-वहिष्कार से गाव को अपनी आवश्यक-ताओ की पूर्ति के लिए स्वावलवी वनाना होगा ताकि पजीवाद के नागपाश से वे वाहर निकल सके।

२ दड-निरपेक्ष समाज—आर्थिक आन्दोलन मे काफी प्रगति होने का मतलव है गाव के सगठन का मजवूत वनना। फिर वह सगठन राज-

नैतिक आन्दोलन का काम भी करेगा। राजनैतिक आन्दोलन का मतलब आप जो समझते है, वह नही है अर्थात् गाव का वह सगठन दूसरो के हाथ से दड छीनकर अपने हाथ मे लेने की कोशिश नही करेगा, बल्कि समाज मे दड की आवश्यकता के खत्म करने का आन्दोलन करेगा। इसके लिए ग्राम समिति को सरकार द्वारा सचालित महकमो की सूची बनानी पडेगी और उसमे से कुछ व्यवस्था छाटकर उसको चलाने की जिम्मेदारी समिति को सारे गाव के सहयोग से अपने ऊपर लेनी होगी। ऐसी समितियो का सगठन आप थाने भर मे करे। जब ऐसी समितियो का सगठन काफी गावो मे हो जाय और वे उत्पादन तथा व्यवस्था चलाने की शक्ति हासिल कर ले तो जैसे आप भूमिपतियो से भूमिदान और सपत्तिवालो से सपत्तिदान मागते है उसी तरह से सत्ताधारी से सत्ता का दान मागेगे। ग्राम-समितिया सरकार से कहेगी कि आपके अमुक-अमुक विभाग की जिम्मेदारी हम सहकार के आधार पर स्वावलबी व्यवस्था से चला लेगे। आप इसकी जिम्मेदारी हम पर सौंप दे और उसके लिए आप अपना इन्तजाम इस इलाके मे उठा ले। आपकी इतनी जिम्मेदारी कम होने के कारण, उस मद मे जिस अनुपात मे खर्च होता है उतना कर इस इलाके से घटा दे। स्वभावत इस लोक-युग मे सरकार इसे मानेगी। लेकिन अगर सरकार की प्रकृति सर्वाधिकारवादी हुई तो वह इसे नही मानेगी। वह इन जिम्मेदारियो के बहाने जनता पर निरन्तर हावी रहना चाहेगी। वैसी हालत मे जनता को यह कहने का हक होगा कि चूकि अब हम आपकी अमुक सेवाओ की आवश्यकता नही रही, इसलिए उस सेवा के लिए हम अबतक जो मेहनताना देते रहे वह अब नही देगे, यानी वे उस अनुपात मे टैक्स देने से इन्कार करेगे।

इस प्रकार का आन्दोलन देशव्यापी होनेपर कोई भी सत्ताधारी अपनी सत्ता को जबर्दस्ती जनता पर नही लाद सकता। लेकिन मुझे विश्वास है, ऐसा आन्दोलन चलाने लायक सगठन गाव-गाव मे बन जाने पर इस हद तक पहुचने की आवश्यकता ही नही होगी। इससे पहले ही मुल्क मे जो वातावरण पैदा होगा उससे देश के विधान मे परिवर्तन हो जायगा।

प्रश्न— इस प्रकार का रचनात्मक काम तो गावो मे तीन साल से चल रहा है। चरखा सघ, गामोद्योग सघ आदि सस्थाए भी काफी दिनो से काम कर रही है, लेकिन आप जो वात कह रहे है उसका दर्शन तो कही नही हो रहा है, फिर इस तरह समस्या का हल कैसे होगा ?

उत्तर—अवतक हम जो काम करते आये है उसमे क्रातिकारी दृष्टि नही रही है। शुरु मे हमने आजादी की लडाई के लिए जनता को तैयार करने के उद्देश्य से जन-सपर्क साधने के एक जरिये के रूप मे इसे चलाया। फिर गरीवो को कुछ राहत पहुचाने की दृष्टि से काम किया।

राहत की दृष्टि और क्रातिकारी दृष्टि का फर्क आपको समझ लेना चाहिए। एक उदाहरण से यह वात स्पष्ट हो जायेगी । अगर आप कही मिट्टी का एक टीला वनाते है तो किसी जगह गड्ढा करना पडता है। फिर गड्ढे मे पानी आदि सडने पर उसे पाटने की वात सूझती है। लेकिन साथ ही टीले को भी रखना चाहते है। ऐसी हालत में टीले मे से थोडी-थोडी मिट्टी निकाल कर अगर गड्ढे पर डाल दें तो गड्ढा भरता नही और फिर जल्दी ही वदवू होने लगती है। गड्ढा तो तभी पट सकता है जव पूरा टीला उसमे डाल दिया जाय।

उसी तरह आप ववई, कलकत्ता आदि वडे-वडे शहरों में सपत्ति के जो ऊँचे टीले देख रहे है वे देहातो मे गड्ढे करके वने है। हम कुछ परोपकारी वृत्ति वाले लोग जव देहाती जनो की तकलीफ देखते है तो उसे दूर करने की सोचते है। इसके लिए हम कलकत्ता, ववई के टीलो से दो-चार हजार या एकाध लाख की सपत्ति माग कर ले आते है। फिर, खादी, ग्रामोद्योग आदि कार्यक्रम चलाकर उन्ही श्रीमानो के हाथ में वेचकर देहाती-जनो में से शोपित सपत्ति का एक अति अल्प टुकडा उन्हें वापस दिलाने की कोशिश करते है। इससे दो-चार-दस व्यक्ति को भले ही कुछ राहत मिल जाय, लेकिन समस्या का हल नही होता। समस्या का हल तो पूर्ण वहिष्कार कर देहातो के शोपण का रास्ता वद करने से ही होगा। यानी अव हमें राहत के काम से सतोप न मानकर क्रातिकारी दृष्टि से काम करना होगा।

यहा पर फिर साध्य और साधन की बात आती है। क्रांतिकारी का अपना जीवन ही उसके लिए साधन होता है। इसलिए अगर क्राति करनी है तो आप-को अपनी जिन्दगी मे भी क्राति करनी होगी। अबतक हम लोग अपने जीवन मे क्राति न करके त्याग करते रहे। इस प्रकार, त्याग और क्राति मे क्या फर्क है, यह समझ लेना चाहिए। लोक-सेवा के लिए जीवन का स्तर कुछ नीचे उतार लेने मे त्याग अवश्य होता है, लेकिन क्राति नही होती। क्राति तो जीवन का तर्ज बदलने मे होती है। इसे और स्पष्ट करू। एक अध्यापक ५००) वेतन पर काम कर रहे है। वे नौकरी छोडकर १००) पर काम करने लगे तो उन्होने त्याग किया। ऐसा करने मे उन्होने अपने हाथ मे कुछ पैदा नही किया। वे अनुत्पादक उपभोक्ता ही रहे, केवल गरीबी को स्वीकार किया लेकिन अगर वे १५०) भी ले और उसमे से २५) यह सोच कर अपनी मेहनत मे पैदा करने लगे कि क्रमश शरीरश्रम द्वारा उत्पादन करके ही गुजारा करेगे तो अपने को मजदूर बनाने की दिशा मे उन्होने सक्रिय कदम उठा लिया, अर्थात् उन्होने अपने जीवन मे वर्ग-परिवर्तन की क्राति शुरू की। इस तरह क्राति करने मे त्याग आ ही जाता है, लेकिन यह कोई जरूरी नही है कि त्याग मे क्राति ही हो।

अबतक हम लोग जो काम करते रहे, उसमे हमारी यह दृष्टि नहीं रही। आज विनोबाजी साम्ययोग का सिद्धात बताने मे हमे यह नई दृष्टि दे रहे है। अगर आप लोग इसी दृष्टि से काम करेगे तो मेरे कहने के मुताबिक नतीजा अवश्य निकलेगा।

प्रश्न—आपने पार्लमेटरी पद्धति को हिंसा का ही रूप माना है, लेकिन वर्त्तमान जनतत्र मे उसके स्थान पर आप कौनसी पद्धति सुझाते है, जो पक्षातीत होकर भी सुव्यवस्था बनाये रख सके और पूर्ण रूप से अहिंसक भी हो?

उत्तर—जबतक पूर्ण रूप से राज्यसस्था विद्यमान है और वह केंद्रित भी है, तबतक पार्लमेटरी पद्धति तो चलेगी, लेकिन मैंने जैसा कहा है, स्वावलबी समाज में भी राज्य का कुछ अवशेष रह जाता है, अर्थात् आपके प्रश्न के अनुसार राज्य-सस्था का कुछ-न-कुछ अवशेष रह ही जायगा। उसकी पद्धति

कौनसी होगी, यही प्रश्न है। वह पद्धति पार्लमेंटरी पद्धति न होकर पचायत-पद्धति होगी। जैसाकि मैंने पहले भी बताया है, उस पद्धति के विधान केन्द्र से न बनकर समाज की मूल इकाई, यानी गाव से बनेंगे। ग्राम विधान सभा निर्णय करेगी कि सामाजिक जिम्मेदारी के कितने हिस्से वे खुद अपनी पचायत द्वारा चला लेगी। फिर जितना बचेगा, उसे वह जिला विधान सभा को अपने एक प्रतिनिधि के साथ भेजेगी। इस प्रकार नीचे से जिम्मेदारी सम्हालते हुए बचत की जिम्मेदारी ऊपर जायगी और अन्त मे जो कुछ थोडा बचेगा, वह राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पचायत के जिम्मे रहेगा। ऐसी व्यवस्था स्वभावत पार्टीगत न होकर व्यक्तिगत रूप से होगी। इस तरह अवशिष्ट राज्य, अवशिष्ट दड के रूप में रहेगा। लेकिन वह पार्टी-सचालित पार्लमेंटरी सस्था न होकर पार्टी-हीन पचायत-परम्परा का स्वरूप होगा। जब प्रत्येक ग्राम अपना अलग-अलग प्रतिनिधि ऊपर भेजता जायगा, तब क्रमश सर्वोच्च पचायत बनेगी, तो उसमे पार्टी-टिकट पर चुनाव की गुजाइश नही रहेगी। तो फिर जितने लोग यहा पहुचेंगे, वे सब स्वतन्त्र सज्जन व्यक्ति होंगे—किसी पार्टी के नही।



—गोसेवा साहित्य—

१	The Cow in India Vol I & II by Satishchandra Das Gupta		१६)
२	Dead animals to Tanned Leather	,,	॥)
३	गो सेवा (हिंदी)	महात्मा गांधी	१॥)
४	गोळाऊ गाईचे संवर्धन (मराठी)	य म पारनेरकर	॥)
५	पशु रोग चिकित्सा (मराठी)	डा पा व माळी	१॥)
६	चारादाना (हिंदी)	परमेश्वरीप्रसाद	।)
७	पशुओं का इलाज ,,	,,	॥)
८	कल्याण गो-अंक		४॥)
९	गायों की उन्नति (हिंदी) (डा राजेंद्रप्रसादजी का भाषण)		≡)
१०	नकली घी (हिंदी व अंग्रेजी)		।=)
११	गो सेवा संघ (द्वितीय सम्मेलन विवरण १९४६)		।)
१२	कम्पोस्ट अर्थात् मिश्र खाद		।)
१३	सर्वांगी गाय		।)
१४	मायल्लेज		।)
१५	जमाया तेल		=)
१६	दूध उत्पादन की पंचवर्षीय योजना–डा जा आर कोठावाला		।)
१७	गाय ही क्यों	ला हरदेवसहाय	१)
१८	गाय या भैंस	,, ,,	।)
१९	गो संकट निवारण	,, ,,	=)
२०	गो-वध का हेतु	,, ,,	।=)
२१	चमड़े के लिए गो-वध	कन्हैयालालजी भिडा	॥)
२२	मीठा जहर	लाला हरदेवसहाय	≡)
२३	देश के दुश्मन	,,	।-)
२४	सिद्ध वनौषधि चिकित्सा		१)
२५	सचित्र गोपालन		५)
२६	धान की खेती जापानी पद्धति		।)

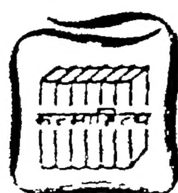
सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन विभाग, वर्धा

नई क्रांति-माला

की

पुस्तकें

१. सर्वोदय का घोषणापत्र
२. सर्वोदय के सेवकों से
३. भूदान-यज्ञ
४. धर्म चक्र प्रवर्तन
५. मानवीय क्रांति
६. नई क्रांति
७. नई क्रांति के गीत
८. हमारी भूमि समस्या का हल
९. दंड निरपेक्ष समाज रचना
१०. सम्पत्तिदान-यज्ञ



चार आना